श्री

स्वामी राम तीर्थ

के

प्रेमियों तथा भक्तों द्वारा

स्थापित

श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग

की

प्रकाशित पुस्तकों का

सूचीपत्र

—:००:—

रजिस्टर्ड ग्राहक होने का नियम ।

१—रजिस्टर्ड ग्राहक होने का शुल्क १) रु० है ।

२—रजिस्टर्ड ग्राहकों को पुस्तक के छपने पर उसकी सूचना पत्र द्वारा दी जावेगी ।

३—यदि वे नवीन छपी पुस्तक मँगाना स्वीकार करेंगे, तो उन्हें २५ रु० सैकड़ा कमीशन पर मिलेगी ।

नोट—थोड़े ही दिनों में नीचे लिखी पुस्तकें छप कर निकलने वाली हैं ।

(१)—अंग्रेज़ी जिल्दें स्वामी जी के व्याख्यान की ७ भाग में ।

(२)—बाबा नगीनासिंह की निम्न लिखित पुस्तकें:—

उर्दू में—वेदानुवचन (संशोधित आवृत्ति)

मियारुलमुक़ाशफ़ह (,,)

रिसाला अजायबुलइल्म (,,)

जगजीत प्रश्नः (,,)

पुस्तकों पर कमीशन दर

लीग से प्रकाशित पुस्तकों पर निम्न-लिखित दर से दुकानदारों को कमीशन दिया जायगा ।

२००) रु० या इससे अधिक मूल्य की पुस्तकों पर			३३।) रु० सै०
१००)	,,	,,	२५) ,,
५०)	,,	,,	२०) ,,
२०)	,,	,,	१२॥) ,,

भाग पहला

पूर्वार्द्ध

स्वामी राम तीर्थ जी
के
अंग्रेज़ी के लेख व उपदेश

भूमिका ।

(अंग्रेज़ी जिल्द प्रथम की भूमिका के रूप में दिया हुआ श्रीयुत पूर्णसिंह जी का लेख ।)

स्वामी राम के नाम और याद में यह ग्रन्थावली जन-साधारण को भेंट की जाती है । इसमें उनके सब लेखों और व्याख्यानों को एकत्र करने का विचार है । उनके लेखों और व्याख्यानों का एक छोटा सा अंग्रेज़ी संग्रह उनके जीवन-काल में ही मद्रास की श्री गणेश-कम्पनी ने प्रकाशित किया था । इनके सिवाय, अन्य हस्त-लेख, जिनमें अधिकांश कुछ अमेरिकन मित्रों की लिखी हुई स्वामीजी के अमेरिका के व्याख्यान पर टिप्पनियां (notes) थीं, स्वामीजी के देह-त्याग पर उनके बक्स में मिले थे । उनके जीवन में प्रकाशित ची... ओं को छोड़ कर, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, उन... र जो इस संग्रह में भी सम्मिलित हैं, स्वामी जी के अन्य वे ... व्याख्यानों पर उनकी पुनरावृत्ति नहीं हो पाई । अतएव बहुत कुछ इनमें वह अंश है, जिसे वे शायद निकाल डालते, और बहुतेरी ऐसी बातों का अभाव है, जो शायद वे बढ़ा देते । इन हस्त-लेखों को बिलकुल नये सांचे में ढालकर इनके विषयों के महत्त्व पूर्ण अंशों को वास्तव में नये सिरे से लिखने का और बहुत कुछ नवीन विचार, जो उनके मन में थे, उसे जोड़कर अपने इन उपदेशों को क्रमबद्ध व्याख्या बना देने का उनका विचार था । ऐसा संशोधित और परिमार्जित ग्रन्थ अवश्य ही वेदान्त-दर्शन पर एक नवीन और अद्भुत ग्रन्थ होता, जिससे वेदान्त और भावी सन्तानों के व्यक्तिगत तथा सामाजिक धर्म की

उन्नति होती। किन्तु मुख्यतः दो कारणों से उनकी इच्छा अपूर्ण रह गई। एक तो, अपने प्रस्तावित ग्रन्थ की तैयारी के लिये, देह त्यागने के प्राय: दो वर्ष पूर्व मूल वेदों का सर्वांगपू अध्ययन उन्होंने गम्भीरता और उत्सुकता पूर्वक प्रारम्भ किर था; और इस प्रकार जो समय अपने लेखों को व्यवस्थित करन में ख़र्च करके वे बड़ा उपकार कर सकते थे, वह अन्तिम कृति को महान् और स्मरणीय बनाने के प्रयत्न में लगा। दूसरे, जनता के संसर्ग से दूर, हिमालय के एकान्तवास से, जो उन्हें प्रिय था, अनन्त स्वरूप में उनकी लीनता नित्य प्रति बढ़ती गई, और क्रमशः ऊँची उड़ाने भरते हुए उनके मन के पैर उखड़ गये। (जनसमागम बना रहने पर सम्भव था कि, लोक की आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये उनकी बुद्धि उत्तेजित होती।) इन पंक्तियों का लेखक जब अन्तिम बार उनके साथ था, वे अधिकतर चुप रहते थे। लिखने और पढ़ने में उन्हें रुचि नहीं रह गई थी। प्रश्न करने पर वे अपनी ज्ञान वस्था अथवा अपनी परम मौनता, जिसे वे उस समय जीव में मृत्यु (जीवन मुक्ति) के नाम से पुकारते थे, उसके रहर हमें समझाते थे। वे हम लोगों से कहते थे कि, "जितना ही अधिक कोई जीवन में मरता है, दूसरों के लाभ के लिये उतनी ही अधिक भलाई स्वभावतः और अनायास उससे निकलती है। 'हाथ में लिया हुआ काम मुझसे पूरा होता न जान पड़ता हो, परन्तु मैं जानता हूँ कि, मेरे चले जाने पर वह किसी समय अवश्य होगा और अधिक अच्छी रीति से होगा। जो विचार मेरे मनमें भरे हुए हैं और मेरे जीवन के पथ-प्रदर्शक रहे हैं, वे धीरे धीरे करके, काल पाकर समाज में व्याप जायँगे, और तभी उनके (समाज के लोगों के) प्रारब्धों को ठीक फलीभूत

कर सकेंगे, जब मैं इस समय सब मनसूबों, इच्छाओं और उद्देश्यों को त्याग कर परमात्मा में अपने को लीन कर दूँगा।"

यह विचार उनमें ऐसा बद्धमूल होगया था कि लाख प्रार्थनायें भी उन्हें लिखने में न लगा सकीं।

इस प्रकार यद्यपि हम उनकी शिक्षाओं की उन्हीं की अपनी स्त-लिखित नियमित व्याख्या से वंचित रहे, परन्तु यह संतोष । बात है कि उनके विचार की कुछ सामग्री हमें प्राप्त है, चाहे इ कितनी ही बिखरी हुई और टूटे फूटे अंशों में क्यों न हो। तएव कुछ संकल्प-विकल्प के बाद निश्चय किया गया कि, नके विचार की इस सामग्री और उनके अचिन्तित व्याख्यानों में प्रकट होने वाले उनके ज्ञान के प्रतिबिम्बों को, नके निबन्धों और नोट-बुकों (note-books) के सहित, प्रायः नी रूप में जिसमें वे छोड़ गये हैं, छाप कर सर्वसाधारण के पने रख दिया जाय। जो राम से मिले हैं, वे उनके बहुतेरे और चित् सब व्याख्यानों में उन्हें पहचान लेंगे और बोध करेंगे उनके विलक्षण ओजस्वी ढंग को मानो वे अब भी सुन रहे । वे उनके व्यक्तित्व की मोहनी से एक बार फिर अपने को म्मोहित समझेंगे, और इसके साथ साथ राम की प्रेममयी र सन्मान पूर्वक संगति से जो संस्कार उनके चित्तों में घर गये हैं, उनके प्रभाव से वे उस कमी को भी पूरा कर देंगे, जो इस छपी लिपि में रह गई है। जिन्हें राम के दर्शन का सर नहीं मिला, वे यदि धीरज धरकर आदि से अन्त तक के इन कथनों को पढ़ आयँगे, तो उस परमानन्दमय ज्ञाना-था का अनुभव कर लेंगे, कि जो इन कथनों की आधार है और े मनोहर तथा अर्थ पूर्ण बनाती है। किसी स्थल पर संभव उनके विचारों को न समझ सकें। परन्तु दूसरे स्थान पर

उन्हीं विचारों को वे कहीं अधिक स्पष्टता और प्रबलता से प्रकट किया हुआ पावेंगे। विभिन्न विचारों और मतों के लोगों को, इन पन्नों के पढ़ जाने पर, अपनी बुद्धि और जीवात्मा के भोजन के लिये यथेष्ट सामग्री प्राप्त होगी, और निस्सन्देह बहुत कुछ को तो वे अपनी ही वस्तु समझेंगे।

इन ग्रंथों में स्वामी राम हमारे सामने साहित्य-लेखक के रु में नहीं प्रकट होते, और उनकी ज़रा सी भी इच्छा नहीं दीखत कि उन्हें ग्रंथकार मानकर उनकी आलोचना की जाय। किंतु हमारे सामने जीवन के आध्यात्मिक नियमों के उपदेशक व महिमा से युक्त होकर आते हैं। उनके भाषण का एक बड़ा भाग लक्षण यह है कि वे अपने हृदय की सच्ची बात हमसे कहते और व्याख्यानबाज़ों की तरह वेदान्त के सिद्धान्तों को हमा सामने सिद्ध करने की चेष्टा नहीं करते। यह बात नहीं कि उनमें यह शक्ति नहीं थी। उनके जाननेवाले जानते हैं कि अपने विषय के पूर्ण ज्ञाता थे, किन्तु कारण यह है कि केवल उन्हीं विचारों को हमारे सामने रखने की चेष्टा करते कि जिनको अपने जीवन काल में व्यवहार में वे ला चुके और जिनका अनुकरण, वे समझते थे, दूसरों को भी उसी तर मनुष्य-जीवन के गौरव, आनन्द और सफलता के सर्वो शिखर पर ले जायगा, जिस तरह उन्हें ले गया था। अतएव अपना बुद्धि-वैभव हमें नहीं दिखलाते, परन्तु अपने कु अनुभव हमें बतलाना चाहते हैं। और कई एक विचारों अमल करने से जीवन में प्राप्त होने वाले परिणामों प्रेरणा से वे उत्साह के साथ साफ़ साफ़ बोलते हैं। प्रकार उनके ये व्याख्यान उस सत्य को जिसमें उन्हें विश था अनुभव करने में केवल सहायक और संकेत मात्र

न कि उस सत्य की दार्शनिक और ठोस युक्तियों से पूर्ण व्याख्यायें। बुद्धि-वैभव के भार से दबे हुए ग्रन्थों की अधिकता से क्या हम ऊब नहीं उठे हैं? वास्तव में जीवन के साधारण, सरल और स्पष्ट स्वरों में हम लोगों से एक विलक्षण पुरुष का बातचीत करते दिखाई देना बहुत ही सुखकर है। कोई दलील देने के बदले स्वामी राम इस विश्वास से हमें एक कहानी द्वारा उपदेश देते हैं कि मनुष्य के वास्तविक जीवन को दूसरे के जीवन से अधिक सहानुभूति होती है और मानसिक तर्क-वितर्क की अमूर्त रचना की अपेक्षा वह उसे अधिक प्रभाव-शाली बनाती है। उनके वर्णन में कवियों का सा उल्लास और स्वतंत्रता है। वे यद्यपि तत्त्वज्ञानी कवि थे, तथापि उनके विचारों और वचनों की प्रतिपादन-शक्ति अनन्त को दर्शाने में अपूर्व थी। वे जीवन के उस गम्भीर संगीत के तत्त्वज्ञ हैं जो केवल उन्हीं को सुनाई देता है जो यथेष्ट गहराई तक जाते हैं।

राम स्वयं क्या थे और हमारे लिये क्या थे, इसको धारणा कराने के लिये इस स्थान पर कुछ पंक्तियों का लिखना उपयुक्त होगा। पंजाब के एक निर्धन ब्राह्मण कुटुम्ब में जन्म लेकर बचपन से ही उन्होंने स्वयं धीरता से अपना निर्माण किया। पल-पल, क्षण-क्षण और दिन-दिन में उन्होंने धीरे-धीरे अपने को बनाया। यह कहा जा सकता है कि, उनके भावी जीवन का सम्पूर्ण चित्र शायद उनके हृदय-नेत्रों के सामने पहले ही से खिंचा हुआ था, क्योंकि बाल्यकाल में ही वे एक निश्चित उद्देश्य के लिये बड़ी गम्भीरता से और विचार पूर्वक चुप चाप तैयार हो रहे थे। ग़रीब ब्राह्मण-कुमार के निश्चयों में परिपक्व मन की दृढ़ता थी। वह किसी भी परिस्थिति में हिचकता

नहीं था, और न किसी प्रकार की कठिनाई से भयभीत होता था। उस अत्यन्त नम्र और मनोहर आकृति के भीतर जिसमें प्रायः कोमल कुमारी की सी लज्जा और संकोच के संयोग की झलक थी, ब्राह्मण बालक के दुर्बल शरीर में वह दृढ़ निश्च शक्ति छिपी हुई थी, कि जो हिलना नहीं जानती थी। बालक एक आदर्श विद्यार्थी था। अध्ययन पर इसका अनुर सांसारिक सुखों की आशा से नहीं, परन्तु ज्ञान की नित्य बढ़ हुई प्यास को बुझाने के लिये था, जो अनुराग दिन प्रति दि इसके अन्तःकरण में नया जोश भरता रहता था। इनका नि का पढ़ना इस हवनकुण्ड की वेदी पर पवित्र आहुति थी।

रात को पढ़ने के हेतु दीपक के तेल के लिये वे कभी क बस्त्र नहीं बनवाते थे व किसी किसी दिन भोजन भी नहीं क थे। स्वामी राम की छात्रावस्था में ऐसा प्रायः हुआ है कि शाम से सबेरे तक पढ़ने में लीन रहे। विद्या का प्रेम इतने ज़ से उनके हृदय को मसोसता था कि विद्यार्थी-जीवन के साध रण सुख और शारीरिक आवश्यकतायें बिलकुल भूल गई थीं भूख और प्यास, सर्दी और गर्मी का उनकी इस अतिश ज्ञानपिपासा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। गुजरानवाला और लाहौर में अभी ऐसे लोग मौजूद हैं जिन्होंने उनकी छात्रावस्थ देखी है। वे कहते हैं कि शुद्ध-चित्त गोस्वामी (तीर्थ राम दिन-रात असहाय और अकेला परिश्रम करता था, अर्थात् बिन युद्ध के साधनों के जीवन से संग्राम करता था। और उन्हें अवसर याद हैं, जब दानशीलता का गर्व रखने वाले इस देशमें भी बेचारे ब्राह्मण-बालक के पास कई दिनों तक बहुत थोड़ा या बिलकुल ही भोजन नहीं होता था, और इस पर भी उसके मुख-मण्डल से अमित हर्ष और सन्तोष सदा टपकता रहता था।

अतएव स्वामी राम ने अपने तत्पश्चात् के जीवन में जिस ज्ञान को अपने उपदेशों द्वारा प्रकट किया है, वह घोरतम तपस्या और कठिनतम परिश्रम से रत्ती रत्ती करके संचित किया हुआ था। और हमारे लिये तो वह अत्यन्त करुणा से परिपूर्ण है, क्योंकि हमें याद है कि यह पुष्प कैसे अत्यन्त दरिद्र और कटीले जीवन में कवि, तत्वज्ञानी, विद्वान् और गणितशास्त्री के रूप में खिला।

लाहौर के सरकारी कालेज के प्रधानाध्यापक (Principal) ने जब प्रान्तीय सिविल सरविस (Provincial Civil Service) के लिये उनका नाम भेजने की इच्छा प्रकट की थी, तब राम ने सिर झुका कर और आँखों में आँसू भर कर कहा था कि अपनी कमाई बेचने के लिये नहीं बल्कि बाँटने के लिये मैंने इतना श्रम किया था। शासक कर्मचारी बनने की अपेक्षा अध्यापक होना उन्हें पसन्द हुआ।

विद्या में ऐसा लिप्त और प्रेमी विद्यार्थी बड़ा होकर शुद्ध और सत्यप्रिय मनुष्य स्वभावतः ही हो जाता है।

विद्यार्थी अवस्था में भी राम की बुद्धि अपने इर्द-गिर्द की परिस्थितियों से पूर्णतया दूर रह कर पूर्ण एकान्त का सुख लूटती थी। वे अकेले रहते हुए पुस्तकों द्वारा केवल महात्मा पुरुषों की संगति करते थे। अपने उच्च कार्यों में दिलोजान से लगे हुए वे न दहिने देखते थे न बाँयें। अपने जीवन को उन्होंने बचपन से ही अपने आदर्शों से एक ताल कर रखा था। उनकी विद्यार्थी-अवस्था जानने वाले उनके चरित्र की निर्मल स्वच्छता और जीवन के उच्च नैतिक लक्ष्य को सन्मान पूर्वक स्वीकार करते हैं। अपने विद्यार्थी जीवन में स्वामी राम भीतर ही भीतर बढ़ रहे थे। वे अपने जीवन को बारम्बार पूर्णता के साँचों में

गला गलाकर ढाल रहे थे। अपनी प्रतिमा को पूर्णतया सुन्दर बनाने के लिये वे उसकी बे डौल रेखाओं को दिन रात की छैनी से गढ़ते रहे, नित्यप्रति वे अपने से अधिक अधिक सुघड़ होते जाते थे। जब वे गणित-विद्या के अध्यापक नियत हुए, तो प निबन्ध उन्होंने यही लिखा था, "गणित का अध्ययन कैसे क चाहिये" (How to study Mathematics)। उसमें यही उपदेश देते हैं कि पेट को चिकने और भारी पदार्थों अधिक भर देने वाला तीव्र-बुद्धि विद्यार्थी भी अयोग्य और स्थूल-बुद्धि हो जाता है। इसके विपरीत हलके भोजन से मस्तिष्क सदा स्वच्छ और हलका रहता है। और यही विद्यार्थी- जीवन की सफलता का रहस्य है। उनका कहना है कि का उचित ध्यान लगने के लिये दूसरी ज़रूरी शर्त है मन की शु और इस एक बात के बिना कोई भी उपाय विद्यार्थी के म वृत्ति को ठीक नहीं रख सकता।

इस तरह वे अपने विद्यार्थी-जीवन के अनुभवों को सरल उपदेशों में भर देते हैं जैसे कि हमें उक्त निबन्ध में हैं। वे लिखने के लिए नहीं लिखते हैं, और न बोलने के बोलते हैं। वे अपनी लेखनी तभी उठाते या मुख तभी ख हैं, जब उन्हें कुछ देना होता है। "मैं तथ्यों को बटोरने के खूब यत्न करता हूं, और जब वे मेरे हो जाते हैं, तब मैं ऊँचे खड़ा होकर सदा के लिये अपने सत्य के संदेश की घो करता हूँ" (I try hard for gathering facts, but whe they are mine, I stand on a rock proclaimin my message of truth for all times.)। ऊपर लि सम्मतियों की चर्चा यहाँ केवल उनकी पहले सीखने और सिखाने की शैली बताने के लिये की गई है। वे अपने पर वस्तु

और विचारों के प्रभावों का निरीक्षण करते थे, और तब अपः स्वतंत्र तथा निष्पक्ष विचार स्थिर करते थे, और उन्हें सत्य या असत्य मान लेने के पूर्व अपने जीवन की कठिन कसौटी में वर्षों तक कसते थे। और दूसरों के काम के लायक बनाने के पूर्व उन्हें पुष्ट करने में वे और भी अधिक समय लगाते थे। जैसा कि ऊपर कहा गया है, जो बातें वे दूसरों को सिखाना चाहते थे, उन्हें पूरी तरह बिना सीखे और बिना उनके पूर्ण पण्डित हुए वे अपना मुख नहीं खोलते थे, और शिक्षक बनने का स्वांग नहीं रचते थे। उनके चरित्र की गुप्त कुञ्जियों में से एक यह है। क्या विद्यार्थी-जीवन में और क्या अध्यापक की दशा में, स्वामी राम साहित्य और विज्ञान की अपेक्षा उच्चतर ज्ञान के लिये सदा गुप्त भाव से श्रम करते रहे और स्वामी बन कर संसार के सामने अपने सत्य की घोषणा करने के पूर्व वे ठीक डारविन (Darwin) की भाँति जीवन के उच्चतर नियमों पर अपने विचारों और विश्वासों का धीरता पूर्वक सङ्गठन करते रहे। हम उन्हें सदा मानव जाति के प्रति अपने जीवन की बड़ी नैतिक ज़िम्मेदारी पूर्ण गम्भीर ज्ञान के साथ काम करते पाते हैं। वे जानते थे कि अपने जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के लिये अध्यापक का आसन छोड़कर मुझे वह मञ्च ग्रहण करना पड़ेगा, जहाँ से समग्र मानव जाति तथा भावी सन्तति को उपदेश मिलेगा; और वे अपने मन में अपने इस दायित्व (ज़िम्मेदारी) को सदा तौलते रहते थे। अतएव उन्हें आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये श्रम करने में और भी अधिक कष्ट उठाना तथा घोर युद्ध करना पड़ा। प्रेम और विश्वास के पंखों को लगाकर उन्होंने धीरे धीरे और दृढ़ता पूर्वक अपने जीवन को परमात्मा के वक्षस्थल पर उड़ाना शुरु किया, और वे नित्य प्रति ऊँचे उड़ते उड़ते अनन्त

में, ब्रह्म में, परमात्मा में, अथवा उन्हीं के अपने शब्दों के अनु
सार आत्मदेव में समा गये। उनकी आत्मा की अभिलाषाएं
आध्यात्मिक दिक़्क़तों, चित्तवृत्ति सम्बन्धी कठिनाइयों और मा
सिक क्लेशों का इतिहास हमारी आँखों से छिपा हुआ है
परन्तु उनके जीवन के इस भाग में परिश्रम से प्राप्त किये हु
अनुभवों की ही सम्पत्ति हमें उनके स्वामी-जीवन का शिक्षाश
में मिलती है। अनेक बार सारी रात वे रोते रहे और सवे
केवल उनकी धर्म-पत्नी को उनके बिछौने की चादर आँसुओं
भीगी मिली। उन्हें क्या कष्ट था? किस लिये वे इतने दुः
थे। कारण कुछ भी हो, उनके चित्त की उत्कट पारलौकिक आव
लाओं के ये आँसू हैं कि जो उच्चतम प्रेम के लिये उनके विचा
को सींचते थे। नदियों के तटों पर, जङ्गलों के एकांत अन्धका
में, प्रकृति के बदलते हुए दृश्यों को देखने और आत्मा
चिन्तन में उन्होंने अनेक रातें बेसोये काटीं। इस दशा में कभी
तो अपने सङ्गी से बिछुड़े हुए विरही पक्षी के शोक-सन्तप्त स्वर
में अपने रचे हुए गीत गाते थे और कभी कभी उत्कट ईश-भक्ति
से मूर्छित हो जाते थे, और सचेत होने पर अपने नेत्रों के पवित्र
गङ्गा-जल में स्नान करते थे। उनके प्रेम की अवस्थायें सदा
अज्ञात रहेंगी, क्योंकि उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन को हमसे
छिपा रखना पसन्द किया है, और उनके ज्ञान-विकास के
ब्यौरे को उनके सिवाय और कोई नहीं जानता। किन्तु इसमें
सन्देह नहीं कि स्वयं कवि और देवदूत होने के पूर्व, वे
साधुओं, महात्माओं तथा कवियों के प्रभापूर्ण समूह की सङ्गति
में रहते थे। ईरान के सूफ़ियों, विशेषतः हाफ़िज़ अत्तार,
मौलाना रूम, और शम्सतबरेज़ के वे निरन्तर साथी थे।
...गों के अपने धार्मिक उत्कर्ष के सहित भारत के माहात्मा

...ा उनकी आत्मा को ज्ञान देने वाले थे । तुलसीदास और ...दास निस्सन्देह उनके प्रेरक थे । चैतन्य का उन्मत्त ... तुकाराम और नानक की मधुरता, कबीर और ...द तथा हसन और बूअली कलन्दर की धारणायें, प्रह्लाद ... ध्रुव के विश्वास, मीराबाई, बुल्लाशाह और गोपालसिंह ... अतिशय आध्यात्मिकता, कृष्ण की गूढ़ता, शिव और शंकर ...ज्ञान इमर्सन (Emerson), कैंट (Kant), गेटे (Goethe), ... कारलाइल (Carlyle) के विचार पूर्व के आलसी वेदान्त ...तंद्रा दूर करने वाले पाश्चात्य वाल्ट ह्विटमैन (Walt ...itman) और थोरो (Thoreau) के स्वतंत्र गीत, पूर्व ... पश्चिम दोनों ही के धार्मिक सिद्धान्तों और अन्ध विश्वास ...क तत्त्व-विद्याओं पर प्रभाव डालने वाले तथा मानव-हृदय ...उदार बनानेवाले और मानव-मन को सदियों की मानसिक ...मी से छुटाने वाले क्लिफ़ोर्ड, (Clifford), हक्सले ...uxley), टिंडल (Tyndal), मिल (Mill), डार्विन ...rwin) और स्पेंसर (Spencer) की वैज्ञानिक सत्यता ...स्पष्टवादिता—इन सब तथा अन्य अनेक प्रभावों ने व्यक्ति-...रूप से एवं मिल कर उनके मन को आदर्शवादी बनाया ... अपने स्वामी जीवन में उन्हें हम सदा परमात्मा में निवास ... पाते हैं, और लड़कपन के विनीत और लज्जाशील विद्यार्थी ...ाया भी उनमें नहीं दिखाई पड़ती। अब उनका स्वर कहीं ...क शक्तिशाली, चरित्र ओजस्वी, अनुभव हृदय-प्रेरक, और ... अति आकर्षक होगया था। उनकी उपस्थिति आस पास ...ु-मण्डल ही को मोह लेती थी। उनकी संगति में मनुष्य ... की अवस्थायें सर्वतः सुन्दर दृश्य में घूमती रहती थीं। ...सचाई का जादू कभी तो उपस्थित जनसमूह को ...

देता था, और कभी परम संतोष की मुसकियां पैदा करता था। साधारण से साधारण वस्तुओं को भी हमारी दृष्टि में ईश्वर के ऊँचे से ऊँचे अवतारों का रूप देने में वे कवि की भांति समर्थ थे। उनके स्पर्श से किसी में कवि की तो किसी में चित्रकार की, किसी में उत्कट योगी की तो किसी में शूरवीर की रुचियां पैदा होती थीं। अनेक साधारण मन इस दर्जे का आवेश अनुभव करते थे कि उन्हें अपनी मानसिक शक्ति में वृद्धि प्रतीत होती थी।

उनके एक अमेरिकन मित्र ने उनके देह-त्याग पर लेखक को नीचे दिया पत्र लिखा था। इसमें उनका वर्णन ठीक वैसा ही हुआ है जैसा कि वे हम लोगों के लिये थे। और इस कारण से उसका यहां उद्धृत करना उचित होगा।

"भाषा के उदासीन व संकीर्ण शब्दों में जिस बात को प्रकट करना अति कठिन है, उसे व्यक्त करने की जब मैं चेष्टा करता हूँ तो शब्द मेरा साथ नहीं देते।

"राम की भाषा मधुर निर्दोष बालक की, पक्षियों, पुष्पों, बहती नदी, पेड़ की हिलती हुई डालों, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों की भाषा थी। संसार और मनुष्यों के बाहरी दिखावे के तले उनकी भाषा बहती थी।

"समुद्रों और महाद्वीपों, खेतों और तृणों तथा वृक्षों की जड़ों के नीचे से गहरा बढ़ता हुआ उनका जीवन प्रकृति से मिलता था, नहीं, नहीं बल्कि प्रकृति ही का जीवन ह था। उनकी भाषा मनुष्यों के क्षुद्र विचारों और ह भीतर तक प्रवेश करती थी। उस विलक्षण मधुर सुनने वाले कान कितने थोड़े हैं। उन्होंने उसे सुना, —— किया, उसका दम भरा, उसकी शिक्षा दी, औ

समग्र आत्मा उसके गहरे रंग से रंगी हुई थी। वे ऐसे दैव-दूत या पैग़म्बर या धर्म-प्रवर्तक (messenger) थे कि जिनके अन्दर आनन्द परिपूर्ण था।

ऐ मुक्त आत्मा! ऐ आत्मा, जिसका कि शरीर से नाता पूरा हो चुका है!! ऐ उड़ती हुई, शब्दातीत सुखी, दूसरे लोकों में जाती हुई, और पुनः वास्तविक दशा को प्राप्त होती मुक्त आत्मा! तुझे बारम्बार प्रणाम है।

* * * * *

"वे इतने नम्र, सरल, बालक-सदृश, पुनीत और श्रेष्ठ, सच्चे, उत्साही और गर्व रहित थे कि, सत्य की चाह में विकल मन-वालों में से जिस किसी का उनसे संसर्ग हुआ, वह बिना अपार लाभ उठाये न रहा। प्रत्येक व्याख्यान या छात्र-उपदेश [illegible] उनसे प्रश्न किये जाते थे, जिनके उत्तर सदा ही अति [illegible] सन्तप्त, मधुर और प्रेम पूर्वक दिये जाते थे। वे सदा आनन्द और शान्ति से भरे रहते थे और जब वे वार्तालाप, लिखने या पढ़ने से निवृत्त होते थे, तब निरन्तर "ॐ" उच्चारण करते थे। वे हर एक में ईश्वर के दर्शन करते थे और प्रत्येक को "मंगलमय परमेश्वर" कहकर पुकारते थे।

"राम आनन्द के निरन्तर उमड़ते स्रोत थे। ईश्वर में ही वे जीते थे, ईश्वर में ही उनकी गति और अस्तित्व था—नहीं, नहीं, वरन् वे ईश्वरके आत्मा ही थे। एक बार उन्होंने मुझे लिखा था, "जिन्हें आनन्द लूटने की इच्छा है वे तारागण-प्रकाशित [illegible] आकाश में चमकते हुए हीरों का मज़ा लूट सकते हैं; [illegible] बनों और नाचती हुई नदियों से अथाह सुख ले [illegible] शीतल पवन, उष्ण सूर्य-ज्योति और व्यथानाशक [illegible] अनन्त आनन्द पा सकते हैं, जो सब प्रकृति की ओर से

सब की सेवा के लिए निर्विघ्नता पूर्वक नियत किये गये हैं। जिनक विश्वास है कि उनका सुख किन्हीं विशेष अवस्थाओं पर अ-लम्बित है, वे सुख के दिन को अपने से सदा पीछे हटते औ अगिया-बैताल की भाँति निरन्तर दूर भागते पावेंगे। संसार में स्वास्थ्य के नाम से पुकारी जाने वाली वस्तु आनन्द का साधन होने के बदले समस्त प्रकृति, स्वर्गों और सुन्दर दृश्यों के गौरव और सुगन्धित-तत्त्व को छिपाने में केवल बनावटी परदे का काम देती है।"

* * * * *

"राम पहाड़ी प्रदेश में खेमे में रहते थे, और ंच हाउस (Ranch house) में भोजन करते थे। यह एक मनोहर स्थल था। विषम वन्य-दृश्य, और दोनों ओर सदा हरित वृक्षों तथ घनी उलझी हुई झाड़ियों से ढके हुए ऊँचे पर्वत से युत था। सैक्रामेण्टो (Secramento) नदी प्रचण्ड वेग से इस घाटी से नीचे उतरती थी। यहीं राम ने अनेकानेक पुस्तकें पढ़ीं, अपनी उत्कृष्ट कवितायें रचीं और घण्टों तक निरन्तर ध्याना-वस्थित रहे। नदी में जहाँ पर धारा बड़ी तेज़ थी, वे कई सप्ताह तक बराबर एक बड़ी गोल शिला पर बैठते थे और केवल भोजन के समय घर आते थे, जब वे हमें उत्तम बातें सुनाया करते थे शास्ता स्रोतों (Shasta Springs) के अनेक लोग उनसे मिलने आया करते थे, और सदा उनका सहर्ष स्वागत किया जाता था। उनके श्रेष्ठ विचार सब पर गहरा और स्था प्रभाव जमा देते थे। जो केवल कौतूहल वश उन्हें देखने आ थे, वे भी तृप्त होकर लौटते थे, और सत्य का बीज सद लिये उनके हृदयों में जम जाता था। सम्भव है कि कु -- उन्हें इस प्रभाव वा बीज का ज्ञान न हो, परन्तु ए

सका अंकुरित होना और उसे पुष्ट तथा प्रबल पेड़ में बढ़ना निवार्य है, जिसकी शाखाएँ चारों ओर फैल फैल कर संसार के ... लोगों को भाईचारे और दिव्य-प्रेम के बन्धन में बट ... भलाई के बीज सदा बढ़ते हैं।

... बड़ी बड़ी दूर तक टहलने जाते थे। इस प्रकार शास्ता ... दोनों में रहते हुए वे साधारण, स्वतंत्र, प्रवृत्त, और आनन्द-मय जीवन बिताते थे। वे बड़े प्रसन्न थे। उन्हें अनायास हँसी आती थी, और जब वे नदी तट पर होते थे, तब ... ही घर से साफ़ सुनाई पड़ती थी। वे स्वतन्त्र थे, ... र साधु की तरह स्वतन्त्र थे। बराबर कई कई दिनों ... म-भाव में लीन रहते थे। भारत के प्रति उनकी अचल ... और अंधकारमें पड़े हुए भारतवासियोंको उठाने की उनकी ... सा वास्तव में पूर्ण आत्म-निग्रह (self-abnegation) थी।

* * * * *

... हाँ से चले जाने के बाद मुझे उनका एक पत्र मिला था। ... मुझे पता चला कि यह पत्र उनसे कठिन बीमारी की हालत ... आ गया था। इसमें लिखा था, 'एकाग्रता और शुद्ध दैवी ... की इन दिनों विलक्षण प्रबलता है, और ब्रह्म-भाव बड़े ... अधिकार जमा रहा है, शरीर चंचल वासनाओं और ... परिवर्तन के अधीन है, इस लिये इस दुष्ट अगिया-... मैं अपनी अभेदता कभी नहीं मानने का। बीमारी में ... और आन्तरिक शान्ति बड़ी ही उत्कट हो जाती है। ... ा नारी, जिसकी बन्द मुट्ठी शारीरिक रोगों आदि ... णिक अतिथियों का उचित सत्कार करने में अन-... , वास्तव में बड़ी ही सूम है।

... म सदा हम लोगों से कहा करते थे,

अनुभव करो कि, जो शक्ति सूर्य और नक्षत्रों में अपने को प्रक करती है, वही मैं हूँ ; वही, वही तुम हो। इस वास्तवि आत्मा को अर्थात् अपने इस गौरव को लो, ऐसे अमर जीवन क चिन्तन करो, अपनी इस असली सुन्दरता पर मनन तुच्छ शरीर के समस्त विचारों और बन्धनों को जाओ, मानो तुम्हारा इन मिथ्या, और दिखाऊ (बल्कि छायाओं) से कभी कोई सम्पर्क ही नहीं मृत्यु है, न रोग, न शोक। पूर्ण आनन्दमय इस नित्य ध्यान दो। पूर्ण मंगलमय, पूर्ण शान्तिमय बनो। तु या शरीर से परे होकर खूब सावधान रहो।' यही हर एक को देते थे।

* * * * *

"वह कैसी वीर, सत्यनिष्ठ, भक्त और ईश्वरोन्मत्त है कि जो बिना पैसा-कौड़ी के अपने देश के लिये विदेश जाने का साहस करे।

* * * * *

"राम जैसे शुद्ध मनुष्य से भेंट करने तथा बात और उसे सहायता देने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हु विचार आश्चर्यमय है। वे ऊषा (Aurora) की और सूर्योदय से सूर्यास्त तक अपना संगीत सुनाया उन्हें ज़रा सी भी परवाह नहीं थी कि घड़ी में आया, और लोगों की क्या भाव है, अथवा वे थक —उनके लचीले और शक्तिशाली विचार सूर्य थे, और इस प्रकार दिन उनके लिए चि रहता था। थोरो (Thoreau) ने के लिये तो लाखों जागे हुए हैं, परन्तु करो

। कहीं एक ही काव्यमय और दैवी जीवन के लिये (सचेत) है।" (The millions are awake enough for physical labour, but only one in a hundred millions for a poetic and divine life.)। राम वह दुर्लभ आत्मा थे जो समय समय पर संसार में आती हैं।

" They say the Sun is but His photo,
They say that Man is in His image,
They say He twinkles in the stars,
They say He smiles in fragrant flowers,
They say He sings in nightingales,
They say He breathes in cosmic air,
They say He weeps in raining clouds,
They say He sleeps in winter nights,
They say He runs in prattling streams,
They say He swings in rainbow arches,
In floods of light, they say, He marches."

So Rama told us and it is so.

कहते हैं सूर्य उसका छाया-चित्र मात्र है,
कहते हैं मनुष्य उसकी प्रतिमा है,
वह पकड़े हैं वह तारों में चमकता है,
कहते हैं वह सुगंधित फूलों में मुसक्याता है,
कहते हैं वह बुलबुलों में गाता है,
कहने हैं वह विश्व-पवन में श्वास लेता है,
कहते हैं वह बरसते बादलों में रोता है,
कहते हैं वह जाड़े की रातों में सोता है,
अवश्य ६ वह घड़घड़ाती नदियों में दौड़ता है,

कहते हैं वह इंद्र-धनुष की मेहराबों में भूलता है,
कहते हैं, प्रकाश की बहिया में, वह यात्रा करता है।

ऐसा ही राम ने हम से कहा और बात भी यही है।

आध्यात्मिक दृष्टि से वे केवल एक विचार के मनुष्य कहे जा सकते हैं। उनके सब उपदेशों में जो महान् विचार अन्त-र्धारा की तरह बह रहा है वह है देहाध्यास (अहंकार) का त्याग और अपने आत्मा को सृष्टि का आत्मा अनुभव करना। यही है उस उच्च जीवन का अनुभव, जिसमें परिच्छिन्न 'मैं' भूल जाती है और विश्व-ब्रह्माण्ड की 'मैं' मनुष्य की अपनी 'मैं' बन जाती है। "जो कुछ तू देखता है, वही तू है"। मनुष्य परमात्म-देव है। मिथ्या अहंकार ही सब बन्धनों का कारण है। इसे दूर करते ही मनुष्य की आत्मा सर्वत्र और सबमें व्यापक सार्वभौम आत्मा बन जाती है। इस उच्च जीवन का अनुभव प्राप्त करना है और वे सभी उपाय राम को अङ्गीकार हैं, जिनसे इसकी प्राप्ति हो सकती है। काँटों का बिस्तर हो या फूलों की सेज, जिससे भी हम आत्मानुभव की अवस्था प्राप्त कर सकें, वही धन्य है। पूर्ण आत्मसंयम वा इन्द्रिय-निग्रह इस अनुभव की आवश्यक पहली दशा है। जो विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न विधि' उपायों से किया जा सकता है। किसी एक व्यक्ति के नि निमित्त आवश्यक विचार और विश्वास के विशेष निजी संस्का और साधनों पर राम कदापि आग्रह नहीं करते; परन्तु अपने मुख्य सिद्धान्तों का सामान्य ढाँचा हमारे सामने रख की चेष्टा करते हैं, और उन उपायों का वे निरूपण करते हैं। जिनसे उन्हें अत्यन्त सहायता मिली थी। जब कभी बुद्धि उन आदर्श में शङ्का करती थी, तो वे पूर्व और पश्चिम के अद्वैतवा विज्ञान के क्रम पूर्वक अध्ययन द्वारा उसका समन्तु करो

[illegible] थे, और इस प्रकार बुद्धि को उनके सत्य के सामने झुकना पड़ता था। उनके दार्शनिक मत पर तर्क-वितर्क करने के अभिप्राय से समीप आनेवाले लोगों से वे, इसी प्रकार नियमित रूप से दर्शन-शास्त्र का अध्ययन करने को कहते थे। और इस आधार पर वाद-विवाद करना बिलकुल अस्वीकार करते थे कि वाद-विवाद के द्वारा नहीं, किन्तु वास्तविक, उत्कट और गम्भीर चिन्तन द्वारा ही सत्य की प्राप्ति हो सकती है।

जब [illegible] [illegible]म के आदर्श में संदेश करता था, तो वे बिभिन्न भावों द्वारा उसे उच्चतम प्रेम से सींच देते थे, और ऐसा अनुभव करा देते थे कि "सब कुछ एक ही है, और प्रेम को द्वैत से कुछ मतलब नहीं"। चित्त के द्वारा वे बुद्धि को भावमयी बनाते थे और बुद्धि के द्वारा चित्त को विचारशील बनाते थे। परन्तु [illegible]त्य उनके ध्यान में सर्वोपरि था और इन दोनों से ऊँचा था। [illegible]वल अपनी ही बुद्धि और चित्त से सहमत होने के लिये वे [illegible]र विधि का आश्रय नहीं लेते थे, परन्तु दूसरों से भी सहमत [illegible]ने के लिये इसी क्रिया का प्रयोग करते थे। जब किसी का [illegible]नसे बुद्धि के कारण मतभेद होता था, तो वे उसके लिये प्रेम [illegible] विचार से वाद-विवाद त्याग देते थे और इस प्रकार उससे वह एकता या मतैक्य प्राप्त करते थे, जिस को वे सत्य की [illegible]िमा मानते थे और जिसका त्याग वे किसी हालत में भी [illegible] को तैयार नहीं थे। जब किसी मनुष्य के चित्त का उनसे [illegible]द होता था, तो चित्त के क्षेत्र को छोड़ कर वे उससे बुद्धि [illegible] मिलाप करते थे। वे एक ऐसे मनुष्य थे जिनसे किसी का [illegible]द नहीं हो सकता था। यदि उनके विचार प्रभावित करने [illegible] समर्थ होते थे, तो उनकी पवित्रता और प्रेम का [illegible] अवश्य पड़ता था। बिना उनसे बात [illegible]

आप को प्रतीत होगा कि आप उनसे बिना प्रेम किये नहीं रह सकते। इस प्रकार समस्त वाद-विवाद उनके सामने शान्त होजाते थे। और मेरा विश्वास है कि, ऐसे मनुष्य के लेख छोटे दर्जे की समालोचना के अयोग्य हैं, क्योंकि आपसे एकमत होना और एकता स्थापित करना उनका मुख्य उद्देश्य है। आप कोई भी हों, वे तुरन्त वही मानने के लिये तैयार हो जाँयगे जो कुछ उनसे मनवाने का आपका विचार होगा।

अन्त में मैं वेदान्त शब्द का अर्थ समझाना चाहता हूँ जो उनके लेखों में बारम्बार आता है। जिस वेदान्त शब्द का स्वामी राम बड़े प्रेम से व्यवहार करते हैं, वह उनके लिये अनेकार्थवाची है। धर्म या दर्शन-शास्त्र के किसी विशेष मत के अर्थ में व्यवहार करके वे उसके भाव को संकीर्ण नहीं बनाना चाहते। यद्यपि किसी कारण से उन्हें इस शब्द से प्रेम होगया था, तथापि वे इसे सदा बदल डालने को तैयार रहते थे, परन्तु जिस भाव को वे इस शब्द से ग्रहण करते थे उसे त्यागने को कभी तैयार नहीं होते थे। इस वस्तु स्वातंत्रवादी (realist) के लिये गुलाब का नाम कोई चीज़ नहीं था, इन्हें तो गुलाब और उसकी सुगन्धि से काम था। उनकी शिक्षाओं को समझने और आदर की दृष्टि से देखने के लिये हमें आध्यात्मिक बारीकियों की भूल भुलैयों में जाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दिन के उज्ज्वल प्रकाश में जीवन के पथों पर हमारे साथ चलते चलते वे अचानक हमें पकड़ लेते हैं; और उदय होते सूर्य की प्रभा में, गुलाब के खिलने में और मोती समान ओस-कणों के भंगुरता में वे हमें वेदान्त की शिक्षा देते हैं।

चलते चलते उनकी शिक्षाओं की प्रतिध्वनियाँ हमें अलाप में, बरसते हुए पानी के रस भरे संगीत

परमहंस स्वामी रामतीर्थ जी महाराज के

हिन्दी भाषा में समग्र उपदेश व लेख

(पूर्व प्रकाशित ग्रन्थावली की संशोधित आवृत्ति)

(१) जिल्द पहली, पूर्वार्द्ध (अंग्रेज़ी भाग १ का अनुवाद) १, आनन्द (Happiness Within)। २, आत्म-विकास (Expansion of Self)। ३, सान्त में अनन्त (The Infinite in the Finite)। ४, कारण शरीर पर आत्म सूर्य (The Sun of Life on the Wall of Mind)। ५, वास्तविक आत्मा (The Real Self)। ६, पाप, आत्मा से उसका सम्बन्ध (Sin Its Relation to the Atman or Real Self)। ७, पाप के पूर्व लक्षण और निदान (Prognosis and Diagnosis of Sin)।

उत्तरार्द्ध (हिन्दी उर्दू के लेख व उपदेश)। १, उपासना। २, ईश्वर-भक्ति (इश्क़े-इलाही)। ३, ब्रह्मचर्य। ४, अकबर-दिली (महान्-आत्मा)। ५, व्यावहारिक वेदान्त वा आत्म-साक्षात्कार।

आरम्भ में सरदार पूर्णसिंह की लिखी अंग्रेज़ी भूमिका का अनुवाद भी है।

आकर २०×३०/१६ पृष्ठ लगभग ३५० मूल्य साधारण संस्करण १) विशेष संस्करण १॥)

(२) जिल्द दूसरी पूर्वार्द्ध (अंग्रेज़ी भाग २ का अनुवाद) १ व २, सफलता का रहस्य (The Secret of Success) जापान व अमेरिका में दिये दो व्याख्यान। ३, ईश्वर-प्रेरणा का स्वरूप (The Nature of Inspiration)। ४, सब इच्छाओं की पूर्ति का मार्ग (The Way to the fulfilment of all desires)। ५, विजयनी आध्यात्मिक शक्ति (The Spiritual Power that wins)। ६, हज़रत मूसा का डण्डा (The rod of Moses).

उत्तरार्द्ध (हिन्दी-उर्दू के लेख व उपदेश) । १, धर्म-तत्त्व (मज़हब की माहियत) । २, नक़द-धर्म । ३, विश्वास या ईमान । ४, आत्म कृपा वा फ़र्ज़े-ऊला । ५, पुरुषार्थ व प्रारब्ध आरम्भ में स्वामी जी के पट्ट शिष्य श्री आर० एस० नारायण स्वामी कृत राम जीवनी का श्रीचन्द्रिका प्रसाद द्वारा लिखा हुआ संक्षिप्त विवरण आकार २०×३०/१६ पृष्ठ लगभग ३५० मूल्य साधारण संस्करण १) विशेष संस्करण १।।)

(३) राम वर्षा भाग १—२

नया और बड़ा संस्करण जिसमें ग्रन्थावली भाग ७, ८ व ६ सम्मिलित हैं इस अनूठी पुस्तक में विशेषतः राम भगवान् की नोटबुकों में पाये हुये भजनों का और साधारणतः श्री गुरु-ग्रन्थ साहिब, कबीर, मीराबाई इत्यादि अनेक महात्माओं के भजनों का संग्रह है। इन भजनों के प्रत्येक शब्द से हृदय की अलौकिक शुद्धि होती है और इनके अध्ययन, श्रवण तथा गायन करने से निज स्वरूप का बोध तथा निदिध्यासन भली प्रकार हो जाता है। इन्हें जो पढ़ेगा या सुनेगा वह अपने अनुभव से आप ही साक्षी देगा। पहला संस्करण जो ग्रन्थावली के ७, ८ व ६ भागों में छपा था उसकी अपेक्षा इस नवीन संस्करण में कहीं ज़्यादा भजन दिये गये हैं।

यह संस्करण दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में तो केवल गाने वाले भजन हैं, और दूसरे भाग में वेदान्त के भिन्न-भिन्न विषय पद्यों में पुरोये हुये हैं, जो प्रायः कविता के रूप में हैं। प्रथम भाग के भजन नौ अध्यायों (अर्थात् १ मंगलाचरण, २ गुरुस्तुति, ३ उपदेश, ४ वैराग्य, ५ भक्ति, ६ आत्मज्ञान, ७ ज्ञानी, ८ त्याग और ६ निजानन्द वा मस्ती) में विभक्त हैं। दूसरे भाग के भजन विविध विषयों के पांच प्रकरणों (१ वेदांत, २ माया, ३ तीन शरीर और वर्ण, ४ निजी अनुभव और ५ भारतवर्ष) में विभक्त हैं। दूसरे भाग में पहले तीन प्रकरणों के

सब भजन स्वामी राम जी की लेखनी से बहे हुए हैं। और पिछले प्रकरणों के भजन दूसरे लेखकों के हैं। देश-भक्ति के चारार्थ और देश-भक्तों के उत्साहार्थ इस संस्करण के अन्त में भारतवर्ष विषयक बहुत से भजन भी दे दिये गये हैं।

आकार $\frac{२२\times२६}{१६}$ पृष्ठ संख्या ५५० मूल्य सधारण संस्करण १ विशेष संस्करण १॥)

(४) स्वामी राम के दश आदेश

अर्थात राम बादशाह के दस हुक्मनामे सहित संक्षिप्त राम जीवनी के, जिस में केवल हिन्दी-उर्दू लेखों व उपदेशों का संग्रह है।

(१) उपासना। (२) ईश्वर-भक्ति (इश्क़े-इलाही)। (३) ब्रह्मचर्य। (४) अकबर-दिली (महान् आत्मा)। (५) व्यवहारिक वेदान्त व आत्म-साक्षात्कार। (६) धर्म-तत्त्व (मज़हब की माहियत)। (७) नक़द-धर्म। (८) विश्वास या ईमान। (९) आत्मकृपा (फ़र्ज़े-ऊला)। (१०) पुरुषार्थ व प्रारब्ध।

आकार $\frac{२०\times३०}{१६}$ पृष्ठ लगभग ३५० मूल्य सुन्दर कपड़े की जिल्द १)

(५) श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली

जो २८ भागों में पहले ग्रन्थमाला के रूप में प्रकाशित हुई थी

मूल्यः—	साधारण संस्करण	विशेष संस्करण
सम्पूर्ण सेट (१–२८ भाग)	१०)	१५)
अर्द्ध सेट (१–१४ वा १५–२८)	६)	८)
चौथाई सेट (२–९, १०–१८, १९–२८)	४)	६)
एकर भाग	॥)	॥।)

उक्त २८ भागों की विषय-सूची इस प्रकार है।

'पहिला भाग':—(१) आनन्द। (२) आत्म-विकास। (३) उपासना। (४) वार्तालाप। इस भाग की बहुत थोड़ी कापी शेष हैं।

'दूसरा भाग':—(१) संक्षिप्त जीवन-चरित्र। (२) सान्त में अनन्त। (३) आत्म-सूर्य और माया। (४) ईश्वर-भक्ति। (५) व्यवहारिक वेदान्त। (६) पत्र-मंजूषा। (७) माया।

'तीसरा भाग':—(१) राम-परिचय। (२) वास्तविक आत्मा। (३) धर्म-तत्त्व। (४) ब्रह्मचर्य। (५) अकबर-दिल्ली अर्थात् आत्म-महत्व। (६) भारतवर्ष की वर्तमान आवश्यकतायें। (७) हिमालय। (८) सुमेरु दर्शन। (९) भारतवर्ष की स्त्रियाँ। (१०) आर्य-माता। (११) पत्र-मंजूषा।

'चौथा भाग':—(१) भूमिका। (२) पाप; आत्मा से उसका सम्बन्ध। (३) पाप के पूर्व लक्षण और निदान। (४) नक़द-धर्म। (५) विश्वास या ईमान। (६) पत्र-मंजूषा।

'पांचवां भाग':—(१) राम-परिचय। (२) अवतरण। (३) सफलता की कुञ्जी। (४) सफलता का रहस्य। (५) आत्म-कृपा।

'छठा भाग':—(१) प्रेरणा का स्वरूप। (२) सब इच्छाओं की पूर्ति का मार्ग। (३) कर्म। (४) पुरुषार्थ और प्रारब्ध। (५) स्वतन्त्रता।

'सातवां, आठवां और नवां भाग':—जिसमें रामवर्षा अर्थात् स्वामी राम के तथा वेदान्त मार्ग-दर्शक अन्य उत्तमोत्तम भजनों का संग्रह है। इनकी सूची पुस्तक नं० ४ रामवर्षा में देखिये।

'दसवां भाग':—(१) हज़रत मूसा का डण्डा। (२) सुधार। (३) उन्नति का मार्ग या राहे-तरक़्क़ी। (४) राम-ढिंढोरा। (५) जातीय धर्म।

'ग्यारहवां भाग':—(१) राम के जीवन पर विचार श्रीयुत सी० एफ० एण्ड्यूज़ द्वारा। (२) विजयनी-आध्यात्मिक शक्ति। (३) लोगों को वेदान्त क्यों नहीं भाता (रिसाला अलिफ़ से राम का हस्त-लिखित उर्दू-लेख)।

'बारहवां भाग':—(१) सुलह की जङ्ग—गङ्गा-तरङ्ग।

'तेरहवां भाग':—(१) 'सुलह की जङ्ग—गङ्गा-तरङ्ग का अवशिष्ट भाग। (२) आनन्द। (३) राम-परिचय।

'चौदहवां भाग':—(१) भारत का भविष्य। (२) जीवित कौन है? (३) अद्वैत। (४) राम।

'पन्द्रहवां भाग':—(१) नित्य जीवन का विधान। (२) निश्चल चित्त। (३) दुःख में ईश्वर। (४) साधारण बात चीत। (५) पत्र-मंजूषा।

'सोलहवां भाग':—(१) ग़ैर मुल्कों का अनुभव। (२) आप अपने घर आनन्दमय कैसे बना सकते हैं? (३) गृहस्थाश्रम और आत्मानुभव। (४) मांस-भक्षण पर वेदान्त का विचार। (५) रामोपदेश।

'सत्तरहवां और अठारहवां भाग':—(१) राम-पत्र, तीन भागों में विभक्त (अर्थात् बाल्यावस्था से ब्रह्मलीन अवस्था तक जो पत्र राम ने अपने पूर्वाश्रम के गुरु भगत धन्नाराम जी को तथा सन्यासाश्रम में अपने अनेक प्रेमियों को लिखे थे उन में से लगभग ३०० चुने हुये पत्रों का संग्रह। (२) भगत धन्नाराम की जीवनी। (३) जल्वा-कोहसार अर्थात् पर्वतीय दृश्य।

'उन्नीसवां भाग':—(१) सत्य का मार्ग। (२) धर्म का अन्तिम लक्ष्य। (३) परमार्थ निष्ठा और मानसिक शक्तियाँ। (४) चरित्र सम्बन्धी आध्यात्मिक नियम। (५) भारत की ओर से अमरीका-

वासियों से विनती। (६) निजानन्द सकल विभूतियों का तमस्सुक है (खुदमस्ती तमस्सुकके उरूज)।

'बीसवां भाग':—(१) स्वर्ग का साम्राज्य। (२) पवित्र अक्षर ॐ। (३) मेरी इच्छा पूर्ण हो रही है। (४) प्रणव-प्रभाव व आत्म-साक्षात्कार। (५) आत्मानुभव का मार्ग। (६) आत्मानुभव पर साधारण वार्तालाप। (७) प्रश्न और उत्तर। (८) क्या, विशेष समाज की आवश्यकता है? (९) आत्मानुभव के मार्ग में कुछ बाधायें।

'इक्कीसवां भाग':—(१) जीवनी, परमहंस स्वामी रामतीर्थ (लेखक श्रीचंद्रिकाप्रसाद)। (२) प्रस्तावना (बा० सुरजनलाल पांडे कृत)। (३) मुखम्मसे राम (बाबू सुरजनलाल कृत)। (४) स्वामी रामतीर्थ (लेखक वनस्पति)।

'बाईसवां भाग':—(१) मनुष्य का भ्रातृत्व। (२) धर्म। (३) छिद्रान्वेषण और विश्वव्यापी प्रेम। (४) रामचरित्र नं० १ (५) रामचरित्र नं २।

'तेईसवां भाग':—(१) रामचरित्र नं० २ (अवशिष्ट भाग)। (२) यज्ञ का भावार्थ। (३) एकता। (४) शान्ति का उपाय (भारतवर्ष की प्राचीन अध्यात्मता। (६) सभ्य संसार पर भारतवर्ष का आध्यात्म-ऋण। (७) कुछ फुटकर कविता (युवा संन्यासी)।

'चौबीसवां भाग'—(१) आरण्य संवाद नं० १ से १२ तक जो अँग्रेज़ी जिल्द दूसरी के अन्त में दर्ज है। (२) हिमालय से भेजे हुये पत्र इत्यादि (३) पत्र-मंजूषा।

'पच्चीसवां भाग':—(१) दृष्टि-सृष्टिवाद और वस्तु-स्वातंत्र्य-वाद का समन्वय। (२) वस्तु-स्वातंत्र्यवाद और दृष्टि-सृष्टिवाद। (३) वेदान्त पर कुछ प्रश्नों के उत्तर। (४) माया, अथवा दुनिया का कब और क्यों। (५) संसार का आरम्भ कब हुआ। (६) संमोहन और वेदान्त। (७) मनुष्य अपने भाग्य का आप ही स्वामी है।

'छब्बीसवां भाग':—मृत्यु के बाद या सब धर्मों की संगति। (२) कक्षा-प्रश्नों के उत्तर। (३) पुनर्जन्म और पारिवारिक बन्धन (४) मैं प्रकाश स्वरूप हूँ। (५) केन्द्रच्युत न हो। (६) आत्मानुभव की सहायता या प्राणायाम। (७) सोऽहम्। (८) वेदान्त और साम्यवाद। (९) आत्मानुभव के संकेत नं० २। (आत्मानुभव के संकेत नं ३ (११) उपदेश-भाग।

'सत्ताईसवाँ भाग':- (१) पाप की समस्या। (२) भारतवर्ष के सम्बन्ध में तथ्य और आंकड़े। (३) पत्र मंजूषा। (४) कविता।

'अट्ठाईसवां भाग':—अर्थात् 'राम-हृदय' इस भाग में अँग्रेज़ी की छोटी पुस्तक 'हार्ट आफ़ राम' का अनुवाद शुद्ध हिन्दी में है।

विषय सूची—(१) भारतवर्ष (२) धर्म और सदाचार (३) दर्शन-शास्त्र (४) प्रेम और भक्ति (५) त्याग व संन्यास (६) ध्यान व समाधि (७) आत्मानुभव (८) राम (९) आनन्द का फुहारा।

---

(६) राम-पत्र।

(अर्थात् ग्रन्थावली भाग १७ वाँ १८ वाँ)

जो लोग ग्रन्थावली के सब खण्ड नहीं मंगवा सकते, वह इस पुस्तक को अवश्य मँगाकर देखें। इसके पढ़ने से पता चलेगा कि श्री-स्वामीजी महाराज की बचपन से ही अपने पथ-दर्शक (गुरू जी) में कितनी असीम श्रद्धा तथा अगाध भक्ति थी। स्वामीजी की छात्र-अवस्था के पत्र वर्तमान छात्रों के लिये विशेषतर उपयोगी हैं। स्वामीजी ने जो पत्र सन्यासाश्रम में अपने अनेक प्रेमियों को लिखे थे वे भी इस पुस्तक में दर्ज हैं। छपाई उत्तम व तीन चित्रों से सुसज्जित है।

आकार $\frac{२०\times३०}{१६}$ पृष्ठ-संख्या २६४ मूल्य साधारण संस्करण १) विशेष संस्करण १॥)

---

(७) राम-जीवनी

श्रीस्वामी रामतीर्थ जी महाराज की संक्षिप्त जीवनी जिसमें स्वामीजी के विषय में बहुत कुछ हाल मौजूद है। जिन्हें राम बादशाह के लेख इत्यादि पढ़ने का सौभाग्य न प्राप्त हुआ हो वे इस छोटी पुस्तक को तो अवश्य पढ़ें। मूल्य केवल ।)

---

(८) श्रीमद्भगवद्गीता।

ब्रह्मलीन श्रीस्वामी रामतीर्थ जी के पट्ट शिष्य श्रीमान् आर. एस. नारायण स्वामी जी द्वारा व्याख्या की हुई दो भाग में। आकार $\frac{२०\times२६}{१६}$ पृष्ठ-संख्या लगभग २०००। मूल्य प्रत्येक भाग २)।

यूँ तो आज कल श्रीमद्भगवद्गीता की कितनीही व्याख्या प्रकाशित हो चुकी हैं, परन्तु जिस कारण यह व्याख्या अति उत्तम गिनीजाती है, उसे "सरस्वती" से ही आप सुन लीजिये।

"सरस्वती" का मत है कि "स्वामीजी ने इस गीता-संस्करण को अनेक प्रकार से अलंकृत करने की चेष्टा की है। पहले मूल, उसके बाद अन्वयार्थानुसार प्रत्येक श्लोक के प्रत्येक शब्द का अर्थ दिया गया है। उसके बाद अन्वयार्थ और व्याख्या है। इसके सिवा जगह-जगह पर टिप्पणियाँ

दी गई हैं जो बड़े महत्त्व की हैं। बीच-बीच में जहाँ मूल का विषयान्तर होता दिखाई पड़ा है, वहां सम्बन्धिनी व्याख्या लिख कर विषय का मेल मिला दिया गया है। स्वामी जी ने एक बात और भी की है। आपने प्रत्येक अध्याय के अन्त में उसका संक्षिप्त सार भी लिख दिया है। इससे साधारण लिखे पढ़े लोगों का बहुत हित साधन हुआ है। मतलब यह है कि क्या बहुज्ञ और क्या अल्पज्ञ दोनों के संतोष का साधन स्वामी जी के इस संस्करण में विद्यमान है। गीता का सरलार्थ व्यक्त करने में आपने कसर नहीं उठा रक्खी।"

आत्मदर्शी बाबा नगीनासिंह वेदी कृत तथा स्वामी रामतीर्थ द्वारा प्रतिष्ठित वेदान्त के दो अमूल्य ग्रंथ।

(१) श्री वेदानुवचन

आकार $\frac{२०×३०}{१६}$ पृष्ठ लगभग ४५० । मूल्य साधारण संस्करण १॥) विशेष संस्करण २)

इस पुस्तक की अमूल्य उपयोगिता की प्रशंसा स्वयं स्वामी रामतीर्थ जी महाराज ने की थी और इस पुस्तक से उन्होंने बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया था। कर्मकांड, ज्ञान-कांड, बंध और मोक्ष इन्हीं तीन स्तंभों में वेदों का सार इस पुस्तक में बड़ी ही सरल भाषा में दिया गया है। धार्मिक पुरुषों के लिये यह पुस्तक स्वर्ग की निसेनी कही जा सकती है। अवश्य मँगाकर पढ़िए।

(२) आत्मसाक्षात्कार की कसौटी

(उर्दू मियारुलमुक़ाशफ़ा का हिन्दी अनुवाद)

आकार $\frac{२०×३०}{१६}$ पृष्ठ लगभग १७५ मूल्य साधारण संस्करण ||) विशेष संस्करण |||)

यह पुस्तक छांदोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठक की व्याख्या का सरल हिन्दी अनुवाद है। इसके आरम्भ में लेखक की जीवनी भी दी गई है। 'आत्मसाक्षात्कार' के लिये यह पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है। स्वामी रामतीर्थ जी ने आत्म-दर्शन के सम्बन्ध में इस पुस्तक को अपना सहायक माना है। प्रत्येक धर्म-जिज्ञासु को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

में, और "मनुष्य तथा पशु-पक्षी दोनों" की जीवन-स्पन्दों में सुनाई देती हैं। प्रभात में फूलों का खिलना मानों उनकी बाइबिल (धर्मग्रन्थ) का खुलना है। सांझ में तारों का चमकना मानों उनके वेदों का प्रकट होना है। बहुरंगे जीवन की जीती-जागती व्यक्तियों में उनका अलक़ुरान मोटे अक्षरों में लिखा हुआ है।

"समय और विचार मेरे पैमाने थे,
उन्होंने अपने रास्ते ख़ूब बनाये,
उन्होंने समुद्र को भरा और पत्थर,
चिकनी मिट्टी तथा सीप की तहों को पकाया।"

"Time and thought were my surveyors,
They laid their courses well,
They poured the sea and baked the layers,
Of granite, marl and shell."

मानव-हृदय रूपी कमल के दल उनके प्रमाण के पन्ने थे और उन्हें पता लग गया था कि प्रत्येक नर और नारी ने अपने आप में वेदान्त के अर्थों को स्थान दे रक्खा है। हर एक उन्नति करती हुई जाति इस सत्य का समर्थन करती है, और हर एक मरती हुई जाति इसके अनुभव का अभाव प्रकट करती है। प्रत्येक वीर (महापुरुष) इसके प्रकाश का द्योतक है। प्रत्येक महात्मा इसकी दमक फैलाता है। प्रत्येक कवि इसके गौरव का स्वाद लेता है। प्रत्येक चित्रकार (कारीगर) अपने नेत्रों से अति हर्ष के आँसुओं में इसे बहाता है। कोई प्रफुल्लित और सन्तुष्ट मुख देखते ही राम उसे वेदान्ती-मुख की उपाधि दे देते थे। कभी किसी ऐसे विजयी का सामना उनसे नहीं हुआ जिसे उन्होंने व्यावहारिक वेदान्ती न कहा हो। जापानियों का दैनिक जीवन देख कर उन्हें वे अपने वेदान्त का अनुयायी कहने लगे। अमे-

रिकनों के एल्पस् (Alps) और अन्य पहाड़ों पर चढ़ने तथा नियागरा की तेज़ धारा को तैर कर पार जाने के साहस पूर्वक कठिन कृत्यों को वे वेदान्ती भावना का प्रकाश समझते थे। जब वे यह समाचार पढ़ते कि कुछ व्यक्तियों ने अपने शरीरों को वैज्ञानिक अनुसन्धान निमित अंगच्छेद (vivisection) कराने को अर्पण किया है, तो उन्हें यह अपने तत्वज्ञान का व्यावहारिक स्वरूप सिद्ध होता दिखाई देता। ऐसे अवसरों पर उनका चेहरा दमकने लगता था और नेत्रों में आँसू भर आते थे, और वे कहते थे, "सचमुच यह सत्य की सेवा है"। सच्ची लोक-तंत्रता (democracy) और सच्चे साम्यवाद (socialism) के आधुनिक आदर्शों में स्वामी राम को पूर्वीय वेदान्त की अन्तिम विजय दिखाई देती थी।

आन्तरिक पुरुष और आन्तरिक प्रकृति की मुख्य एकता के सत्य पर खड़े होकर वे कहते हैं, केवल वही जीते हैं जो प्रेम की विश्व-व्यापी एकता का अनुभव करते हैं। जीवन के सच्चे सुख केवल उन्हीं को मिलते हैं जो भूमि-कमल (lily) और नीले पुष्प (violet) की नसों के खून को अपना ही मानते हैं। अपने आप में सब चीज़ों को और सब चीज़ों में अपने आपको देखना ही असली आँखवाला होना है, जिसके बिना प्रेम और सुंदरता आकर्षक हो ही नहीं सकतीं। और बिना प्रेम या आकर्षण के, वे पूछते हैं, जीवन है ही क्या? इस भावना में जब किसी व्यक्तिगत-जीवन को वे शरीर और चित्त से ऊपर उठते देखते हैं, तो उन्हें आकाश में इन्द्र-धनुष दिखाई देता है और अपार हर्ष से वे उछल पड़ते हैं। बुद्धि द्वारा वेदांत के सिद्धान्तों का मान लिया जाना ही उनके लिये वेदांत नहीं है। वे प्रेम की पवित्र वेदी पर गम्भीरता पूर्वक शरीर और चित्त

की शुद्ध भेंट को वेदान्त समझते हैं। दर्शन-शास्त्र और तर्क, पुस्तक और प्रमाण, पाण्डित्य और अलङ्कार-विद्या से बुद्धि की अनुमति पुष्टि पाकर बढ़ सकती है, किंतु इन उपायों से राम के वेदान्त की प्राप्ति किसी को नहीं हो सकती। शरीर और मन का असली और सच्चा त्याग तभी होता है, जब चित्त में प्रेम की ज्वाला प्रदीप्त होती है शरीर का मानसिक त्याग और शरीर की हर एक नस का प्रेम के चरणों में अर्पण और प्रेममयी सेवा में चित्त का समर्पण मनुष्य के भीतरी स्वर्ग के कपाट खोल देता है। राम का वेदांत उस दिव्य चेतनता की सुंदर शान्ति है कि जो शरीर और चित्त के बन्धनों से मुक्त है, जहाँ वाणी मूक हो जाती है, जहाँ सूर्य और चंद्र का लोप हो जाता है, जहाँ समग्र दृष्टि स्वप्न की तरह हिलोरें लेकर अनंत में चक्कर लगाती है। इस स्थान से राम नीचे सीढ़ी लटकाते हैं कि हम उन तक पहुँच सकें और वहाँ से नीचे को दुनिया के दृश्य देख सकें। अक्षय शांति वहाँ बँट रही है और वहाँ मनुष्य पूरी तरह ईश्वर में लीन हो जाता है। वहां सब तर्क-वितर्क बंद हो जाता है। वहाँ जो भी हैं अपने चारों ओर केवल देखते और मुसकराते हैं, और हरेक से कहते हैं, "तू अच्छा है" "तू विशुद्ध है", "तू पवित्र है", "तू ही वह है"।

Neither the sun shines there, nor sparkles the moon,
Pranas and sound are hushed into Silence,
All life reposes in Soul's Sweet Slumber,
No God, no man, no cosmos there, no soul,
Naught but golden Calm and Peace and Splendour.

न वहां सूर्य चमकता है, न चंद्र जगमगाता है,
प्राण और शब्द मौन हैं,

आत्मा की मधुर निद्रा में सम्पूर्ण जीवन आराम कर रहा है,
न वहां ईश्वर है, न मनुष्य, न जगत् है न जीव,
स्वर्णमयी शांति, स्थिरता और प्रकाश के बिना वहां कुछ नहीं है।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

पूर्णसिंह

भीतर का ध्रुव

(The Pole-Star Within)

श्री स्वामी रामतीर्थ ।



SHRI SWAMI RAM TIRTHA.

LUCKNOW, 1905.

S. P. Press Lucknow.

ॐ

स्वामी रामतीर्थ।

आनन्द।

ता० १७ दिसम्बर १६०२ को सैन फ्रांसिस्को की विज्ञान-सभा में दिया हुआ व्याख्यान।

महिलाओं और भद्रपुरुषों के रूप में मेरे ही आत्मन्!

राम यूरोपीय और ईसाई राष्ट्रों को दोष नहीं देता कि वे अपनी सेनाओं और सैन्यदलों से अन्य राष्ट्रों को क्यों विजय कर रहे हैं। किसी समय राष्ट्र की आध्यात्मिक उन्नति में यह भी एक आवश्यक अवस्था है। भारत को यह अवस्था व्यतीत करनी पड़ी थी; किन्तु बहुत प्राचीन जाति होने के कारण उसने सांसारिक सुखों को तराज़ू में तौला और निस्सार पाया। जो राष्ट्र आज

आनन्द ही सबका अन्तिम साध्य है।

कल सांसारिक ऐश्वर्य और सम्पत्तियों के संग्रह में लिप्त हैं, उन्हें भी यही अनुभव होगा। ये सब राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों को अधीन करने के लिये अपनी सेनाओं से चढ़ाई करने का प्रयत्न क्यों कर रहे हैं? इन बातों में वे क्या ढूँढ़ रहे हैं? केवल आनन्द, सुख और हर्ष ढूँढ़ा जा रहा है। यह सत्य है कि कुछ लोग कहते हैं, हम सुख की नहीं, किन्तु ज्ञान की खोज में हैं। दूसरे कहते हैं, हम सुख की नहीं, किन्तु काम-काज की तलाश में हैं। ये सब बातें बहुत ठीक हैं; किन्तु सामान्य मनुष्यों और साधारण प्राणियों के मन और हृदयों को टटोलिये। आप को पता लगेगा कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से, जान कर या अनजाने, जिस अन्तिम उद्देश्य को उन्होंने अपने सामने रक्खा है, जिस अन्तिम लक्ष्य के लिये वे सब प्रयत्न कर रहे हैं, वह आनन्द है, एक मात्र आनन्द है।

आइये, आज यह विचार करें कि आनन्द कहाँ रहता है; वह महल में रहता है या झोंपड़े में, वह कामिनियों की कांति में है अथवा सोने और चांदी से मोल ली जा सकने वाली वस्तुओं में; आनन्द का जन्म स्थान कहां है? आनन्द का भी अपना एक स्वतंत्र इतिहास है। यह बड़े बड़े भ्रमणों का समय है। वाष्प और विद्युत् ने देश और काल का उच्छेद कर दिया है। ये लम्बी यात्राओं के दिन हैं, और हरएक अपनी यात्रा का वृत्तान्त लिख डालता है। आनन्द भी यात्रा करता है। उसकी यात्रा का कुछ हाल हमें जानना चाहिये।

हम आनन्द की प्रथम झलक से आरम्भ करते हैं, जो बच्चे में उसकी बाल्यावस्था में होती है। शिशु के लिये तो संसार का सारा सुख अपनी माता के आँचल में या प्यारी माता की गोद में ही है। उसके लिये तो

आनन्द का इतिहास।

सम्पूर्ण आनन्द वहीं है। जिस प्रधान मार्ग पर आनन्द को यात्रा करनी है, उसका पहला पड़ाव माता का आँचल या माता की गोद है। गोदी के बच्चे के लिये इस दुनिया में आनन्ददायक वस्तु माता की गोद से बढ़ कर और कोई नहीं है। बच्चा माता के आँचलों में अपना मुँह छिपा कर कहता है "माँ, मात! देख! मैं कहां हूं?" और प्रसन्न हो हँसता है। वह जी खोल कर खूब हँसता है। पुस्तकें बच्चे के लिये निरर्थक हैं। खज़ानें उसके लिये व्यर्थ हैं। जिस बच्चे का अभी दूध नहीं छूटा, उसके लिये फलों और मिठाइयों में कोई स्वाद नहीं है। उसके लिये सारे संसार का आनन्द माता की गोद में ही एकत्रित है।

एक वर्ष बीतने पर बच्चे के आनन्द का केन्द्र बदल जाता है। वह हट कर किसी दूसरी जगह चला जाता है। आनन्द अब खिलौनों, सुन्दर गुड्डे, गुड़ियों और बबुओं में निवास करता है। इस दूसरी अवस्था में बच्चा माता को उतना नहीं चाहता जितना अपने खिलौनों को। कभी कभी बच्चा प्यारी माता से भी खिलौनों और बबुओं के लिये झगड़ा ठानता है।

कुछ महीने या वर्ष और बीतने पर, गुड़ियों और बबुओं में भी उसे आनन्द नहीं मिलता। आनन्द फिर अपना केन्द्र-स्थान बदल देता है। अब इन वस्तुओं में भी उसकी स्थिति नहीं रहती। तीसरी अवस्था में जब शिशु बढ़ कर लड़का हो जाता है, तो आनन्द उसके लिये पुस्तकों में, विशेषतः कहानियों की किताबों में जा ठहरता है। यह एक सामान्य बुद्धि के बालक की बात है। कभी कभी आनन्द उसके लिये दूसरे पदार्थों में होता है; किन्तु हम सामान्य घटना की चर्चा कर रहे हैं। अब बालक का सम्पूर्ण प्रेम और स्नेह कहानी की किताबों में एकाग्र

हो जाता है। अब खिलौनों, बबुओं और गुड़ियों की आकर्षणता जाती रही। कहानी की किताबों ने उनका स्थान ले लिया और वह पुस्तकों को सुन्दर तथा मनोहर पाता है; किन्तु आनन्द यात्रा आगे करता है।

विद्यालय त्याग कर लड़का महाविद्यालय में प्रवेश करता है। महाविद्यालय के जीवन में उसे किसी दूसरी ही वस्तु में आनन्द मिलता है; वैज्ञानिक पुस्तकें और तात्त्विक ग्रन्थ मान लीजिये। वह उन्हें कुछ समय तक पढ़ता है; परन्तु उसका आनन्द पुस्तकों से चल कर विश्वविद्यालय की उपाधियों और सम्मान पाने के विचारों में जा पहुँचता है। अब उसके आनन्द का निवासस्थान, उसकी प्रफुल्लता का मुख्य धाम उसकी आकांक्षा है। विद्यार्थी विश्वविद्यालय से कीर्ति पूर्वक निकलता है। वह अच्छी आय का पद प्राप्त करता है। और अब इस युवा पुरुष का सर्व आनन्द धन में, ऐश्वर्य में केन्द्रीभूत हो जाता है। अब (इस चौथी अवस्था में) उसके जीवन का एक मात्र स्वप्न सम्पत्ति सञ्चय करना, सम्पत्तिशाली होना ही हो जाता है। वह बड़ा आदमी बनना, विपुल वसुधा बटोरना चाहता है। कार्यालय में कुछ महीने काम करने के बाद जब वह कुछ दौलत पा जाता है, तब उसका आनन्द किसी दूसरी वस्तु पर जा टिकता है। वह कौनसी वस्तु है? क्या बताने की आवश्यकता है? वह है रमणी। अब (इस पाँचवीं अवस्था में) युवा पुरुष को स्त्री की आकांक्षा है, और उसकी प्राप्ति के लिये वह अपनी सारी सम्पत्ति ख़र्च कर डालने को प्रस्तुत है। माता के आँचल से अब उसे कोई आनन्द नहीं मिलता, खिलौनों में अब उसके लिये कोई मोहिनी नहीं, कहानी की किताबें दूर फेंक दी जाती हैं; और केवल उन्हीं अवसरों पर

पढ़ी जाती हैं जब उनसे उसके जीवन के स्वप्न अर्थात् कामिनी की प्रकृति के अनुभव में कुछ सहायता मिलने की आशा होती है। स्त्री के लिये वह सर्वस्व त्याग करने को तैयार है।

इस विषय-वासना की तुच्छ तरंगों के लिये, जो उसके आनन्द का अब मुख्य धाम हो रहा है, कठिन परिश्रम से उपार्जित धन को वह लुटा डालता है। युवा कुछ काल तक स्त्री के संग रहता है; और देखिये तो सही! आनन्द अब कुछ आगे दिखाई पड़ने लगता है। प्रारम्भ में जो आनन्द अपनी स्त्री के ध्यान से उसे मिलता था, अब वह नहीं प्राप्त होता। साधारण युवक अर्थात् पूर्वीय भारत (ईस्ट इण्डिया) के साधारण युवक का उदाहरण लीजिये। इस युवक का आनन्द अब स्त्री से चल कर पुत्र-उत्पत्ति में पहुँच जाता है। अब पुत्र उसके जीवन का स्वप्न बन जाता है। वह एक पुत्र अर्थात् फ़रिश्ता, देवता वा दिव्यमूर्ति को चाहता है। राम इस देश (अमरीका) की दशा से अधिक परिचित नहीं है; किन्तु भारत में विवाह करने के उपरांत लोग सन्तान के लिये तरसने लगते हैं और तदर्थ ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। यथाशक्ति वे कोई बात उठा नहीं रखते, वैद्यों की सहायता लेते हैं और सिद्ध-साधकों से आशीर्वाद की प्रार्थना करते हैं। सारांश यह कि पुत्र से भाग्यवान् होने के लिये जहाँ तक हो सकता है वे सभी कुछ करते हैं।

युवक का अब सब आनन्द पुत्रोत्पत्ति की आशा में एकत्रित हो जाता है। आनन्द की यात्रा अथवा हर्ष के प्रस्थान में छठा पड़ाव पुत्र है। फिर युवक जब पुत्र-लाभ से भाग्यवान् होता है, तो उसके आनन्द की कोई सीमा नहीं रहती, हृदय गद्गद होता है, वह उछल पड़ता है, फूल कर कुप्पा हो जाता है, मानों भूमि से कई हाथ ऊपर उठ जाता है, वह चलता नहीं है, मानों हवा

में उड़ता है। पुत्र लाभ उसके अन्तःकरण को आनन्द से परिपूर्ण कर देता है। इस छठी अवस्था में युवक का आनन्द उक्त चन्द्र-मुख पुत्र में एक प्रकार से पराकाष्ठा को पहुँच जाता है। जिस क्षण वह अपने पुत्र का मुख देखता है, वह अत्यन्त आनन्द का समय होता है। अब साधारण मनुष्य का आनन्द अपनी चरम सीमा को पहुँच गया। तत्पश्चात् युवक का उत्साह कम होने लगता है। बच्चा किशोरावस्था को प्राप्त होता है, और आकर्षणता चल बसती है। इस मनुष्य का आनन्द योंही यात्रा करता रहेगा; कभी यहाँ ठहरा, कभी वहाँ।

आनन्द का उद्गम स्थान।

अब हमें विचारना चाहिये कि क्या सचमुच आनन्द ऐसी वस्तुओं में अर्थात् माता के आँचल, गुड्डे-गुड़ियों, पुस्तकों, वैभव, स्त्री और पुत्र में, अथवा किसी भी सांसारिक वस्तु या पदार्थ में है? आगे बढ़ने के पूर्व, आओ, भ्रमणशील आनन्द की भ्रमणशील सूर्यप्रकाश से तुलना करें। प्रभाकर की प्रभा भी यहाँ से वहाँ विचरती रहती है। एक समय वह भारत को प्रकाशित करती है तो दूसरे समय यूरोप को। वह आगे ही बढ़ती है। जब सायंकाल की छाया पड़ती है, तब देखो, कितनी शीघ्रता से सूर्य-प्रभा स्थान बदलती है। वह पूर्वीय अमेरिका में चमकती है और वहाँ से पश्चिम की ओर बढ़ती है। देखिये, सूर्य-प्रकाश कैसा अँगूठों के बल फुदकता फिरता है, इस देश से उस देश में बिछलता हुआ वह जापान में अपनी जगमगाहट फैलाता है, इसी तरह आगे भी। सूर्य-प्रभा एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करती रहती है; किन्तु ये विभिन्न स्थान, जहां सूर्यज्योति दिखाई पड़ती है, उसके उद्गम या निवासस्थान नहीं हैं। सूर्य-ज्योति का निवासस्थान कहीं

अन्यत्र ही है ; सूर्य में है। सूर्य-प्रभा की भाँति इधर से उधर निरन्तर गमनशील आनन्द की परीक्षा भी हमें इसी प्रकार करनी चाहिये। आनन्द कहां से आता है? उसका वास्तविक घर कहाँ है? आनन्द के सूर्य की ओर हमें देखना चाहिये।

पुत्र से धन्य होने वाले भद्रपुरुष का उदाहरण ले लीजिये। वह अपने कार्यालय में बैठा हुआ है। अपने कार्य में प्रवृत्त है। एकाएक उसे घंटी की टनटन सुनाई देती है। कौनसी घंटी? टेलीफ़ोन की घंटी। वह झपट कर टेलीफ़ोन के पास पहुँचता है ; परन्तु संदेश सुनने के समय उसका कलेजा धड़कने लगता है। कहावत है कि आने वाले संकटों की छाया पहले ही से पड़ने लगती है। उसका हृदय धड़क रहा है, पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ था। वह टेलीफ़ोन के पास पहुँच कर संदेश सुनता है। राम राम! बड़ा ही दुखदायी समाचार रहा होगा। बेचारा भद्रपुरुष सिसकियां ले ले कर कराह रहा है, उसकी सुध-बुध जाती रही, चेहरे का रंग उड़ गया। पीला, मुर्दनी छाया हुआ मुख लेकर वह झट अपने आसन पर आया, कोट पहना तथा टोपी दी और कार्यालय से चल दिया, मानों उसे बन्दूक़ की गोली सी लग गई है। उसने अपने प्रधान से, कार्यालय विभाग के मुखिया से अनुमति भी नहीं ली। कमरे में उपस्थित चाकरों से उसने कोई बात तक भी नहीं कही। अपनी चौकी (टेबिल) पर फैले हुए कागज़ पत्रों को भी समेट कर उसने बन्द नहीं किया। उसका ज्ञान-ध्यान सब जाता रहा, और सीधा कार्यालय से चल दिया। उसके साथी चकित रह गये। सड़क पर पहुँच कर अपने सामने उसने एक गाड़ी जाती देखी। वह दौड़कर गाड़ी के पास पहुँचता है और वहाँ डाकिया उसे एक पत्र देता है। इस पत्र में उसके लिये यह सुसमाचार

था कि वह एक बड़ी सम्पत्ति का स्वामी हुआ है। सांसारिक दृष्टि से यह संवाद कदाचित् सुखकर हो सकता है। इस मनुष्य ने एक चिट्ठी (lottery) डाली थी और डेढ़लाख रुपया उसके नाम में निकला था। इस समाचार से उसे प्रसन्न हो जाना चाहिये था, आनन्द से नाच उठना चाहिये था; किन्तु ऐसा नहीं हुआ, ऐसा नहीं हुआ। टेलीफ़ोन से प्राप्त संदेश उसके हृदय को मसोस रहा था। इसलिये इस नये समाचार से वह सुखी नहीं हुआ। इस ट्राम गाड़ी में उसने एक बहुत बड़े राज-अधिकारी को ठीक अपने सामने बैठा पाया। यह वही अधि-कारी था, जिससे भेंट करना उसके जीवन का एक स्वप्न हो रहा था; किन्तु देखो तो! इस भद्रपुरुष ने उस राज-कर्मचारी से नज़र भी नहीं मिलाई, अपना मुँह फेर लिया। एक महिला-मित्र का मधुर मुख भी उसे दिखाई पड़ा। हमारे भद्रपुरुष को इस महिला से मिलकर बातचीत करने की लालसा रहा करती थी; किन्तु इस समय उसकी मधुर मुसकयान के प्रति वह उदासीन रहा। अस्तु, अब हमें उसे अधिक काल तक संदि-ग्धावस्था में रखना उचित नहीं है और न आप ही को देर तक सन्देह में रखना चाहिये। जिस सड़क पर उसका घर था, वहां वह पहुँच गया। बड़ा हल्ला गुल्ला हो रहा था। उसने देखा कि धुंए के मेघ आकाश में चढ़ चढ़ कर सूर्यदेव को ढक रहे हैं। उसने देखा कि अग्नि-शिखायें आकाश का चुम्बन कर रही हैं। उसने अपनी स्त्री, दादी, माता तथा अन्य मित्रों को अग्नि-काण्ड के लिये, जिससे उनका घर स्वाहा हो रहा था, रोते और हाय हाय करते देखा। उसने अपने और सब स्नेहपात्रों को तो वहां देखा, केवल एक को न पाया। उसके आनन्द के उन दिनों का केवल केन्द्र ग़ायब था; प्रिय पुत्र, मधुर छोटा शिशु

लुप्त था। वह वहां नहीं था। उसने पुत्र के सम्बन्ध में पूछा; किंतु स्त्री कोई उत्तर न दे सकी। रोना और सिसकना ही उसका प्रत्युत्तर था, जो अबोध्य था। सत्य का उसे पता लग गया। उसे मालूम हुआ कि पुत्र घर ही में छूट गया। आग लगने के समय बच्चा अपनी धाय के पास था, धाय बच्चे को पालने में सुला कर कमरे से चली आई थी। आग से घर जलता देख घरवाले घबड़ाकर जल्दी से निकल भागे। सब ने यही समझा कि बच्चा किसी न किसी घरवाले के पास होगा। सब के सब निकल भागे और अब उन्हें मालूम हुआ कि बच्चा उसी कमरे में रह गया, जिसे अब अग्नि आवृत्त कर रही थी। लोग रो रहे थे, दाँत कटकटा रहे थे, ओंठ काट रहे थे, छाती पीट रहे थे; किंतु कोई वश न चलता था। हमारा भद्रपुरुष, उसकी स्त्री, उसकी माता, एवम् मित्र और धाय चिल्ला चिल्ला कर एकत्रित जनसमूह से, पुलिसमैनों से, लोगों से अपने प्रिय छोटे बच्चे को बचाने की प्रार्थना कर रहे थे। "जिस तरह हो सके, हमारे छोटे बच्चे को निकालो। हम अपनी सब सम्पत्ति दे देंगे, आज से दस वर्ष तक जितना धन सञ्चय करेंगे दे देंगे, हम सब कुछ भेंट कर देंगे, हमारे बच्चे को बचाओ, हमारे बच्चे को बचाओ।" (आप को याद होगा कि यह दुर्घटना ऐसे देश में हुई थी, जहां फ़ायर इनश्योरेंस कम्पनियाँ उसी प्रमाण में मौजूद नहीं हैं जिस प्रमाण में इस देश में हैं।) वे बच्चे के लिये सब कुछ दे डालने को तैयार हैं। सचमुच, पुत्र ऐसी ही मधुर वस्तु है, शिशु बड़ा ही प्रिय वस्तु है, और वह इसी योग्य है कि सम्पूर्ण सम्पत्ति और वसुधा उसके लिये निछावर कर दी जायँ; किंतु राम का प्रश्न यह है, "क्या पुत्र आनन्द का मूल साधन है, संसार में सब से अधिक प्रिय वस्तु है, अथवा

आनन्द की जड़ कहीं और ही है?" ध्यान दीजिये। प्रत्येक वस्तु प्रिय पुत्र के लिये अर्पण की जा रही है, किंतु क्या किसी प्रियतर, किसी अन्य वस्तु के लिये स्वयं पुत्र का बलिदान नहीं किया जा रहा है? पुत्र के लिये दौलत दी जा रही है, माल दिया जा रहा है, सम्पत्ति दी जा रही है, किंतु पुत्र किसी दूसरी ही वस्तु के लिये दिया जा रहा है। आग में फाँदने का जो लोग साहस करें, उनके प्राण चाहे चले जाँय; किंतु वह प्यारा शिशु किसी दूसरी ही वस्तु पर, किसी उच्चतर वस्तु पर निछावर किया जा रहा है। यह अन्य वस्तु अवश्य ही पुत्र से भी बढ़ कर प्रिय होगी, यही अन्य वस्तु वास्तविक केन्द्र होगी, आनन्द का वास्तविक उद्गम स्थान होगी। यह अन्य वस्तु क्या है? विचारिये तो सही! वे स्वयं आग में नहीं कूद पड़े। यह अन्य वस्तु अपना आप (Self-आत्मा) है। यदि वे स्वयं आग में कूदते हैं, तो अपने को भेंट चढ़ाते हैं, और यह करने को वे तय्यार नहीं हैं। अन्य सब चीज़ें तो पुत्र पर निछावर हैं, और पुत्र उस अपने आप (Self) पर निछावर है।

अब हमें पता लग गया कि आनन्द की सर्वोपरि अवस्था, अर्थात् पुत्र, में आनन्द नहीं है। पुत्र सुन्दर, प्रिय, और आनन्द का मूल इस लिये है कि वह उस ज्योति से सुशोभित है, जो आत्मा (Self) से निर्गत होती है। ज्योति स्वयं पुत्र में आलथी पालथी लगाये हुए नहीं है। यदि आनन्द-रूपी ज्योति पुत्र में अन्तर्निहित (inherent) होती, तो पुत्र के शरीर में वह सदा बनी रहती। सत्य तो यह है कि पुत्र के मुख को उद्भासित करने वाली ज्योति अपने भीतर के सरोवर

आनन्द का उद्गम-स्थान आत्मा है।

(आत्मा) से निकल रही थी। आनन्द का वास्तविक उद्गम-स्थान अपना आत्मा है।

अब हम आनन्द के घर, आनन्द के मूल स्थान के कुछ निकट पहुँच गये हैं।* पुत्र इसलिये प्यारा नहीं है कि वह पुत्र है, पुत्र आत्मा (Self) के लिये प्यारा है। स्त्री, स्त्री के लिये प्यारी नहीं है, पति, पति के लिये प्यारा नहीं है, स्त्री आत्मा के लिये प्यारी है, पति आत्मा के लिये प्यारा है। यथार्थ बात यह है। लोग कहते हैं कि वे किसी वस्तु को उसी के लिये प्यार करते हैं; किन्तु ऐसा नहीं हो सकता, नहीं हो सकता। दौलत दौलत के लिये प्यारी नहीं है, दौलत प्यारी है आत्मा के लिये। जब स्त्री से, एक समय जो प्यारी थी, काम नहीं चलता, तब उसे पति तलाक़ दे देता है। इसी तरह पति से, जो एक समय प्यारा था, जब काम नहीं चलता, तब स्त्री उसे त्याग देती है। जब दौलत से काम नहीं निकलता, वह छोड़ दी जाती है। आप नीरो राजा का हाल जानते हैं। उसे सुन्दर रोम (Rome), अपनी राजधानी

* "न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति। न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति। न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति। न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति। न वा अरे पशूनां कामाय पशवः प्रिया भवन्ति आत्मनस्तु कामाय पशवः प्रिया भवन्ति।... ...न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति" ॥ (बृहदारण्यकोपनिषद्, अध्याय ४, ब्राह्मण ५ याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी के संवाद में छठा मंत्र है।)

अधिक काम की अथवा अधिक रोचक नहीं जान पड़ी। उसके लिये तो उसे अग्नि-काण्ड, प्रकाण्ड उत्सव-दहन में देखना अधिक रुचिकर था। देखिये ! वह एक निकटवर्ती पहाड़ की चोटी पर चला गया, और विराट अग्नि-काण्ड के दृश्य का सुख लूटने की इच्छा से अपने मित्रों से सारे नगर में जाकर आग लगा देने को कहा। रोम भस्म हो रहा था और नीरो चिकारा बजा रहा था। इस प्रकार हमें पता लगता है कि वैभव भी त्याग दिया जाता है, जब उससे हमारा काम नहीं चलता। राम ने एक अति विचित्र घटना अपनी आँखों से देखी है। एक समय गंगा नदी में बड़ी बाढ़ आगई थी, नदी चढ़ती ही चली जाती थी। एक वृक्ष की शाखा पर अनेक बन्दर बैठे हुए थे। इनमें एक बंदरिया थी और उसके कई बच्चे थे। ये सब बच्चे अपनी माँ के पास चले गये। बंदरिया जहाँ बैठी थी, वहाँ तक पानी पहुँच गया। वह उचक कर और भी ऊँची डाल पर चली गई। वहाँ भी पानी पहुँच गया। वह सब से ऊँची टहनी पर चढ़ गई, किन्तु जल वहाँ भी पहुँच गया। सब बच्चे अपनी माँ के अंग में चिपटे हुए थे। जब पानी उसके पैरों तक चढ़ गया, उसने एक बच्चे को पकड़ कर अपने पैरों तले रख लिया। पानी और भी चढ़ा। बंदरिया ने दूसरे बच्चे को पकड़ कर अपने पैरों के नीचे रख लिया। पानी और भी ऊँचा उठा और अपनी रक्षा के लिये उसने तीसरे बच्चे को भी निर्दयता से पैरों के नीचे दबाया। ठीक यही दशा है। लोग और चीज़ें हमें उसी समय तक प्यारी हैं जब तक उनसे हमारा स्वार्थ सिद्ध होता है, हमारी इच्छा पूर्ण होती है। उधर हमारे स्वार्थ को धक्का लगने की आशंका हुई, इधर हमने सब चीज़ों को भेंट चढ़ाया। ..

इस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि आनन्द का आसन, मूल-स्थान कहीं अपने आप में है। सुख का घर कहीं

प्रीति का तारतम्य भाव।

अपने में तो है; परन्तु कहाँ है? पैरों में है? चरण सकल शरीर के अवलम्ब हैं, उनमें हो सकता है; किन्तु नहीं, चरणों में वह नहीं है। यदि पैरों में आनन्द का घर होता तो पैर संसार की सब वस्तुओं से अधिक प्रिय होते। यह ठीक है कि पैर सब बाहरी वस्तुओं से अधिक प्रिय हैं; परन्तु वे हाथों के तुल्य प्रिय नहीं हैं। तो आनन्द का निवासस्थान क्या हाथों में है? हाथ पैरों की अपेक्षा प्यारे तो हैं, किन्तु वे भी आनन्द का घर नहीं हैं। तो क्या आनन्द नाक या नेत्र में टिका हुआ है? नेत्र हाथों या नाक से अधिक प्रिय अवश्य हैं; परन्तु आनन्द का अवस्थान उनमें भी नहीं है। किसी ऐसी वस्तु की कल्पना कीजिये जो नेत्रों से भी अधिक प्रिय हो। आप कह सकते हैं, प्राण। मैं कहता हूं, पहले समग्र शरीर को लीजिये। समग्र शरीर आनन्द का घर नहीं है। हम देखते हैं कि यह समग्र शरीर भी हम त्यागते रहते हैं, हम प्रति क्षण बदल रहे हैं। कुछ वर्षों में शरीर के प्रत्येक परमाणु का स्थान नये परमाणु ग्रहण कर लेते हैं। आनन्द का स्थान कदाचित् बुद्धि, मस्तिष्क या मन में हो, सम्भव है। अब यह विचारना है कि बुद्धि से भी प्रियतर कोई वस्तु है या नहीं। आओ, विवेचन करें। यदि बुद्धि से बढ़कर मधुर और प्रिय कोई वस्तु ठहरे, तो वही आनन्द का स्थान होगी। हम कहते हैं कि जीवन, या हिन्दू शब्दावली में प्राण, आनन्द का मूल हो सकता है, क्योंकि मेधाशक्ति खोकर भी प्रायः लोग जीना चाहते हैं। दो विकल्पों में वरण (choice) करना है, मृत्यु का आलिंगन कीजिये, अथवा विक्षिप्त या बावले होकर

जीते रहिये। प्रत्येक मनुष्य पागलपन की दशा में भी जीना ही पसन्द करेगा। इससे विदित हुआ कि प्राण की वेदी पर बुद्धि या मेधाशक्ति का बलिदान होता है। तो कदाचित् प्राण, व्यक्तिगत प्राण, आनन्द का स्थान, सम्पूर्ण आनन्द का जन्म-दाता सूर्य्य होगा। अब विचार कीजिये कि प्राण आनन्द का वास्तविक स्थान है या नहीं। वेदांत कहता है नहीं! नहीं! प्राण भी आनन्द का स्थान नहीं है। आनन्द का आश्रम, भीतरी स्वर्ग, और भी ऊँचे पर है, "व्यक्तिगत, शारीरिक प्राण से भी परे है"। तो फिर वह है कहाँ?

राम ने एक बार एक युवक को ठीक मरते समय देखा। वह एक प्रचण्ड रोग से पीड़ित था। उसके शरीर में तीव्र वेदना हो रही थी। पीड़ा का प्रारम्भ पैर की उँगलियों से हुआ था। वह पीड़ा पहले तीव्र नहीं थी, कुछ देर बाद ज्यों ज्यों ऊपर चढ़ती गई त्यों त्यों उसका शरीर ऐंठने लगा। धीरे धीरे पीड़ा घुटनों तक आगई, और भी चढ़ती चढ़ती पेट तक पहुँची, तथा जब हृदयस्थल में पहुँची तब मनुष्य मर गया। इस युवक के अंतिम शब्द ये थे, "ओह! इस जीवन का अंत कब होगा, प्राण कब पीछा छोड़ेंगे?" ये उस युवक के शब्द थे। आप जानते हैं, इस देश (अमरीका) में आप लोग कहते हैं, उसने रूह (Ghost) को छोड़ दिया। भारत में हम लोग कहते हैं, उसने शरीर को छोड़ दिया। इससे यह भेद स्पष्ट होता है कि यहाँ (अमरीका में) शरीर को आत्मा मानते हैं और रूह (जीवात्मा) को उसमें बँधी हुई कोई वस्तु समझते हैं। भारत में शरीर को आत्मा से भिन्न वस्तु समझते हैं, और वास्तविक आत्मा ... तत्त्व वस्तु मानते हैं। वहाँ शरीर के मरने पर कोई अपने को मृत नहीं मानता, वह मरता नहीं है, केवल चोला बदल डालता है।

और इसलिए उस युवक के मुख से ये शब्द निकले थे, "ओह! यह शरीर मैं कब छोड़ूंगा, ये प्राण मुझे कब छोड़ेंगे ?"

अब हमें जीवन से भी बढ़कर, प्राणों से श्रेष्ठ वस्तु का पता लग गया, जो कहती है "मेरा जीवन", "मेरे प्राण"; जिसके अधिकार में प्राण हैं, और जो प्राण तथा जीवन से परे है, और वह वस्तु व्यक्तिगत वा शारीरिक जीवन या प्राण से कहीं अधिक मधुर है। अब हम देखते हैं कि उस शरीर विशेष के प्राण से परम आत्मा का, अर्थात् प्राण से परे आत्मा का हित नहीं साधित हुआ, इसलिए प्राण का बलिदान कर दिया गया, प्राण त्याग दिया गया। इस स्थल में हमें ऐसी कोई वस्तु दिखाई पड़ती है कि जो प्राणों से श्रेष्ठ है, जिस के लिये प्राणों का उत्सर्ग कर दिया गया। अवश्य प्राण की अपेक्षा वह कहीं मधुर होगी, आनन्द का वासस्थान होगी, हमारे आनन्द का मूल या उत्पत्ति-स्थान होगी। अब हमारी समझ में आगया कि प्राण बुद्धि से मधुरतर क्यों हैं, कारण यही है कि प्राण वास्तविक आत्मा के अर्थात् आपके अन्तर्गत आत्मा के निकटतर हैं। बुद्धि नेत्रों से प्यारी क्यों है? क्योंकि बुद्धि नेत्रों की अपेक्षा वास्तविक आत्मा के अधिक निकट है। और नेत्र पैरों की अपेक्षा प्रियतर क्यों हैं? क्योंकि आपके वास्तविक आत्मा से पैरों की अपेक्षा नेत्रों की अधिक घनिष्ठता है। प्रत्येक मनुष्य अपने बच्चे को किसी दूसरे के अथवा पड़ोसी के बच्चे की अपेक्षा कहीं अधिक रूपवान् क्यों समझता है? वेदांत के मत से कारण यही है कि "इस शिशु विशेष को, जिसे आप 'मेरा' शिशु कहते हैं, आपने अपने वास्तविक आत्मा के सोने से कुछ मढ़ लिया है"। कोई भी पुस्तक, जिसमें आप की लिखी हुई एक पंक्ति है, कोई भी रचना, जिसमें आप की लेखनी से कुछ लेख है, आपको किसी

भी पुस्तक से, चाहे वह प्लेटो (Plato) की ही रची क्यों न हो, कहीं उत्तम मालूम होती है। ऐसा क्यों है? क्योंकि इस पुस्तक में, जिसे आप अपनी कहते हैं, आप के वास्तविक आत्मा की कुछ जगमगाहट है। यह आपके भीतरी स्वर्ग की प्रभा से सुशोभित हुई है। इस लिये हिंदू कहते हैं कि परम सुख अथवा परमानन्द की असली राजधानी आपके अन्तर्गत है। सम्पूर्ण स्वर्ग आपके भीतर है, समस्त आनन्द का मूलस्थान आप में है। ऐसी दशा में किसी दूसरी जगह आनन्द ढूँढ़ना कितना अयुक्त है।

भारत में एक प्रेमी के सम्बन्ध में यह कहानी प्रचलित है। वह अपनी प्रेयसी की उत्कंठा में सूख कर काँटा हो गया था,

सौन्दर्य का रहस्य।

मांस रह नहीं गया था। निरा ढाँचा पिंजरा रह गया था। जिस देश में यह युवक रहता था उसका राजा एक दिन उसे अपने दरबार में लाया, और उसकी प्राणेश्वरी को भी अपने सामने बुलवाया। राजा ने देखा कि नारी बड़ी ही कुरूपा है। राजा ने तब अपने दरबार को सुसज्जित करनेवाली सब सुन्दरियों को उस प्रेमी युवक के सामने बुलवाया और उस से कहा कि इनमें से किसी को पसन्द कर लो। युवक ने कहा, "हे महाराज! ऐ सम्राट! हे नृपति! आप मूर्ख क्यों बनते हैं। राजन्! आप जानते हैं, प्रेम मनुष्य को निरा अन्धा कर देता है। महाराज! आप के नेत्र नहीं हैं कि देख सकें। मेरी आँखों से उसे (मेरी प्यारी को) आप देखिये, तब बताइये कि वह सुरूपा है या कुरुपा। मेरे नेत्रों से उसे देखिये।" संसार के समस्त सौन्दर्य्य का रहस्य यही है। यही सब कुछ है। संसार के चित्ताकर्षक पदार्थों के सारे जादू का यही भेद है। ऐ मनुष्यो! तुम आप ही अपनी दृष्टि से सब वस्तुओं को मनोहर बनाते हो। प्रेम के नेत्रों से देखते हुए तुम आपही अपनी

प्रभा किसी वस्तु पर डालते हो और फिर उस पर आसक्त हो जाते हो। यूनान के पौराणिक इतिहास में "ईको"* की कथा हमें पढ़ने में आती है। वह अपनी ही प्रतिच्छाया पर मोहित हो गई थी। सब सुन्दरताओं का यही हाल है, वे केवल आपके अन्तर्गत स्वर्ग अर्थात् आत्मा की ही प्रतिमा हैं। वे केवल आप की प्रतिच्छाया हैं, और कुछ भी नहीं। जब यह बात है, तो अपनी ही छाया के पीछे दौड़ना वा हैरान होना कितनी मूर्खता है।

राम एक ऐसे बच्चे की घटना जानता है, जिसने अभी अभी रेंगना अथवा घुटनों के बल चलना सीखा ही था। बच्चे ने अपनी ही छाया देख कर समझा कि यह तो कोई विचित्र वस्तु है, महत्त्वपूर्ण कुछ है। बच्चे ने छाया का सिर पकड़ना चाहा। वह उसकी ओर रेंगने लगा। छाया भी रेंगने लगी। इधर बच्चा खिसका, उधर छाया भी खिसकी। छाया का सिर पकड़ने में असमर्थ होकर बच्चा रोने लगा। बच्चा गिर पड़ता है, छाया भी उसके साथ गिर पड़ती है। बच्चा फिर उठता है और छाया का पीछा करता है। इतने में माता को दया आई और उसने बच्चे के हाथ से उसका सिर छुआ दिया, अब देखिये, छाया का सिर भी हाथ में आगया। अपना ही सिर पकड़िये और छाया भी पकड़ में आजाती है। स्वर्ग और नरक आप ही के भीतर हैं। शक्ति, आनन्द, और जीवन का मूल

---

* ईको का अर्थ प्रतिध्वनि है। ग्रीक लोगों की दंतकथा में यह एक देवी मानी जाती है। ज्यूपिटर की स्त्री ज्यूनो के शाप से उसकी वाक् दुर्बल हो गई थी, ऐसी मान्यता है, और इस शाप के कारण उस समय से उसको प्रतिध्वनि का रूप प्राप्त हुआ है।

आप के भीतर है। मनुष्यों, प्रकृति और राष्ट्रों का ईश्वर आप के भीतर है। ऐ संसार के मनुष्यों! सुनो, सुनो, यह पाठ मकानों की छत्तों से, बड़े नगरों के सब चौराहों से, सब राजमार्गों से घोषित होने के योग्य है। यह पाठ उच्च स्वर से घोषित होने के योग्य है। यदि तुम किसी वस्तु को प्राप्त करना चाहते हो, किसी पदार्थ की अभिलाषा करते हो, तो छाया के पीछे न पड़ो। अपना ही सिर छुओ। अपने ही भीतर प्रवेश करो। यह अनुभव होते ही आप को जान पड़ेगा कि तारे आप ही का हस्तकौशल (दस्तकारी) हैं, आप देखेंगे कि प्रेम की सभी वस्तुयें, समस्त मनोहर और लुभाने वाले पदार्थ आप का ही प्रतिबिम्ब या छाया मात्र हैं। यह कितना अनुचित है कि "एक टोपी और घंटियों के लिये हम अपने प्राण दे देते हैं, और जी तोड़ परिश्रम से हम केवल जलबुदबुद कमाते हैं।"

भारत में एक नारी की मनोरंजक कथा है। घर में उसकी सुई खो गई। वह ग़रीबी के कारण अपने घर में दिया नहीं जला सकती थी, इस लिये वह बाहर निकल गई और सुई गलियों में ढूँढ़ने लगी। किसी ने पूछा, "गलियों में क्या खोज रही हो?" उसने उत्तर दिया, "अपनी सुई"। भलेमानुस ने पूछा, "सुई कहाँ खोई थी?" नारी ने कहा, "घर में"। उसने कहा, "जो वस्तु घर में खोई थी उसकी खोज ग[illegible] में करना कैसी मूर्खता है"। नारी ने कहा, "मैं घर में [illegible] नहीं जला सकती और सड़क पर लालटैन है"। वह घर में [illegible] ढूँढ़ सकती थी; किन्तु कुछ न कुछ उसे करना ही था, [illegible] लिये गलियों की ही ख़ाक़ छानने लग पड़ी।

लोगों की ठीक यही दशा है। स्वर्ग, दिव्यलोक, आनन्द-धाम सब कुछ आप के भीतर ही हैं, फिर भी गली कूचों के

पदार्थों में आप आनन्द ढूँढ़ते फिरते हैं, उस वस्तु की खोज बाहर-बाहर, इन्द्रियों के विषयों में करते रहते हैं। यह कैसा आश्चर्य्य है !

एक और दूसरी अति मनोहर कथा एक पागल मनुष्य की भारत में प्रचलित है। वह दीन लड़कों के पास आया और कहा कि नगर-नायक (Mayor) एक बड़ा भोज देने की तैयारी कर रहा है, और सब लड़कों को आमन्त्रित किया है। आप जानते हैं कि लड़के मिसरी और मिठाई पसन्द करते हैं। इस पागल आदमी से नगर-नायक के भोज के सम्बन्ध में निश्चय पाने पर लड़के नायक के घर दौड़ गये ; किंतु वहां भोज कहाँ, कुछ भी न॰ था। लड़के चक्का खा गये, कुछ देर के लिये उनका उतर गया, और हँसी होने लगी। लड़कों ने पागल से 'कहिये महाशय ! आप तो जानते ही थे कि यह बात है, फिर आप आये क्यों ?" उसने कहा, "कदाचित् सचमुच न हो, बात सच निकले और मैं रह जाऊँ।" चूकना नहीं चाहता था, इसी कारण से उसने बालकों का अनुसरण किया।

ठीक यही दशा उन लोगों की है, कि जो अपनी ही कल्पना से, अपने हो आशीर्वाद से फूलों को सुन्दरता प्रदान करते हैं, इस संसार की प्रत्येक वस्तु को चित्ताकर्षक बनाते हैं, अपनी ही कल्पना से पागल मनुष्य की भाँति, प्रत्येक वस्तु को वांछनीय करते हैं, और फिर उसके पीछे इसलिये दौड़ते हैं कि कहीं वे उससे वञ्चित न रह जाँय।

उपसंहार।

अपने भीतर स्वर्ग का अनुभव करो, तब एक साथ ही सब आकांक्षायें पूर्ण हो जाथँगी, सब कष्टों और दुःखों का अन्त हो जायगा।

"Lo ! the trees of the wood are my next of kin,
And the rocks alive with what beats in me.
The clay is my flesh, and the fox my skin,
I am fierce with the gadfly and sweet with the bee.
The flower is naught but the bloom of my love
And the waters run down in the tune I dream.
The sun is my flower uphung above,
I cannot die, though for ever death,
Weave back and fro in the warp of me.
I was never born, yet my births of breath
Are as many as waves on the sleepless sea".

"देखो ! बन के वृक्ष मेरे कुटुम्बी हैं।
और मुझ में जो धड़क रहा है उससे पहाड़ सजीव
मट्टी मेरा मांस है, और लोमड़ी मेरा चर्म है।
मैं डाँस (gadfly) में क्रूर और मधुमक्खी में मधुर,
फूल मेरे प्रेम के विकास के सिवाय और कुछ नहीं।
और नदियाँ मेरे स्वप्न के स्वर में बह रही हैं।
आकाश में लटका हुआ सूर्य मेरा पुष्प है।
मैं मर नहीं सकता, मृत्यु चाहे सदा मेरे ताने बाने में ऊपर नीचे भटकती रहे।
मैं अजन्मा हूँ, तथापि मेरे श्वास के जन्म उतने ही हैं, जितनी निद्रा-रहित समुद्र पर लहरें।"

ओह ! स्वर्ग तुम्हारे भीतर है, इन्द्रियों के विषयों में आनन्द की खोज मत करो, अनुभव करो कि आनन्द स्वयं मुझ में है।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

आत्म-विकास ।

(विज्ञान-सभा के भवन में स्वामी राम का व्याख्यान ।)

महिलाओं और सज्जनों के रूप में मेरे ही आत्मन् !

आज रात्रि को आत्म-विकास के विषय में हम लोग कुछ सुनने वाले हैं; दूसरे शब्दों में, जीवन कोटि पर, अथवा आध्यात्मिक उन्नति के क्रम पर, अथवा यों कहिये स्वार्थ-

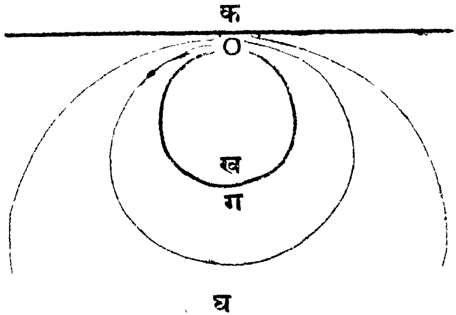
विषय ।

परता की विशुद्धता के दर्जों पर हम कुछ सुनने वाले हैं। कदाचित जिस सिद्धांत पर हम पहुँचेंगे वह चकित कर देगा।

अपने सामने आप जो चक्र देख रहे हैं वह एक सीधी रेखा और वृत्तों का बना हुआ है। आप पूछेंगे कि इनका क्या

वृत्त ।

उपयोग है? चक्रों का आत्मा के विकास से क्या सम्बन्ध है? कुछ लोग अपने चित्तों में कह रहे होंगे—ये वृत्त नहीं हैं, ये बड़े ही वक्र हैं, ये तो अण्डाकार वृत्त हैं; किंतु इन वृत्तों से जीवन की उन कोटियों को प्रकट करना है कि जो ठीक गोल नहीं हैं; जो टेढ़ी और अण्डाकार कही जा सकती हैं,



और इससे वृत्तों की अपूर्णता का समर्थन होता है। वे अपनी

पूर्णता और पथ-विमुखता से ठीक उसी को दर्शा रहे हैं, जिसे उन्हें प्रकट करना है।

जीवन और उसकी कोटियाँ क्या हैं, इस सम्बन्ध में कुछ कहने के पूर्व हमें इन वृत्तों के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहने पड़ेंगे।

यह सब से छोटा, वृत्त है, बहुत ही छोटा बिंदु है। यह इससे और भी छोटा बनाया जाना चाहिये था, किंतु इस आशंका से नहीं बनाया गया कि उस अवस्था में दिखाई न पड़ेगा; इसलिये इतना बड़ा बनाया गया है कि दिखाई पड़े। इसके बाहर एक दूसरा वृत्त है, जो छोटे शिशुवृत्त से बड़ा है, और उसके बाहर तीसरा है और उसके भी बाहर चौथा है। इनमें एक विशेषता यह है कि वृत्त जितना जितना फैलता और बढ़ता जाता है, वृत्त का केन्द्र उतना ही उस सीधी रेखा पर के प्रारम्भिक बिन्दु (क) से हटता जाता है कि जो सब वृत्तों की सामान्य स्पर्श रेखा है। केन्द्र पीछे हटता जाता है, व्यासार्द्ध (radius) और वृत्त बढ़ता जाता है। यदि वृत्त का केन्द्र प्रारम्भिक बिन्दु (क) के बहुत नगीच हो, और नगीच करते करते उसे यहाँ तक सन्निकट कर दिया जाय कि वह प्रारम्भिक बिन्दु (क) के साथ एक हो जाय, तो वृत्त भी एक बिन्दु बन जाता है। इस प्रकार बिन्दु एक ऐसे वृत्त की एक अत्यन्त संकुचित दशा है, कि जिसका केन्द्र प्रारम्भिक बिंदु के बहुत ही निकट आ गया है। और जब केन्द्र प्रारम्भिक स्थान से दूर हटता जाता है, तब व्यासार्द्ध (radius) बढ़ता बढ़ता अनन्त हो जाता है; अथवा जब केन्द्र अनन्तता तक सरक जाता है, तब वृत्त सीधी रेखा हो जाता है। इस प्रकार सीधी रेखा उस वृत्त की अन्तिम अवस्था है, कि जिसका

केन्द्र अनन्तता तक हट जाता है अथवा जिसका व्यासार्द्ध अनन्त है।

दूसरी विशेषता हम यह देखते हैं कि वृत्त जितना ही बड़ा होता जाता है, उतना ही वह सीधी स्पर्श रेखा के सन्निकट होता जाता है, और वृत्त ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों त्यों उसका बांकपन घटता जाता है। इस प्रकार हमारे ध्यान में यह आता है कि बड़ा वृत्त, जिसका केन्द्र (घ) है, (ग) केन्द्र वाले भीतरी वृत्त की अपेक्षा (क) बिन्दु पर सीधी रेखा के कहीं अधिक तुल्य है। और फिर यह भीतरी वृत्त (ग) केन्द्र वाला अपने भीतरी वृत्त (ख) केन्द्र वाले की अपेक्षा उसी (क) बिन्दु पर सीधी रेखा के कहीं अधिक समान है। इसी कारण से पृथिवी वास्तव में गोल होने पर भी जब आप उसके किसी भाग पर दृष्टि डालते हैं, चिपटी दिखाई पड़ती है। और पृथिवी-खण्ड के वृत्त यन्त्र-रहित नेत्रों के लिये अनन्त बड़े हैं। वृत्तों के सम्बन्ध में इतना ही बहुत है।

जीवन।

जीवन! जीवन का मुख्य लक्षण क्या है? प्राण हीनता अथवा निर्जीवता से जीवन का भेद किस बात से किया जा सकता है? गति, उद्योगशक्ति, अथवा कर्मण्यता से। प्रश्न का साधारण उत्तर यही है। जीवन की वैज्ञानिक परिभाषायें भी इसी परिभाषा में समा सकती हैं। जीवित मनुष्य हिलडुल सकता है, चलता फिरता है और सब तरह के काम कर सकता है। रक्षित मृतक शरीर (mummy) शक्ति के ये रूप, अथवा यह गति, अथवा जीवित मनुष्य की उक्त हरकतें नहीं प्रकट कर सकता। मृतक प्राणी इधर उधर नहीं जा सकता; जीवित प्राणी चलता, दौड़ता, सब प्रकार के काम करता है। निर्जीव पौधा बढ़ नहीं सकता।

वह गति से शून्य है और कर्मण्यता से बिलकुल रहित है। जानदार पौधा बढ़ता है और हरकत प्रकट करता है।

फिर हम देखते हैं कि जीवन के प्रायः चार भेद किये जाते हैं, अथवा यह जगत चार मुख्य वर्गों वा कोटियों में विभक्त है :—

जीवन की चार कोटियाँ और उनकी तुलना।

खनिज, उद्भिज, पशु और मनुष्य। इस विभाग में हम यह देखते हैं कि मनुष्य पशुओं की अपेक्षा अधिक उद्योगशक्ति, अधिक गति और उच्च कोटि का व्यापार प्रकट करते हैं। पशु केवल चल फिर सकते हैं, दौड़ सकते हैं या पहाड़ों पर चढ़ सकते हैं ; किन्तु मनुष्य इन सब कामों के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ करता है। वह और भी अनेक बातें करता है । वह उच्चतर कोटि की उद्योगशक्ति अथवा गति प्रकट करता है। दूरबीनों के द्वारा वह नक्षत्रों तक पहुँच सकता है। पशु ऐसा नहीं कर सकते। मनुष्य पशुओं पर शासन कर सकता है। वह वाष्प और विद्युत् के द्वारा देश और काल का उच्छेद करता है। उसमें इतनी तेज़ी प्राप्त है कि जिस का पशुओं में पता तक नहीं । वह संसार के किसी भी भाग में सन्देश तुरन्त भेज सकता है । वह हवा में उड़ सकता है। संसार में यह है मनुष्य की गति, मनुष्य का उद्योग और शक्ति का प्रादुर्भाव। शक्ति को स्पष्ट या प्रकट करने में पशु मनुष्य से कहीं कम हैं, और हम देखते हैं कि जीवन की श्रेणी में मनुष्य की अपेक्षा पशु बहुत नीचे हैं।

अब उद्भिज-कोटि की तुलना पशु-कोटि से कीजिये। शाक भी बढ़ते हैं, उन में गति है, किन्तु एकमुखी । वे केवल एक स्थान में बढ़ सकते हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान को नहीं जा सकते, वे एक स्थल पर जमे हुए हैं। सब दिशाओं में उनकी शाखायें जाती हैं और जड़ें बहुत गहराई तक प्रवेश करती हैं ;

किन्तु पशु-कोटि में क्रिया का जितना आविर्भाव या प्रकाश होता है उसकी अपेक्षा वनस्पति में बहुत कम है। और इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन की कोटि में वनस्पतियाँ पशुओं की अपेक्षा बहुत नीचे हैं। खनिज पदार्थों में कोई जीवन नहीं है। यदि हम जीवन की वही व्याख्या करें जो जीवविद्या-विशारद (Biologist) करते हैं, तो उनमें कोई जीवन नहीं है। परन्तु यदि क्रियाशक्ति के आविर्भाव और प्रकाश से हम जीवन की कोटियों पर ध्यान दें, तो हम कह सकते हैं कि खनिज पदार्थ भी एक प्रकार की गति प्रकट करते हैं। उनमें भी परिवर्तन होता है, उनके लिये भी परिवर्तन अनिवार्य्य है।

इस प्रकार उनमें भी जीवन के अति न्यून लक्षण हैं। परन्तु जीवन की अधम श्रेणी में होने से उनका जीवन बहुत ही तुच्छ है, क्योंकि उनके द्वारा प्रकट होने वाली कर्म-शीलता, गति, उद्योगशक्ति तुच्छ और अति सूक्ष्म है। इससे स्पष्ट है कि जीवन जिस का लक्षण गति है उस की श्रेणी अपनी गति या उद्योग-शक्ति के दर्जों के अनुसार है।

प्रकृति की युक्ति (plan) यह है कि संसार में कुछ भी नवीन नहीं होना चाहिये। हम देखते हैं कि, इस बाह्य अनेकता

प्रकृति की युक्ति।

और बाह्य बहुरूपता के होते हुये भी प्रकृति या विश्व बहुत कृपण है। प्रेमी के लोचनों से एक आँसू का टपकना जिस क़ानून के अधीन है, वही क़ानून सूर्य्यों और तारों के भ्रमण का भी शासनकर्त्ता है। छोटे से छोटे अणु से लगा कर अत्यन्त दूरस्थ नक्षत्र तक को उन्हीं साधारण कानूनों द्वारा हम नियन्त्रित और शासित होते देखते हैं, कि जो पोरों पर गिने जा सकते हैं। प्रकृति पुनः पुनः अपने को दोहराती है। इस विश्व की तुलना

पेंच (screw) या चक्राकार पदार्थ (spiral) से की जा सकती है, जिसका प्रत्येक दन्दाना या चक्र एक ही ढंग का है, अथवा प्याज़ से इसकी तुलना कर सकते हैं। एक पर्त उतार डालिये वैसी ही दूसरी पर्त मौजूद है, अब इसको भी उतार डालिये फिर वैसेही और हमारे सामने है। इसको भी छील डालिये और ठीक ऐसा ही एक और पर्त आप देखेंगे। ठीक इसी प्रकार साल भर में जो कुछ होता है, वही छोटे परिमाण पर हर दिन में घटित होता रहता है। प्रातःकाल का मिलान वसन्त ऋतु से किया जा सकता है। दोपहर की तुलना ग्रीष्म से हो सकती है। तीसरे पहर और सायंकाल की तुलना शरद से हो सकती है, और रात्रि की जाड़े से। इस प्रकार चौबीस घंटों में छोटे परिमाण में सम्पूर्ण वर्ष का दौरान हो जाता है। गर्भ में मनुष्य आश्चर्य्यजनक शीघ्रता से मानवस्वरूप धारण करने से पहले की सब योनियों के, जिनमें उसने वास किया है, अनुभवों को दोहरा डालता है। मानव-शिशु के रूप में आने के पूर्व पिंड (Foetus) गर्भाशय में क्रम से मछली, कुत्ता, बन्दर इत्यादि के रूपों को धारण करता है। इस प्रकार विकासवाद के साधारण नियम के अनुसार, अथवा सारे संसार का शासन करने वाले साधारण क़ानून के अनुसार हम पता लगाना चाहते हैं कि शरीर अथवा मनुष्य की आकृति में क्या खनिज, उद्भिज्ज और पशु कोटियों की भी व्यवहार रूप से पुनरुत्पत्ति है?

क्या मनुष्य के रूप में ऐसे लोग नहीं हैं, जो मानों खनिज ही हैं? मनुष्य के रूप में क्या ऐसी व्यक्तियाँ नहीं हैं जो उद्भिज कोटि की अवस्था में हैं? और क्या ऐसे लोग भी मनुष्य रूप में नहीं हैं जो पशु कोटि की दशा में हैं? हम उन मनुष्यों को भी

देखना चाहते हैं, जो वास्तव में मनुष्य हैं, और जो मानव रूप में देवता हैं।

पहले हम नैतिक (moral) और आध्यात्मिक (spiritual) खनिजों को लेते हैं। देखने में खनिज-कोटि किसी प्रकार

खनिज मनुष्य।

की गति प्रकट नहीं करती, बाहर से किसी प्रकार की उद्योगशक्ति नहीं दिखाती; किंतु तथापि उसमें किसी प्रकार की उद्योगशक्ति, कर्मण्यता और गति ज़रूर है, क्योंकि हम खनिजों को बदलते देखते हैं, खनिजों में भी बढ़ने और बिखरने की क्रिया पायी जाती है। वे घन (crystallized) होते और बढ़ते हैं। समुद्र के मुक़ाबले में हमें अचल दिखायी पड़नेवाली यह पृथ्वी, अथवा सुदृढ़ प्रतीत होने वाली यह पृथ्वी उभरती, दबती, बदलती, और लहरों की तरह नीची ऊँची होती रहती है। इसप्रकार खनिजों में एक प्रकार की गति है, यद्यपि बहुत करके अस्पष्ट है।

अब, मनुष्य के रूप में वे कौन हैं जिनमें खनिजों की सी ही गति है; दूसरे शब्दों में, जिनमें उसी प्रकार की गति है जैसी बच्चों की फिरकी या लट्टू में। फिरकी या लट्टू घूमता है, बार बार चक्कर काटता है, वह डोलता है, और जिस समय वह बड़े वेग से घूमता रहता है, लड़के आकर ज़ोर से तालियाँ बजा बजा कर प्रसन्नता से कहते हैं, यह अचल है, यह डोलता नहीं है। यह आत्म-केन्द्रित गति (Self-centred motion) है, यह चकराती हुई गति है, किंतु चक्कर का केन्द्र शरीर के भीतर होता है, यद्यपि गति की अत्यन्त उग्रता के समय देखने में कोई गति प्रतीत नहीं होती।

आप जानते हैं कि, इस संसार में सब गतियाँ वृत्ताकार हैं, सीधी रेखा में कोई गति नहीं होती। सम्पूर्ण विज्ञान-शास्त्र

इसे सिद्ध करता है। इस कारण गति के आविर्भाव को करने के लिये हम वृत्तों का उपयोग करेंगे । गणित विद्या में गति का निरूपण रेखायें करती हैं। इस मामले में वृत्ताकार रेखाओं से खूब काम निकलेगा।

इस प्रकार खनिज कोटि में जो गति हम पाते हैं, वह फिरकी की गति के तुल्य है।, आपके सामने जो चक्रों का आकार है, उसमें जो सब से छोटा वृत्त है और जो बिन्दु कहा जा सकता है, वह इस गति को भली भाँति प्रकट कर सकता है। मनुष्यों में वे कौन हैं, जिनकी गति लट्टू की गति के तुल्य है, जिनका चक्कर या गति का मार्ग एक बिन्दु मात्र है, जिनका जीवन खनिज पदार्थों का सा जीवन है? ज़रा विचार कीजिये। स्पष्टतः ये वही मनुष्य हैं, जिनके सब काम काज एक छोटे से बिन्दु वा अनात्मा अर्थात् साढ़े तीन हाथ लम्बे शरीर के छोटे से वृत्त में एकत्रित हैं। वे अधम कोटि के स्वार्थी हैं। ये वे लोग हैं, जिनके सर्व कार्य इन्द्रिय-तृप्ति के लिये हुआ करते हैं। ये लोग विभिन्न प्रकार के कार्य करते हैं, सब तरह के परिश्रम करते हैं; किन्तु इनका उद्देश्य केवल अधोगित करने वाले सुखों की तलाश है। इन्हें स्त्री और बच्चों के भूखों मरने की परवाह नहीं होती, पड़ोसी मरें या जियें इन्हें क्या, कुछ भी हो वे मद्य-पान करेंगेही, मौज उड़ावेंगेही, और हीन प्रकृति की आज्ञाओं का पालन अवश्य करेंगे। उनकी आचार भ्रष्ट करने वाली आवश्यकतायें पूरी होनी ही चाहियें, चाहे उनके कुटुम्ब और समाज के हितों की हानि ही हो। चाहे उनके स्त्री और बच्चे भूखों मरें उन्हें कुछ परवाह नहीं, अगर उनकी विषय-वासना की तृप्ति होती हो। उनकी सब चेष्टाओं का केन्द्र, या जिस नाभी (focus) के इर्दगिर्द वे घूमते हैं, अथवा जिस सूर्य का

वे चक्कर काटते हैं वह, या उनके पथ (orbit) का केन्द्र एक मात्र तुच्छ शरीर है। उनकी कर्मशीलता या गति निर्जीव गति है। मनुष्य में यही खनिज-जीवन है। संसार के इतिहास में मनुष्य के रूप में अति सुहावने और मूल्यवान खनिज हुए हैं। आप जानते हैं हीरे भी खनिज-जगत की वस्तु हैं। लाल, मोती, रत्न और सब तरह के क़ीमती पत्थर भी इसी कोटि के पदार्थ हैं।

रोम (Rome) के इतिहास में एक वह समय था, जब नीरो (Nero), टाइबेरियस (Tiberius) तथा अन्य सीज़र (Caesars) नाम के राजा थे, जिनके नाम लेना भी आप के कान अपवित्र करना है। बड़े बड़े शक्तिशाली शासक और सम्राट हो गये हैं, किन्तु वे अति मूल्यवान खनिजों के सिवाय और कुछ भी नहीं थे; मनुष्य नहीं थे। इन सम्राटों को आप क्या समझेंगे, जो अपने ज्ञात संसार के राजा तो थे, परन्तु अपने राज्य के हित की तिनका भर भी परवाह नहीं करते थे। जो अपने मित्रों और सम्बन्धियों का कुछ भी विचार नहीं रखते थे। और जो अपनी पाशविक वासनाओं की तृप्ति में ही लगे रहते थे, चाहे उनकी रानियों, प्रजा तथा मित्रों के साथ कुछ ही हो रहा हो। आप उनके विषय और उनके किये हुए पातकों के विषय में भली भाँति जानते हैं। इनमें से एक को समस्त दिन सुस्वादु व्यंजन खाते रहने का दुर्व्यसन हो गया था। जब कोई अत्यन्त सुस्वादु पदार्थ उसके सामने आ जाता था, तो उस समय तक वह अपना मुँह नहीं फेरता था जब तक कि पेट बिलकुल जवाब नहीं दे देता था। तदुपरान्त औषधियों की सहायता से सब कुछ उगल दिया जाता था। पेट ख़ाली होने पर फिर वह खाने में लग्गा लगा देता था। दिन भर में इस

क्रम को वह बारम्बार करता था। अग्निकाण्ड देखने की आकाँक्षा पूरी करने के लिये इस ने संसार की राजधानी जला दी थी। इसको आप क्या समझते हैं? निस्सन्देह ये मूल्यवान हीरे थे, रत्न थे, किन्तु मनुष्य नहीं थे। ये हैं मानव जगत में खनिज।

उद्भिज मनुष्य

अब हम मनुष्य-रूप में वनस्पतियों की अवस्था पर आते हैं। खनिज-मनुष्य के अत्यन्त स्वार्थपूर्ण छोटे वृत्त से उनका वृत्त बड़ा है। इनका वृत्त बड़ा है और ये लोग खनिज-मनुष्य से बहुत ऊँचे हैं। इनकी कर्मशीलता की तुलना घुड़दौड़ के घोड़े की गति से की जा सकती है। घुड़दौड़ के घोड़े का वृत्त फिरकी या लट्टू के वृत्त से बड़ा है। चक्र में उनका वृत्त दूसरे दायरे से, जिसका केन्द्र (ख) है, दर्शाया गया है। ये लोग कौन हैं? अन्य मनुष्य के स्वार्थ को भेंट चढ़ा कर ये लोग केवल अपनी इन्द्रियासक्ति को संतुष्ट करने के लिये अपने काम में नहीं लगते। वे कुछ और साथियों के हित का भी ध्यान रखते हैं। ये वे लोग हैं, जो अपनी स्त्री और बच्चों के पारिवारिक वृत्त के इर्दगिर्द घूमते हैं। स्वार्थी खनिज-मनुष्यों से ये कहीं श्रेष्ठ हैं, क्योंकि ये केवल अपने ही शरीर का हित नहीं साधते, किन्तु अपनी स्त्री और बच्चों के पक्ष का भी ध्यान रखते हैं। इस दूसरे वृत्त में जिस प्रकार अनेक छोटे वृत्त समा जाते हैं, उसी प्रकार ये लोग भी अपनी तुच्छ व्यक्ति के अतिरिक्त अनेक व्यक्तियों की भलाई करते हैं। किन्तु क्या इन्हें निःस्वार्थी कहना चाहिये? कदापि नहीं। इन लोगों के विषय में आत्मा का केवल कुछ विकास हो गया है। खनिज-मनुष्य के विषय में आत्मा इस तुच्छ शरीर तक ही परिमित था। और इन

लोगों के विषय में, पारिवारिक वृत्त अर्थात् उनके स्त्री और बच्चों से आत्मा की ठीक एकता हो गई है। यह भी स्वार्थपरता है, किन्तु कुछ शुद्धताई लिये हुए है। ये लोग अपनी पहुँचभर बड़े भले आदमी हैं। किन्तु उस दूसरे वृत्त की ओर देखिये जो इनकी हालत को दर्शाता है। यह अपने भीतर की सब वस्तुओं की ओर झुका हुआ है। यह झुकाव (concavity) क्या चीज़ है? प्रेम-भुजाओं में लिपटाना अथवा आलिंगन करना झुकाव है। अपनी भुजाओं को फैलाकर एक वृत्त बनाइये। यही झुकाव (concavity) है। यह वृत्त कुटुम्बियों के लिये झुका हुआ है, उन सब बिन्दुओं की ओर मुख किये हुए है जिनका यह आलिङ्गन करता है, किन्तु अपने से बाहर के सारे संसार की ओर पीठ फेरे हुए है।

ये लोग अपनी शक्ति अनुसार जहाँ तक इनका झुकाव या फैली हुई भुजाओं की पहुँच है, बहुत अच्छे हैं। किन्तु सारे संसार की ओर ये अपनी पीठ फेरे हैं। वनस्पति-मनुष्य के इस दूसरे वृत्त में बिचरने वाले मनुष्यों की स्वार्थपरता उस समय खुल जाती है, जब एक कुटुम्ब के स्वार्थ दूसरे कुटुम्ब के स्वार्थों के विपरीत होते हैं, और तब एक कुटुम्ब के सब मनुष्यों से दूसरे कुटुम्ब के सब मनुष्यों का खूब विवाद और फ़िसाद होता है।

अब हम तीसरे वृत्त पर आते हैं। ये पशु-मनुष्य हैं अर्थात् मनुष्यों के रूपों में पशु। यह तीसरा वृत्त जो चक्राकार में (ग)
केन्द्र करके दिखाया गया है, पहिले दोनों वृत्तों
य । से बड़ा है। इसकी तुलना मौसमी हवाओं
ns) या व्यापारी हवाओं (trade winds) के
जा सकती है। यह उन लोगों की दशा दर्शाता है,

जिन्होंने अपनी अभेदता ऐसी वस्तु से करली है कि जो इस तुच्छ शरीर अथवा कौटुम्बिक वृत्त से ऊँची या विशाल है। ये लोग अपने वर्ग या सम्प्रदाय अथवा राज्य से अपनी अभेदता कर लेते हैं। ये लोग साम्प्रदायिक हैं, और अपनी किसी जाति या बिरादरी से अभेदता कर लेते हैं। ये बड़े अच्छे हैं, सचमुच बड़े उपयोगी हैं, वनस्पती-मनुष्यों से कहीं अधिक काम के हैं। इनका केन्द्र इस परिच्छिन्न शरीर से परे है। वनस्पति-मनुष्य के केन्द्र की अपेक्षा यह बहुत ऊंचाई पर और विस्तार लिये हुए है। इनके चक्कर के व्यासार्द्ध (radius) की लम्बाई ज़्यादा है। ये लोग धन्य हैं। आप जानते हैं कि इनकी उपयोगिता अनेक कुटुम्बों और व्यक्तियों तक फैलती है। इनकी भुजायें जिन लोगों का प्रेमालिंगन करती हैं उनके लिये ये मनुष्य उपयोगी हैं। जिन लोगों के प्रति इनका झुकाव है, उनके लिये ये लाभदायक हैं। ये लोग केवल अपने नन्हे से शरीर अथवा एक परिवार या घर का ही हित नहीं साधते, किंतु उस समस्त वर्ग या सम्प्रदाय का हित भी साधते हैं, जिनसे इन्होंने अपनी अभेदता कर ली है। ये बड़े ही उपयोगी हैं। क्या ये भी स्वार्थी हैं? क्यों नहीं, अवश्य हैं। ये भी स्वार्थपरायण हैं। ये अन्य सम्प्रदायों या जातियों की हानि करके अपने से अभिन्न जाति या सम्प्रदाय की भलाई का प्रयत्न करते हैं। यदि आप इन लोगों की त्रुटियाँ जानना चाहते हैं, तो आप को केवल इनके वृत्त से बाहर के सब बिन्दुओं के प्रति इनके भाव पर दृष्टि डालनी होगी। इनके वृत्त से बाहर जो कुछ है उसकी ओर ये पीठ फेर देते हैं। इनकी साम्प्रदायिकता घनीभूत (दृढ़) और अचल हो तो भिन्न मतावलम्बियों को धिक्कारते हैं, अर्थात् बुरा से नहीं चूकते। यहाँ एक जाति है, और वहाँ दूसरी

अर्थात् इसी प्रकार का दूसरा वृत्त है। इन दोनों के एक दूसरे के प्रतिकूल हो जाने पर एक जाति के सब व्यक्तियों से दूसरी जाति के सब व्यक्तियों का लड़ना-मरना शुरू हो जाता है। समझ रखिये, यदि वे कुछ की भलाई करते हैं, तो दूसरी जातियों या समाजों और विरोधी सम्प्रदायों से युद्ध छेड़ कर यदि अधिक नहीं तो उतनी ही हानि अवश्य करते हैं। एक समग्र सम्प्रदाय का दूसरी ओर की सम्पूर्ण सम्प्रदाय से लड़ना झगड़ना बना रहता है। इससे कितना असन्तोष उत्पन्न होता है। फिर भी ये लोग वनस्पति-कोटि के लोगों से कहीं अधिक वांछनीय हैं।

प्रकृति का नियम है कि तुम्हें एक स्थिति में स्थिर नहीं रहना चाहिये बल्कि बढ़े चलना चाहिये, और आगे आगे बढ़ते ही जाना चाहिये। परिवर्तन और उन्नति के विपरीत जड़ता के अधीन मत हो। जब लोग खनिज-मनुष्य की अवस्था में हैं, तो दूसरी उच्चतर अवस्था वनस्पति–मनुष्य की होगी। और इसके बाद की उच्चतर अवस्था पशु-मानव की होगी। यदि ऊपर की ओर चढ़ता और आगे बढ़ता हुआ मनुष्य पशु-मानव की अवस्था से होकर निकलता है, तो यह अच्छा ही है। मनुष्य के लिये पशु-कोटि की अवस्था में होकर गुज़रने में कोई भी हानि या क्षति नहीं है, यह सर्वथा ठीक है। उसी समय सब बातें बिगड़ती हैं, हरएक चीज़ अस्त-व्यस्त हो जाती है और हानि पैदा कर[illegible] है जब किसी मत या सम्प्रदाय के हाथ अपनी स्वाधो-
[illegible] कर, हम एक स्थान पर रुक कर, अचल होजाने की
[illegible] तथा और आगे बढ़ना अस्वीकार करते हैं। एक
[illegible] उस अवस्था में होकर गुज़रना सब के लिये
[illegible]। किन्तु उसमें चिपके रहना और उसे चिरस्थायी

बनाने की चेष्टा करना मनुष्य के लिये अनुचित है। उसका किसी नाम विशेष का दास बन जाना, अथवा अपनी स्थिति को स्थिरता प्रदान करना ही अनुचित और हानि का कारण है। जब सोडोम (Sodom) और गोमोरा (Gomora) नगर नष्ट किये जा रहे थे, लूत (Lot) की स्त्री लौट पड़ी थी। वह नगर छोड़ रही थी, परंतु उसने पीछे मुँह मोड़ लिया। वह नगर में रहना चाहती थी, उसका चित्त वहाँ लगा हुआ था और उसने फिर लौटना चाहा। फल यह हुआ कि वह जहाँ की तहाँ लवण का स्तम्भ हो गई। ठीक यही दशा उन लोगों की है जो ऊपर की ओर उन्नति कर रहे हैं, और जो अपनी पहली अवस्था से आगे चल रहे हैं, तथा जो आगे बढ़ना अस्वीकार नहीं करते हैं। उनके लिये यह अच्छा है; किन्तु ज्यों ही वे पीछे लौटना चाहते हैं, एवं आगे बढ़ना अस्वीकार करते हैं, और अपने को नामों तथा रूपों के हाथ बेंच डालते हैं, उसी क्षण वे अपने को लवण के स्तम्भ में बदल लेते हैं। ऐसी स्थिरता या धर्मान्धता क्लेश का कारण होती है। ये पशु-मनुष्य अच्छे मनुष्य भले ही हों, परन्तु उन्नति करना आवश्यक है, आगे बढ़ चलना चाहिये।

देशभक्त मनुष्य।

अब हम चौथे वृत्त पर आते हैं जो चित्र में (घ) केन्द्र से दर्शाया गया है। यह मनुष्य रूप में मनुष्य है। यह साधारण मनुष्य है। इसके वृत्त की तुलना चन्द्र के वृत्त से की जा सकती है। चन्द्रमा पृथिवी के गिर्द एक वृत्त बनाता है। इसकी [illegible]ति वृत्ताकार की अपेक्षा अण्डाकार अधिक है। यह [illegible] कौन है? इसका मार्ग बहुत बड़ा है। यह कद[illegible] है। यह वह मनुष्य है जो सम्पूर्ण राष्ट्र या जा[illegible] अभेदता कर लेता है। आप उसे देशभक्त कह सक[illegible]

वृत्त बहुत ही बड़ा है। जिनकी सेवा में वह लगता है, वे किस सम्प्रदाय वाले हैं, इसकी उसे परवाह नहीं होती। जात-पाँत, वर्ण, नाम, और संज्ञा का ध्यान छोड़कर वह अपने देश के समस्त निवासियों का पक्ष पुष्ट करना ही अपना कर्त्तव्य समझता है। वह अति धन्य है, अथवा हार्दिक स्वागत के योग्य है, और बड़ा ही भला है। वह मनुष्य तो है, किंतु इससे अधिक नहीं। आप जानते हैं कि चन्द्रमा समुद्र में क्षोभ उत्पन्न करता है, अर्थात् ज्वार और भाटा पैदा करता है। इसके अतिरिक्त आप जानते हैं कि पागल भी चन्द्रमा से प्रभावित (Moon stricken) कहे जाते हैं। निस्सन्देह, चन्द्र-वृत्त एक अच्छा वृत्त है। परन्तु विचार कीजिये, जब चन्द्र-मनुष्य अपनी स्थिति अचल बना लेते हैं, जब ये लोग ऐसे स्वार्थपरायण हो जाते हैं कि इनकी स्वार्थपरता में परिच्छिन्नता आजाती है (इनकी स्वार्थपरता का अर्थ है देशभक्ति), जब यह भक्ति कठोर बना दी जाती है, जब इस में परिच्छिन्नता आजाती है, इसका क्या फल होता है? यह राज्य-परिवर्तन और पागलपन पैदा करती है। यह एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र का विरोधी बनाती है, और तब संग्राम तथा खूनखराबा होता है। हज़ारों और कभी कभी लाखों प्राणी रक्त बहाते, गिराते और पान करते हुए इस सुन्दर पृथिवी का सुमुख नरमेध से लज्जित तथा रक्त से लाल कर देते हैं। जिन्हें वे प्रेमालिंगन करते हैं, जिनके प्रति वे झुके हुए हैं, उनके लिये तो वे बहुत अच्छे हैं। किंतु [illegible] मोड़े हुए, या प्रतिकूल हैं, उनके प्रति उनके भाव पर[illegible] ये। वाशिंगटन (Washington) अमरीका वालों [illegible] बहुत अच्छा है, किन्तु उसके विषय ज़रा अंग्रेज़ों [illegible] पूछिये। अंग्रेज़-देशभक्त जहाँ तक उस देश का

सम्बन्ध है, जिसे वे अपना कहते हैं, बहुत अच्छे हैं; किन्तु जिन जातियों का जीवन-रक्त उनकी देशभक्ति चूस रही है, उनकी दृष्टि से उनका विचार कीजिये।

सब के अन्त में हम पाँचवें वृत्त पर आते हैं। इसका केन्द्र अनन्तता तक पहुँचता है, अथवा यों कहिये कि व्यासार्द्ध अनन्त हो जाता है। और वृत्त का क्या होता है? जब व्यासार्द्ध अनन्तता की ख़बर लेता है, तब वृत्त सीधी रेखा हो ही जायगा। सब बांकपन जाता रहेगा। सीधी रेखा सर्वत्र ही समता और बिना पक्षपात के गुज़रती है। न तो यह किसी की ओर झुकी हुई है और न किसी से पीठ फेरे हुए है, अर्थात् न तो किसी के लिये अनुकूल है न प्रतिकूल। वृत्त सम रेखा अर्थात् सीधी रेखा हो जाता है। सारा टेढ़ापन मिट जाता है। सारी वक्रता दूर हो जाती है। ये देव-मनुष्य हैं, अर्थात् मनुष्य के रूप में देवता या ईश्वर हैं। इनके वृत्त की तुलना सूर्यकृत वृत्त से की जा सकती है। आप जानते हैं कि सूर्य की गति सीधी रेखा में होती है। उसके वृत्त का व्यासार्द्ध असीम है। सूर्य प्रभा का पुंज है। यह एक ऐसा वृत्त है जिसका केन्द्र सर्वत्र है, और घेरा या परिधि कहीं नहीं। यह देव-वृत्त या ईश्वर-वृत्त है। ये मुक्त पुरुष हैं, अर्थात् सब कष्ट, भय, शारीरिक कामनाओं और स्वार्थपरता से मुक्त हैं। ये स्वाधीन मनुष्य हैं। क्या सीधी रेखा में हम कोई स्वार्थपरायणता नहीं पाते हैं? सीधी रेखा सीधी रेखा है ... उसमें कहीं पर भी कोई झुकने वाला स्थान या ... वाला विषयबिन्दु हम नहीं देखते। यह आक... गुज़रती है, कोई स्वार्थी छोटा केन्द्र ऐसा नहीं है ... चक्कर काटे, कोई भी चीज़ इसे घुमानेवाली

देवमनुष्य।

स्वार्थपरता का विनाश हो जाता है, अथवा आप कह सकते हैं कि, यहाँ वास्तविक आत्मा की उपलब्धि होती है। आप देखते हैं कि हमने विन्दु-वृत्त अर्थात् स्थूल स्वार्थपरता से प्रारम्भ किया था और अब उस छोटे से बिन्दु ने बढ़, फैल और विकसित होकर सीधी रेखा का रूप धारण किया है। ये देव-मनुष्य हैं। ये वे लोग हैं जिनका घर यह विशाल विश्व है, जात-पाँत, वर्ण, मत, समाज या देश जिनके लिये एक समान है। चाहे आप अँग्रेज़ हों या अमेरिकन, बौद्ध हों या मुसलमान, अथवा हिंदू हों या कोई भी हों, आप राम की आत्मा हैं। आप उसकी आत्मा की भी आत्मा हैं। यहाँ (शुद्ध) स्वार्थपरता की अद्भुत वृद्धि होगई है, यह एक विचित्र प्रकार की स्वार्थपरायणता है। विशाल संसार मैं स्वयं हूं। विश्व इस मनुष्य की आत्मा है। विशाल जगत, छोटे से छोटा प्राणी, खनिज वनस्पति इत्यादि इन सब की आत्मा इस मनुष्य की आत्मा हो जाती है।

इस पूर्ण मुक्तावस्था को पहुँचे हुए महात्मा के पास एक शिष्य आया और लगभग एक वर्ष भर उसकी सेवा में रहा। शिष्य जब गुरू से विदा होने लगा, तो भारतीय रीति के अनुसार वह झुक कर चरण छूने तथा साष्टांग दण्डवत् करने लगा। गुरू ने मुसकराते हुए उसे उठाया और कहा, "प्यारे! तुम्हारी शिक्षा अभी पूर्ण नहीं हुई। अभी तुम में बड़ी कमी है। कुछ काल तक और ठहरो।" कुछ दिन गुरुदेव के पवित्र सत्संग में ... और रहा, और अधिकाधिक अनुभव ज्ञान प्राप्त करता ... उसकी वृत्ति आत्माकार हो गई। वह शुद्ध आत्म-स्वरूप ...ा। वह गुरू के पास से चला गया, यह भी ध्यान ...हीं रहा कि वह चेला है या स्वयं गुरू। समग्र संसार, ...र विश्व को अपनी वास्तविक आत्मा समझता हुआ वह

चल दिया। और समग्र संसार जब उसकी वास्तविक आत्मा हो गया, तो वह आत्मस्वरूप कहाँ जा सकता था? जब आत्मा प्रत्येक अणु और परमाणु में व्याप्त है, प्रत्येक अणु और परमाणु को परिपूर्ण किये है, तो वह कहाँ जा सकता है? ऐसे पुरुष के लिये जाने और आने की बात निरर्थक हो जाती है। आप एक स्थान से दूसरे स्थान को तभी जा सकते हैं, जब जिस स्थान को आप जाना चाहते हों वहाँ पहले ही से न हों। अब वह अपने को अर्थात् अपने शुद्ध आत्मा को, वा अन्तरात्मा को, अथवा सर्वव्यापी परमात्मा को पा चुका था, तो आने जाने का विचार उसे कैसे हो सकता था? जाने और आने के विचार उसके लिये लोप हो गये। वह आत्मानुभव की अवस्था में था। शरीर का जाना एक प्रकार की स्वतः क्रिया थी। वह स्वस्वरूप में स्थित था, उसके लिये जाना या आना कैसा? तब गुरू जी संतुष्ट हुए। इस प्रकार गुरू जी ने उसे जाँचा और ठीक खरा पाया। शिष्य ने गुरू को धन्यवाद नहीं दिया और न प्रणाम किया। इस दर्जे तक एकता में वह लीन हो गया कि धन्यवाद की भावना भी बहुत पीछे छूट गई। तब गुरू ने जाना कि उसने मेरे उपदेशों का ठीक ठीक मर्म समझा है। यह पूर्णावस्था है, जिसमें यदि आप उस का आदर करते हैं, तो वह कहता है कि तुम मेरा निरादर कर रहे हो। "मैं इस शरीर में परिच्छिन्न नहीं हूं, मैं यह छोटा सा शरीर मात्र नहीं हूं, मैं विशाल विश्व हूं, मैं तुम हूं, और अपने ही में मेरा सन्मान करो।" यह उ[illegible] [illegible]ष्य की अवस्था है जो कोई वस्तु तुम्हारे हाथ बेंचता नहीं है उस मनुष्य की दशा है, जिसके लिये शरीर का मान और अ निरर्थक हैं, यश और अपयश कुछ भी नहीं हैं।

भारत में एक साधु के पास एक मनुष्य, जो युवरा

आया और साष्टांग दण्डवत् की। साधु ने युवराज से इस दण्डवत्-प्रणाम का कारण पूछा। युवराज ने कहा, "महाराज! पूज्य महात्मा जी! आप साधु हैं और आप ने तो उस राज्य को त्याग कर, जिसके कि आप पहिले शासक थे, यह आश्रम ग्रहण किया है। आप बड़े त्यागी महानुभाव हैं, इस लिये मैं आप को ईश्वरवत् समझता हूं और आप की उपासना करता हूं।" आप जानते हैं, भारत में मनुष्यों का अधिक आदर धन के कारण नहीं होता है। भारत में लोगों का आदर उनकी त्यागावस्था के अनुसार होता है और वहाँ (भारत में) मान का प्रधान कारण यहाँ (अमरीका) से भिन्न है। सर्वशक्तिमान लक्ष्मी (रुपये) की अपेक्षा परमात्मा पर अधिक भरोसा किया जाता है। युवराज त्यागी पुरुष का सत्कार कर रहा था। साधु ने युवराज को उत्तर दिया, "यदि इसी कारण से तुम मुझे प्रणाम कर रहे हो, तो मुझे तुम्हारे चरण धोना चाहिये, मुझे तुम्हारे आगे झुक कर प्रणाम करना चाहिये क्योंकि, ऐ युवराज! इस संसार के सब साधुओं के त्याग से तुम्हारा त्याग अधिक है"। यह बड़ी ही विचित्र बात है। ऐसा कैसे हो सकता है? तब साधु ने समझाना शुरू किया। "कल्पना करो कि, एक मनुष्य एक विशाल भवन का स्वामी है और उसका कूड़ा करकट वह बाहर फेंक देता है। वह घर का केवल गर्द-गुबार त्यागता या बाहर फेंकता है। क्या वह त्यागी है?" युवराज ने कहा, "नहीं, कदापि नहीं, वह त्यागी नहीं है"। इस के बाद साधु ने कहा, "दूसरा आदमी घर कूड़ा करकट तो जमा करता है और सारा मकान, विशाल त्याग देता है। इस मनुष्य को तुम क्या समझोगे?" ज ने कहा, "वह जो केवल कूड़ा करकट संचय करता है वन त्याग देता है, त्यागी मनुष्य है"। इस पर साधु ने

कहा, "भाई युवराज ! तब तो तुम्हीं त्यागी हो, क्योंकि वास्तविक आत्मा अर्थात् परमेश्वर को, जो विशाल भवन है, जो निजधाम है, जो बैकुंठ है, बल्कि जो स्वर्गों का भी स्वर्ग है, तुमने त्याग दिया है, और केवल उसका कूड़ा करकट, यह शरीर, यह तुच्छ स्वार्थपरायणता तुमने रख छोड़ी है। मैंने कुछ भी नहीं त्यागा है। मैं स्वयं ईश्वरों का ईश्वर हूं, अर्थात् संसार का स्वामी हूं।"

कभी कभी इन लोगों को अर्थात् इन सिद्ध पुरुषों को जो उन्नति की परम अवस्था में पहुँच गये हैं, कुछ लोग तुच्छ वा अपमानित समझते और सनकी कहते हैं। किन्तु ज़रा इनसे पूछिये तो सही कि भला एक क्षण के लिये भी ये अपना निजानंद अथवा परम सुख जो इन्हें ब्रह्ममयी अवस्था से प्राप्त होता है, संसार की समस्त सम्पत्ति और वैभव से बदलने को तैयार हैं ? कदापि नहीं, कदापि नहीं। विषय-सुखों के द्वार पर, अर्थात् रक्त-मांस की देह के द्वार पर जा जा कर हाथ फैलाने वाले नाम मात्र सम्पत्तिशाली पुरुषों के भिखारीपन को ये महात्मा तुच्छ समझते और तरस की दृष्टि से देखते हैं। आनन्द आपके भीतर है। तो फिर शोचनीय और पीड़ित अवस्था में इधर उधर भटक कर भिखारी का स्वाँग धर, क्षुद्र कण का सा बर्ताव क्यों करते हो ? आओ, अपनी पवित्रात्मा अर्थात् सर्व शक्तिमान् परमेश्वर का अनुभव करो, और पूर्णानन्द में लीन अवस्था से निम्न लिखित गीत बहने दो।

"I am the mote in the Sunbeam, and I am burning
Rest here!" I whisper the atom. I call to the "Roll

I am the blush of the morning, and I am the evening breeze
I am the leaf's low murmurs, the swell of the terrible seas
The lover's passionate pleading, the maiden's whispered fears;
The warrior, the blade that strikes him, his mother's heart wrung fear.
The rose, her poet nightingale, the songs from the throat that rise,
The flint, the sparks, the taper, the moth that about it flies.
I am intoxication, grapes, wine-press and musk and wine
The guest, the host, the traveller, the goblet of crystal fine."

मैं कण हूं रवि की किरणों में, भानु प्रज्वलित भी मैं हूं।
'ठहरो' ऐसा अणु के कान में मैं धीमे से कहता हूं,
'चले चलो' ऐसी आज्ञा मैं भूमण्डल को देता हूं।
मैं ऊषा की लाली हूं और साँझ समय की मन्द समीर।
मन्द ध्वनि हूं पत्ती की और क्षोभ हूं भीषण सागर का।
प्रेमी की मैं प्रबल विनय हूं, युवती की कोमल भय बानी।
योधा मैं हूं और शस्त्र धारा जो उसे हनन करे है वह भी मैं हूं।
उसकी माता का हृदय विदारण भय भी मैं हूं।
गुलाब हूं, कवि बुलबुल हूं और गले से उठते गीत।
क. पत्थर, चिङ्गारी हूं और दीपक की हूं लौ।
हूं जो घूमे है उसके चारों ओर।

नशा हूं, अंगूर, मुश्क, मद्य और भभका मैं हूं।
अतिथि, यजमान, यात्री और शुद्ध स्फटिक का प्याला मैं हूं।

Oh ! The splendour and glory of yourself makes the pomp of kings ridiculous.

Such a wonderous Heaven you are, Existence, knowledge and Bliss you are.

Om ! Om !! Om !!!

अरे ! तुम्हारे आत्मा की विभूति और महिमा इन राजाओं के आडम्बर को लज्जित वा हास्यास्पद करती है।

ऐसा विचित्र वैकुंठ तुम हो और सच्चिदानन्द तुम हो।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

सान्त में अनन्त।

(ता० १० जनवरी १९०३ को अमेरिका के सैनफ्रांसिस्को के गोल्डन गेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान।)

महिलाओं और सज्जनों के रूप में एक अनन्त स्वरूप!

विषय पर आने के पूर्व संसार जिस प्रकार के श्रोता साधारणतः जुटा दिया करता है, उस पर कुछ शब्द कहना आवश्यक है।

लोग साधारणतः अपने कानों से नहीं सुना करते, दूसरों के कानों से सुनते हैं। वे अपनी आँखों से नहीं देखते, अपने मित्रों के आँखों से देखते हैं। वे अपनी रुचि से काम नहीं लेते, दूसरों की रुचि से काम लेते हैं। कैसा बेतुकापन है! संसारी मनुष्यो! हर मौक़े पर अपने कानों और अपने नेत्रों से काम लो। हर अवसर पर अपनी ही समझ को काम में लाओ। तुम्हारी अपनी आँखें और कान बेमतलब नहीं हैं, वे व्यवहार के लिये हैं।

राम एक दिन सड़क पर जा रहा था। एक भलेमानुस ने आकर कहा, "यह पोशाक तुम किस अभिप्राय से पहनते हो? ...शाक तुम क्यों पहनते हो? इससे तुम हमारा ...ें खींचते हो?" राम सदा मुसकराता और हँसता ... भारतीय साधुओं के पहनावे से आप प्रसन्न होते हैं, ...े आप की प्रसन्नता से आनन्द है। यदि यह पोशाक

आपके हर्ष और हास्य का कारण होती है, तो हमें आप की मुस्कराहटों से सुख प्राप्त होता है। आप का मुस्कुराना हमारा मुस्कुराना है।

किन्तु, कृपया समझदार बनिये। समाचार-पत्रों ने यदि किसी की प्रशंसा या विरोध में एक शब्द लिख दिया, तो सारे समाज के विचार वैसे ही होने लग जाते हैं। लोग कहने लगते हैं, समाचार पत्र ऐसा कहते हैं, समाचार पत्र वैसा कहते हैं। समाचार-पत्रों की तह में क्या है? साधारणतः लड़के और नारियाँ समाचार-पत्रों के समाचार-दाता होते हैं। सब समाचार चौथी और कभी कभी दसवीं श्रेणी के सम्वाददाताओं से मिलते हैं, न कि विद्वान विचारकों से। यदि एक मनुष्य, नगर-नायक, किसी की प्रशंसा करने लगता है, यदि एक ऐसा मनुष्य, जो बड़ा आदमी समझा जाता है, किसी आदमी का आदर करने लगता है, तो सबके सब उसी एक मनुष्य की ध्वनि को दोहराने और प्रतिध्वनित करने लगते हैं। यह स्वतंत्रता नहीं है। स्वाधीनता और स्वतंत्रता का अर्थ है हर मौक़े पर अपने कानों को काम में लाना, हर मौक़े पर अपनी आँखों का उपयोग करना।

जिस मनुष्य ने यह पोशाक पहनने का कारण पूछा था, उससे राम ने कहा, "भाई, भाई, यह तो बताओ कि इस रंग के कपड़े क्यों न पहनना चाहिये? और किसी दूसरे रंग के क्यों पहनना चाहिये? राम इसके स्थान में काला अथवा सफ़ेद रंग क्यों पहने? कृपया कारण बताइये। को[illegible] बताइये। आप क्या दोष पाते हैं?" वह कोई दोष [illegible] सका। उसने कहा, "यह रंग भी उतना ही सुखद [illegible] मेरा। तुम्हारा यह कपड़ा भी सर्दी और गर्मी [illegible]

रखा वैसी ही करता है जैसी कि मेरा। यह रंग भी उतनाही अच्छा है जितना कि कोई दूसरा, और चाहे जौनसा कपड़ा पहना जाय, वह किसी न किसी रंग का तो होगा ही। यदि वह काला है, तो रंग रखता है, यदि सफ़ेद है तो रंग वाला है, और यदि गुलाबी है तो भी रंग वाला है। कोई न कोई रंग का तो वह अवश्य होगा। एक न एक रंग का होने से वह बच नहीं सकता"।

अब आप बतावें कि, इस रंग में आप क्या ऐब समझते हैं। वह कोई दोष न बता सका। तब राम ने उससे कहा, "आप अपने ऊपर कृपा कीजिये; अपनी आँखों पर कृपा कीजिये; अपने कानों पर कृपा कीजिये; अपने नेत्रों और कानों से काम लीजिये; तब निर्णय कीजिये; दूसरों की सम्मतियों के द्वारा फ़ैसला मत कीजिये। दूसरों की मतियों से मोहित मत हूजिये, अथवा दूसरों के मतों के चेरे मत बनिये। दूसरों के चेरे होने की कमज़ोरी से मनुष्य जितना अधिक बचा हुआ है, उतनाही अधिक वह स्वाधीन है"।

राम की इच्छा है कि इन व्याख्यानों को सुनने में आप अपने ही कानों और बुद्धियों से काम लें। आपही नतीजा निकालें। यदि ठीक तरह पर आप इन व्याख्यानों को सुनेंगे तो, राम वचन देता है, कि आप को इन से विशेष लाभ होगा। आप सब चिन्ता, भय और क्लेशों से परे हो जाँयगे।

आप जानते हैं, लोग कहते हैं कि वे धन चाहते हैं। बताइये! आप धन किस लिये चाहते हैं? आप आनन्द ये धन चाहते हैं, किसी और लिये नहीं। और धन से मिलता नहीं। अब मैं उस वस्तु को बतलाता हूं कि आप को आनन्द मिलेगा। कुछ कहते हैं, हम ऐसे

व्याख्यान सुनना चाहते हैं, जो मर्मस्पर्शी हों, जो हमारे दिलों में गड़ जायँ; अर्थात् हम ऐसे व्याख्यान चाहते हैं, जो प्रत्यक्ष और तुरन्त प्रभाव पैदा करने वाले हों। बच्चे मत बनो। बच्चे को एक सोने की मुद्रा और एक मिसरी का टुकड़ा दिखाइये। बच्चा तुरन्त मिसरी का टुकड़ा ले लेगा, जो तुरन्त मिठास का प्रभाव पैदा करता है। वह सोने या चाँदी की मुद्रा न लेगा। बच्चे मत बनिये।

कभी कभी व्याख्यानों और वक्तृताओं का तुरन्त प्रभाव पड़ता है। किन्तु वे केवल मिसरी-वत् होते हैं, उनमें स्थिर और स्थायी कुछ भी नहीं है। अब आप एक ऐसी बात सुनिये कि जो आप पर अत्यन्त स्थिर और स्थायी प्रभाव डालेगी। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में, लोग घंटों लगातार शिक्षकों और अध्यापकों के उपदेश सुनते हैं। अध्यापक किसी प्रकार की वक्तृत्व-शक्ति नहीं प्रकट करते और न अलङ्कार शास्त्र के नियमों का ही पालन करते हैं। अध्यापक साधारणतः अपने विद्यार्थियों को धीरे धीरे, शान्त भाव से, अटकते हुये उपदेश देते हैं। किन्तु, अध्यापक में तुरन्त प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति हो या न हो, विद्यार्थियों को उसके मुख से निकले हुये प्रत्येक शब्द को ग्रहण करना पड़ता है।

ऐसे ही राम आज संसार को उपदेश देता है। संसार को उसके शब्द उसी भाव से सुनने चाहियें, जिस भाव से महाविद्यालय के विद्यार्थी अपने अध्यापकों की बातें सुनते हैं। आप चाहे कहें कि ये शब्द अभिमान भरे हैं, किन्तु हाँ समय आ रहा है जब.......................❀

❀ यहाँ पर राम बिलकुल मौन होकर इस विचार में डूब एक दिन यह समस्त संसार आध्यात्मिक जीवन के सोते से जी भर

आज के विचार का विषय है सान्त में अनन्त अर्थात् परिच्छिन्न में अपरिच्छिन्न। तत्त्व शास्त्र और ज्ञान को लोकप्रिय बनाना बड़ी ही कठिन बात है। किन्तु सुकरात कहता है, और उसका कथन बिलकुल ठीक है, कि "ज्ञान ही धर्म या बल है।" यही भाव अन्त में मानव जाति पर शासन करेगा। ज्ञान ही मानव जाति पर शासन करता है, ज्ञान ही कार्य में परिवर्तित होता है। लोग पहले से बना बनाया काम चाहते हैं, परन्तु पहले से बना बनाया काम स्थायी नहीं होता। राम तुम्हें ऐसा ज्ञान दे रहा है, जो तुम्हें कर्म की अनन्त शक्ति में बदल देगा। इसे लोकप्रिय बनाना कठिन है। इस कठिन और गूढ़ समस्या को यथा सम्भव सरल बनाने का हम भरसक उद्योग करेंगे।

इस संसार की जो अति छोटी चीज़ तुम्हारी धारणा में आ सकती है, जो छोटी से छोटी वस्तु आप इस संसार में प्रायः देखते हैं, उससे हम आरम्भ करेंगे। पोस्त का बीज कह लीजिये, अथवा सरसों का बीज मान लीजिये, अथवा कोई छोटा बीज जो आपके मन में आवे, उस अत्यन्त छोटे बीज को अपने सामने हथेली पर रखिये। यह बीज क्या है? जिसे आप अपने सामने देख रहे हैं, अथवा सूंघ रहे हैं, या तौलते हैं, या जिसे आप छू सकते हैं, क्या यही बीज है? क्या वह नन्हीं सी चीज़ बीज है? अथवा बीज कोई दूसरी ही चीज़ है? आओ, परीक्षा करें।

इस बीज को ज़मीन में बो दो। बहुत ही थोड़े समय में अंकुरित होकर सुन्दर, कल्ले निकालता हुआ पौधा हो

को वाध्य होगा, और जो ध्येय वे बता रहे थे वही मनुष्य मात्र का ध्येय होगा।

जाता है, और उस पहले मूल-बीज से हमें फिर यथा समय हज़ारों बीज मिलते हैं। इन दूसरे हज़ारों बीजों को बो दीजिये और उसी तरह के लाखों बीज हमारे हाथ लगते हैं। इन लाखों बीजों को बो दीजिये, उसी तरह के करोड़ों बीज हम पा जाँयगे। इस चमत्कार से क्या स्पष्ट होता है? मूल बीज, पहला बीज, जिससे हमने शुरू किया था, वह अब कहाँ है?

वह भूमि में नष्ट हो गया, पृथिवी में मर गया। वह अब कहीं देखने को नहीं आता। किन्तु उस मूल बीज से आज हमें उसी तरह के करोड़ों और अरबों बीज प्राप्त हैं। ओह! उस प्रारम्भिक मूल-बीज में, जिससे हमने श्रीगणेश किया था, कैसी अनन्त शक्ति, सामर्थ्य, और अनन्त योग्यता गुप्त या सुप्त थीं।

अब फिर प्रश्न होता है। यह एक बीज है, यह पोस्त या सरसों का छोटा सा बीज है, इस कथन से आपका अभिप्राय क्या है? इस वाक्य से आपका मतलब क्या है? क्या आपके विचार में बीज शब्द का अर्थ केवल उसकी आकृति, परिमाण, तौल और गन्ध है? क्या बीज-रूप से अभिप्राय वास्तव में रूपों का केवल वाह्य केन्द्र है? नहीं, नहीं। हम एक ऐसा नक़ली बीज बना सकते हैं कि जिसका न केवल तौल, रङ्ग और गन्ध किन्तु स्वाद भी ऐसा हो जैसा कि असली बीज का। परन्तु यह बनावटी बीज वास्तव में बीज नहीं कहा जा सकता, यह असली सच्चा बीज नहीं कहा जा सकता, यह केवल एक रूप होगा, लड़कों के खेलने का खिलौना है न कि बीज। इस प्रकार हम देखते हैं कि बीज शब्द का वाच्य या बाह्य अर्थ है, और एक लक्ष्य वा असली अर्थ

बीज शब्द का बाह्य अर्थ है, रूप, परिमाण, तौल, या ऐसे गुण जिनको हम अपनी इन्द्रियों से जान सकते हैं। किन्तु बीज शब्द का असली अर्थ है, अनन्त शक्ति, अनन्त सामर्थ्य, अनन्त संभाव्यता, जो बीज रूप में छिपी हुई है। यहाँ हम सान्त में अनन्त देखते हैं। सान्त रूप या आकृति में जो अपार सामर्थ्य वा अनन्त शक्ति छिपी हुई है, और जो बीज शब्द का असली अर्थ है, वह बीज का भीतरी अनन्त है, न कि उसका बाह्य या बाहरी रूप।

अब बतलाइये कि इस रूप या आकृति की मृत्यु के साथ साथ क्या उस अनन्त शक्ति का नाश हो जाता है? बीज का रूप मृत्यु को प्राप्त होता है, बीज का रूप या बाह्य बीज पृथ्वी में नष्ट हो जाता है, किन्तु क्या असली बीज अर्थात् भीतरी अनन्त भी नाश को प्राप्त होता है? नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं। अनन्तता की मृत्यु कैसे हो सकती है? उसका नाश कभी नहीं होता। आज हम वह बीज लेते हैं, जो, मान लीजिये, प्रारम्भिक बीज की हज़ारवीं सन्तति है। इस बीज को हम उठाते हैं। इसे फिर बोइये, इसे फिर भूमि में रोपिये। आप देखेंगे कि इसमें भी वृद्धि वा विकास की वही अनन्त शक्ति मौजूद है, जो प्रथम बीज में थी। मूल बीज की करोड़वीं सन्तति में भी वही अनन्त सामर्थ्य और शक्ति वर्तमान है, जो मूल बीज में थी।

पस हम देखते हैं कि बीज शब्द का वास्तविक अर्थ, जो भीतरी अनन्तता है, वह प्रथम बीज का भी वही है जो प्रथम बीज की हज़ारवीं सन्तति का है। और यह अनन्तता प्रथम बीज की पद्मवीं पीढ़ी में भी समान बनी रहेगी। इससे हमें पता चलता है कि भीतरी अनन्तता, अथवा अनन्त

शक्ति या सामर्थ्य निर्व्यय और निर्विकार है, और हम यह भी देखते हैं कि वास्तविक बीज, अनन्त शक्ति, अनन्त सामर्थ्य का नाश नहीं होता। मूल बीज का रूप नष्ट हुआ, परन्तु शक्ति नहीं नष्ट हुई। शक्ति फिर सहस्रवीं पीढ़ी के बीजों में अपरिवर्तित और बेबदली प्रकट होती है। बीज के भीतर की सच्ची अनन्तता बीज के देह की मृत्यु के साथ अथवा बीज के रूप के नाश के साथ नष्ट नहीं होती। मैं कहूंगा, बीज की मानों यह आत्मा, दूसरे शब्दों में, बीज की वास्तविक अनन्तता नाश को नहीं प्राप्त होती; यह बदलती नहीं; कल, आज, और सदा यह ज्यों की त्यों बनी रहती है। पुनः आज हम जो बीज लेते हैं उनमें भी फैलाव और वृद्धि की अनन्त शक्ति वही है, जो प्रथम बीज में थी। यह बदलती नहीं; यह कल, आज, और सदा एकसां रहती है। आज फिर हम जिन बीजों को लेते हैं उनमें भी फैलाव और वृद्धि की वही अनन्त शक्ति वर्तमान है जो प्रथम बीज में थी। न तो वह ज़रा सी भी बढ़ती है, न घटती है।

हम देखते हैं कि बीज शब्द के असली अर्थ, वा मैं कहूंगा, कि बीज की आत्मा या जान, न बढ़ती है और न घटती है। संक्षेप में, असली बीज कल, आज और सदा एकसाँ है। वह अनन्त है। बीज के रूप अथवा बीज रूप की देह के नाश के साथ साथ उसका नाश नहीं होता। वह अविनाशी है, निर्विकार है। उसमें कोई कमी या ज़्यादती नहीं हो सकती। (पुनरुक्ति हो तो राम को आप क्षमा करें; क्योंकि राम समझता है, कभी कभी पुनरुक्ति की आवश्यकता है।)

क्या आप जानते हैं कि छोटे छोटे जन्तु, जिन्हें आप अति

सूक्ष्म कीड़े कह सकते हैं, कैसे बढ़ते हैं? कलल*का, जिसे लघुतम या प्रारम्भिक जन्तु भी कभी कभी कहते हैं, आदि विकास कैसे होता है ? पदार्थ-विज्ञानियों (नैचुरलिस्ट्स naturalists) की भाषा में छोटे छोटे जन्तुओं की वृद्धि दो समान खण्ड होने से होती है। यह समान खण्डन प्राकृतिक नियम से होता है। हम भी ऐसा कर सकते हैं। इन क्षुद्र जन्तुओं अर्थात् नन्हें नन्हें कीड़ों में से एक ले लीजिये। किसी उत्तम, अति पैनी शलाका (नश्तर) से इसके दो बराबर टुकड़े कर डालिये। इसकी क्या गति होगी ? ओह! यह बड़ा निठुर कर्म है। यदि हम किसी मनुष्य को दो भागों में काट दें, यदि हम उसके शरीर में कटार भोंक कर दो टुकड़े कर डालें, तो वह मर जायगा। इसी तरह अगर हम इस क्षुद्र जन्तु के दो टुकड़े करेंगे तो मर जायगा । किन्तु क्षुद्र जन्तु को काट डालिये, वह मरता नहीं, दो हो जाता है। कैसी अत्यन्त अद्भुत लीला है! उसके दो टुकड़े कर डालिये, और वह दो हो जाता है, दोनों एक समान। अब इन दोनों को लीजिये और काट डालिये । फिर हरएक के दो दो समान टुकड़े करिये और उनके मरने के बदले आप को चार जीते जन्तु उसी शक्ति और बल के प्राप्त होंगे, जैसे कि मूल जन्तु। आप को चार जीते जन्तु मिलेंगे। इन चारों के दो दो बराबर के टुकड़े कर डालिये और चार को मारने के बदले आप उन्हें बढ़ाकर आठ बना देंगे। इसी प्रकार, जहाँ तक आप की इच्छा हो बढ़ाते चले जाइये । आप उनकी संख्या यथेच्छा बढ़ा सकते हैं। कैसा आश्चर्य्य है!

---

* स्थूल शरीर का आदि रूप, अंडे के भीतर का सा अर्धतरल सफ़ेद पदार्थ जिसे अंग्रेज़ी में प्रोटोप्लैज़म (protoplasm) या प्रोटोज़ोआ (protozoa) कहते हैं।

वह देखिये, आपके सामने एक जन्तु का रूप या जन्तु का शरीर है। मैं जन्तु शब्द का वाच्य या बाह्य अर्थ व्यवहार में ला रहा हूं। बाह्य अर्थ केवल शरीर, रूप, परिणाम, तौल, रंग, आकृति है। बाह्य रूप से जन्तु यही है। किन्तु वास्तविक जन्तु उसकी आन्तरिक शक्ति, अथवा बल, व भीतरी जीवन है। यह है असली जन्तु। बाह्य जन्तुओं को मार डालिये, रूप को नष्ट कर दीजिये, किन्तु वास्तविक जन्तु अथवा आत्मा, आप इसे सार कह सकते हैं, मरता नहीं। वह मरता नहीं, वह ज्यों का त्यों बना रहता है। शरीरों को काटते, शरीरों को नष्ट करते जाइये। शरीर की मृत्यु से वास्तविक आत्मा का नाश नहीं होता, उससे केवल रूप का नाश होता है।

वास्तविक आत्म-देव, जो तुम हो, अमर है। जन्तु का मूल शरीर लाखों गुना बढ़ाया जा सकता है, बढ़ाकर कोटियों गुना किया जा सकता है। और यह है अनन्त शक्ति मूल जन्तु के शरीर में छिपी हुई। यही है सान्त में अनन्त; परिच्छिन्न में अपरिच्छिन्न।

अब प्रश्न होता है, जब शरीर गुणित व वर्द्धित होते हैं जब जन्तु के शरीर बढ़ते वा बहु संख्यक होते जाते हैं, तब क्या वह भीतरी अनन्त शक्ति भी बढ़ती जाती है? अथवा वह घटती है? नहीं, वह न तो घटती है न बढ़ती है। जन्तु के बाहरी देखने मात्र सान्त रूप के अन्तर्गत वास्तविक अनन्तता नहीं बदलती, वह बढ़ती नहीं, वह घटती नहीं, वह वही रहती है।

इस अद्भुत क्रिया (वा दृश्य) की व्याख्या वेदांत में एक उदाहरण द्वारा की जाती है।

एक छोटा बच्चा था जिसको दर्पण कभी नहीं दिखाया गया था। आप जानते होंगे, भारत में अर्थात् हिन्दुस्थान में छोटे बच्चों को दर्पण नहीं दिखाया जाता। यह छोटा बच्चा एक बार घिसल कर अपने पिता के कमरे में पहुँच गया। वहाँ फर्श पर एक दर्पण था, जिसका एक सिरा तो दिवाल में लगा हुआ था और दूसरा सिरा भूमि पर था। यह छोटा बच्चा शीशे के पास घिसल कर चला गया। अब देखिये! वहाँ उसने एक बच्चा अर्थात् छोटा बच्चा वा प्यारा छोटा बच्चा देखा। आप जानते हैं, बच्चे सदा बच्चों से आकृष्ट होते हैं। यदि आप के बच्चा हो और उसे साथ अपने मित्र के घर आप ले जाइये तो, जब अपने मित्र से आप बातचीत करेंगे, बच्चा तुरन्त उस घर के बच्चों से दोस्ती जोड़ लेगा। इस बच्चे ने आइने में अपने ही डील डौल का एक बच्चा देखा। वह उसके पास गया। जब वह दर्पणी बच्चे के पास खिसक रहा था तब दर्पणी बच्चा भी उसकी ओर बढ़ रहा था। वह खुश हुआ। उसने देखा कि दर्पण वाला बच्चा स्नेह दिखा रहा है, मुझे उतना ही चाहता है, जितना मैं उसे चाहता हूं। उनकी नाकें मिलीं। उसने अपनी नाक शीशे में लगाई और शीशे वाला बच्चा भी अपनी नाक उसकी नाक तक ले गया। दोनों नाकों का स्पर्श हुआ। उनके ओठ मिले। उसने अपने हाथ शीशे पर रक्खे और शीशे वाले बच्चे ने भी अपने हाथ उसके हाथों की ओर बढ़ाये, मानों वह उससे हाथ मिला रहा है। किन्तु इस बच्चे के हाथ जब शीशे वाले हाथों पर थे तब शीशा गिर कर दो टुकड़े हो गया। अब बच्चे ने देखा कि शीशे में एक के बदले दो बच्चे हैं। दूसरे कमरे में बच्चे की माँ ने यह शब्द सुना। वह दौड़ कर अपने पति के कमरे में आई और देखा

कि पति वहाँ नहीं है। किन्तु बच्चा कमरे की चीज़ों की गत बना रहा है और शीशा तोड़ डाला है। वह इस तरह बिगड़ती और धमकाती हुई उसके पास गई कि मानों मारेगी। किन्तु आप जानते हैं, लड़के खूब समझते हैं। वे जानते हैं कि माताओं की *धमकियां, घुड़कियां* और लाल पीली आँखें निरर्थ होती हैं। वे अनुभव से यह बात जानते हैं। "तूने क्या किया", "तूने क्या किया", "तू यहाँ क्या कर रहा है", माता के इन वाक्यों से बच्चा डरा नहीं। उसने इन शब्दों को घुड़की वा धमकी न समझ कर दुलार समझा। उसने कहा, "ऐं! मैंने दो कर दिये, दो बना दिये, दो बना दिये"। बच्चे ने एक बच्चे से दो बच्चे बना दिये। मूल में एक बच्चा था, जो दर्पण वाले एक बच्चे से बात चीत कर रहा था। अब इस बच्चे ने दो बच्चे बना दिये। एक छोटा बच्चा बालिग होने के पहले ही दो बच्चों का बाप हो गया। उसने कहा, "मैंने दो बनाये हैं, मैंने दो बना डाले"। माता मुस्कराई और बच्चे को गोदी में लेकर अपने कमरे में चली गई।

दर्पण के ये दोनों खण्ड लीजिये। इन्हें तोड़िये, कसर न कीजिये, आप को अधिक दर्पण मिलेंगे। इन खण्डों को तोड़ कर चार खण्ड बनाइये, और आपको चार बच्चे मिलेंगे। शीशे के इन चार खण्डों को तोड़ कर आठ बनाने से छोटा बच्चा आठ बच्चों की सृष्टि कर सकता था। इस रीति से मनमानी संख्या में बच्चों की सृष्टि की जा सकती है। किन्तु हमारा प्रश्न है, क्या वह असली आत्म-देव, क्या वह असली बच्चा शीशों के टूटने से बढ़ता या घटता है? वह न बढ़ता है न घटता है। कमी और ज़्यादती केवल शीशों में होती है। दर्पण में आप जिस बच्चे को देखते हैं, उसमें कोई अधिकता

नहीं होती, वह ज्यों का त्यों बना रहता है। अनन्त कैसे बढ़ सकता है? अनन्तता यदि बढ़ती है, तो वह अनन्तता नहीं है। अनन्तता घट कैसे सकती है? घटती है, तो वह अनन्तता नहीं है।

इसी भांति, जन्तु के दो खण्ड होने की क्रिया की वेदान्त में व्याख्या यह है, कि जब आप अति क्षुद्र कीड़े के दो समान खण्ड करते हैं, तब शरीर अर्थात् वह लघु शरीर, जो ठीक दर्पण के तुल्य है अर्थात् ठीक शीशे के समान है, दो भाग हो जाता है। किन्तु शक्ति अर्थात् भीतरी वास्तविक अनन्तता, या असली जन्तु अथवा सच्ची आत्मा या शक्ति, कोई भी नाम आप इसका रखलें, अथवा भीतर का सच्चा परमात्मा, जन्तु के दो भाग होने से विभक्त नहीं होता। जन्तु के शरीरों के गुणन के साथ साथ असली जन्तु की शक्ति, अर्थात् भीतरी आत्म-देव की वृद्धि नहीं होती। वह ज्यों का त्यों बना रहता है। वह असली बच्चे के समान है, और जन्तु के शरीर दर्पण के टुकड़ों के सदृश हैं। जब जन्तु के शरीरों के भाग और उपविभाग और पुनः भाग होते हैं, निर्विकार अनन्त शक्ति अपना प्रतिबिम्ब डालती रहती है, अपने दर्शन देती रहती है, हज़ारों और करोड़ों शरीरों में अपने को समान भाव से प्रकट करती है। वह वही बनी रहती है। वह केवल एक, केवल एक, केवल एक है, दो नहीं, बहु नहीं। ओ महा आश्चर्य! कैसा आनन्द है! इस शरीर के दो भाग कर दो, इस शरीर को काट डालो, किन्तु मैं मरने का नहीं। वास्तविक स्वरूप, वास्तविक "मुझ" सच्ची "मैं" मरती नहीं। इस शरीरको ज़िन्दा जला दो, इसे तुम्हारा जो जी चाहे करो, मुझे कोई हानि नहीं होती। अनुभव करो, अनुभव करो कि, तुम भीतरी

अनन्तता हो। यह जानो। जिस क्षण कोई मनुष्य अपने को भीतरी अनन्तता जान लेता है, जिस क्षण मनुष्य को अपनी वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है, उसी क्षण वह स्वाधीन हो जाता है ; सम्पूर्ण भय, कठिनता, यातना, कष्ट और व्यथा से परे हो जाता है। यह जानो, जो वास्तव में तुम हो, सो बनो।

ओ ! यह कैसा आश्चर्यों का आश्चर्य है कि, वह एक ही अनन्त शक्ति है, जो अपने को सब शरीरों में, सब देखने मात्र व्यक्तियों में, अर्थात् सब बाह्य रूपों में प्रकट करती है। ओह, वही 'मैं' है, वह असली 'मैं' है, वही एक अनन्त है, जो अपने को बड़े से बड़े वक्ताओं, महापुरुषों और घोर अभागे प्राणियों के शरीरों में प्रकट कर रहा है। ओह, कैसा आनन्द है ! मैं अनन्त एक हूं न कि यह शरीर। इसका अनुभव करो और आप स्वतंत्र वा स्वाधीन हो। ये केवल शब्द नहीं हैं। यह केवल काल्पनिक बातचीत नहीं है। यह सच्ची से सच्ची असलियत है। सत्यतम वास्तविकता, अर्थात् असली शक्ति को, जो तुम हो, प्राप्त करो। तुम अनन्त अनुभव करते ही सब आशंकाओं और कठिनताओं से तुरन्त दूर हो जाते हो।

मान लो कि यहाँ संसार में सहस्रों शीशे हैं। कोई काला है, कोई सफ़ेद है, कोई लाल है, कोई पीला है, कोई हरा है। एक कूर्मपृष्ठाकार (convex) है, दूसरा पुटाकार (concave) है। मान लो कोई पहलदार (prismatic) है और कोई गरारीदार अर्थात् छोटी वस्तु को बड़ी अथवा बड़ी को छोटी दिखाने वाला है। सब तरह के शीशे हैं। एक मनुष्य उन शीशों के नीचे खड़ा हुआ है। वह चारों ओर दृष्टि डालता है। एक जगह वह अपने को लाल देखता है। लाल शीशे में वह अपने को लाल पाता है। दूसरी जगह वह अपने को पीला पाता है, और तीसरी जगह वह अपने

को काला पाता है। पुटाकार शीशे में वह अपनी आकृति विचित्र ढंग से विकृत देखता है। कूर्मपृष्ठाकार शीशे में वह फिर अपने को खूब हँसे जाने के योग्य विकृत देखता है। वह अपने को इन भांति भांति के रूपों और आकारों में देखता है। किन्तु इन सब वाह्य विभिन्न रूपों में एक अविभाज्य, निर्विकार, सर्वकालीन, निरन्तर सत्ता है। यह जानो और अपने को मुक्त करो। यह जानो और सब रंज दूर करो। इस सम्पूर्ण विकृति और कुरूपता का उस वास्तविक अनन्तता अर्थात् आत्मदेव से कि, जो इन समस्त विभिन्न शीशों तथा दर्पणों में अपने को प्रकट और आविर्भूत करता है, कोई सम्बन्ध नहीं है। भेद तुम्हारे शरीरों में है। शरीर, मन विभिन्न शीशों के समान हैं। एक शरीर नक्काशीदार शीशे के तुल्य है, दूसरा पहलदार है। कोई सफ़ेद, कोई लाल, कोई पुटाकार और कोई कूर्मपृष्ठाकार शीशे के समान है। शरीर विभिन्न हैं, किन्तु तुम केवल शरीर, अथवा बाह्य असत आत्मा नहीं हो। अज्ञान-वश तुम अपने को शरीर कहते हो, शरीर तुम हो नहीं। तुम अनन्त शक्ति, परमात्मा, निरन्तर, निर्विकार, निर्विकल्प कैवल्य हो। वही तुम हो। यह जानते ही तुम अपने को समस्त संसार, अखिल ब्रह्माण्ड में बसे हुए पाते हो।

हमारे भारत में शीशमहल होते हैं। शीशमहलों की सब दीवालें और छतें तरह तरह के शीशों और दर्पणों से जड़ी होती हैं। मालिक मकान ऐसे कमरे में आता है, और अपने को सब ओर पाता है।

एक बार ऐसे एक शीशमहल में एक कुत्ता आ गया। कुत्ते ने अपनी दाहिनी ओर से कुत्तों के झुण्ड के झुण्ड अपनी ओर आते देखे। आप जानते हैं कुत्ते बड़े द्वेषी होते

हैं। कुत्ता अपने सिवाय दूसरे कुत्ते को नहीं देख सकता। वे बड़े द्वेषी होते हैं। जब इस कुत्ते ने दाहिनी ओर से हज़ारों कुत्तों को अपनी ओर आते देखा, वह बांई तरफ़ मुड़ा। इधर की दिवाल पर भी हज़ारों शीशे जड़े हुए थे। इधर से भी कुत्तों की एक सेना उसे खा लेने, टुकड़े टुकड़े कर डालने के लिये अपनी ओर आती दिखाई दी। वह तीसरी दिवाल की ओर घूमा। फिर भी उसे उसी तरह के कुत्ते दिखाई पड़े। चौथी दिवाल की ओर वह फिरा। अब भी वही गति। उसने छत की ओर मूँड़ उठाया। वहाँ से भी हज़ारों कुत्ते उसे खा लेने और चीड़ डालने के लिये अपनी ओर से उतरते दिखाई पड़े। वह डर गया। वह कूदा, तो सब ओर से सब कुत्ते कूदे। जब वह भौंकने लगा, तो उसने सब कुत्तों को भौंकते और अपनी तरफ़ मुँह पसारते देखा। चारों दिवालों से उसकी ध्वनि की प्रतिध्वनि उठने लगी। वह सहम गया। वह इधर उधर कूदने और दौड़ने लगा। इस तरह बेचारा कुत्ता थक कर वहीं ढेर होगया।

ठीक इसी प्रकार वेदान्त तुम्हे बताता है कि यह संसार शीशमहल के समान है, और ये सब शरीर विभिन्न दर्पणों के तुल्य हैं, और तुम्हारी सच्ची आत्मा या निज स्वरूप का सब ओर ठीक वैसे ही प्रतिबिम्ब पड़ता है जैसे कि कुत्ता अपना प्रतिबिम्ब चारों दिवालों में देख रहा था। इसी तरह एक अनन्त आत्मा, एक अनंत ईश, एक अनंत शक्ति विभिन्न दर्पणों में अपना प्रतिबिम्ब डालती है। एक अनन्त राम ही इन सब शरीरों द्वारा प्रतिबिम्बत हो रहा है। मूर्ख लोग कुत्तों की तरह इस संसार में आते और कहते हैं, "वह मनुष्य मुझे खालेगा, अमुक आदमी मेरे टुकड़े टुकड़े कर डालेगा, मुझे मिटा देगा"।

ओह ! इस संसार में ईर्ष्या और भय कितना अधिक है। इस ईर्ष्या और भय का क्या कारण है ? कुत्ते की अज्ञानता ; अथवा कुत्ते की सी अज्ञानता इस संसार के यावत द्वेष और भय का कारण है। कृपया, पटरे उलट दीजिये। इस संसार में दर्पण वा शीशमहल के मालिक की तरह आइये । इस संसार में म—रा की तरह नहीं, रा—म* होकर अथवा हरि (बन्दर) की तरह नहीं हरि (विष्णु) की तरह आइये ; और आप शीशमहल के मालिक होंगे, आप सम्पूर्ण संसार के स्वामी होंगे। आप जब अपने प्रतिद्वंदियों, भाइयों और शत्रुओं को आगे बढ़ते देखेंगे, आपको हर्ष होगा। कहीं भी किसी प्रकार का गौरव देखकर आपको प्रसन्नता होगी। आप इस संसार को स्वर्ग बना देंगे।

अब हम मनुष्य पर आते हैं। सान्त बीज में आप अनन्त देख चुके। वह उद्भिज वर्ग का उदाहरण था। जन्तु में भी आपको सान्त में अनन्त दिखाया जा चुका। यह प्राणि-वर्ग से उदाहरण था। आप शीशे के मामले में भी सान्त में अनन्त देख चुके। यह उदाहरण धातुवर्ग से लिया गया था। अब हम मनुष्य पर आते हैं।

जैसे कि मूल बीज ने मिटकर हज़ारों बीजों की उत्पत्ति की, किन्तु वास्तव में असली बीज न बढ़ा और न घटा था, बल्कि वैसे का वैसा ही रहा था ; और जिस प्रकार मूल जन्तु बाह्य रूप से मर कर हज़ारों जन्तुओं को पैदा करता है, यद्यपि असली जन्तु ज्यों का त्यों बना रहता है ; और जिस प्रकार

---

*मूल व्याख्यान में अँग्रेजी के 'डॉग' Dog और 'गॉड' God शब्दों का व्यवहार किया गया है। डी० ओ० जी०=डॉग माने कुत्ता, और इसके उलटे जी० ओ० डी०=गॉड के माने ईश्वर हैं।

शीशा टूट जाने से दर्पण टूट जाता है, किन्तु वास्तविक बच्चा छिन्न भिन्न नहीं होता ; ठीक उसी प्रकार जब मनुष्य मर जाता है, उसके पुत्र, दो या अधिक, कभी कभी दर्जनों उसका स्थान ग्रहण करते हैं। कुछ अंग्रेजों, अर्थात् हिंदुस्तान के आंग्ल-भारतियों के कोड़ियों बच्चे होते हैं। जन्मदाताओं की मृत्यु हो जाने पर दर्जनों और कोड़ियों उनके स्थान पर आ जाते हैं। फिर इनकी भी मरने की बारी आती है और ये चौगुनी सन्तति अपने पीछे छोड़ जाते हैं। वे भी मर कर और भी बड़ी संख्या अपने पीछे छोड़ जाते हैं। अब फिर वही बात है। जैसे कि मूल जन्तु नष्ट होकर अपने स्थान में दो छोड़ गया था, और इन दो से चार हो गये थे, और चार से आठ हो गये थे, मूल बीज मिट गया था और उससे यथा समय हज़ारों बीज हो गये थे ; ठीक वैसे ही नर और नारी के भी एक जोड़े से कोड़ियों, नहीं नहीं हज़ारों, लाखों उसी प्रकार के जोड़े हो जाते हैं। जोड़े का गुणन होता ही जाता है। सविस्तर वर्णन के लिये समय नहीं है। एक व्याख्यान में ढांचा मात्र दिया जा सकता है।

वेदान्त आपको बताता है कि ठीक वही हाल आपका भी है, जो बीज, जन्तु, या शीशे का था। नर और नारी का प्रारम्भिक जोड़ा मर गया। उससे, अर्थात् ईसाइयों की बाइबिल के आदम और ईव से संसार के कोटानुकोट वासियों का जन्म हो गया।

यहाँ पुनः वेदान्त आप से कहता है कि यह देखने मात्र का गुणन, यह देखने मात्र की बाढ़, वास्तविक वा असली मनुष्य में, जो तुम हो, किसी प्रकार की वृद्धि की द्योतक नहीं है। वास्तविक मनुष्य (संख्या में) बढ़ता नहीं है। तुम्हारे अंतर्गत

वास्तविक मनुष्य अनन्त स्वरूप है। आप कह सकते हैं कि मनुष्य एक अनन्त व्यक्ति है। सब मनुष्यों को मर जाने दीजिये, कोई सा भी एक जोड़ा बच रहे। इस एक जोड़े से हमें यथा समय कोड़ियों नर-नारी मिल सकते हैं। आरम्भिक दम्पती में जो अनन्त सामर्थ्य, अनन्त शक्ति, और अनन्त योग्यता छिपी हुई या गुप्त थीं, वे आज भी हर जोड़े में बेघटी, अविकल पाई जाती हैं। यह अनन्तता तुम हो। यह अनन्त सामर्थ्य, और अनन्त शक्ति तुम हो, और यह शक्ति सकल शरीरों में वही है। ये शरीर दर्पण की तरह भले ही बढ़ जाँय, परन्तु मनुष्य अर्थात् वास्तविक अनन्तता एक है। तुम इन शरीरों को चाहे बहुत कुछ मानो, तुम इन्हें चाहे जैसा समझो, किन्तु तुम ये (शरीर) नहीं हो। आप अनन्त शक्ति हैं, जो केवल एक अपरिछिन्न है। आप कल जो कुछ थे, वही आज भी हैं, और सदा रहेंगे। एक सामान्य उदाहरण से बात अधिक साफ़ हो जायगी।

महाशय, आप कौन हैं? मैं अमुक श्रीमान् हूं। अस्तु, क्या आप मनुष्य नहीं हैं? हाँ, अवश्य मनुष्य हूं। आप कौन हैं? मैं अमुक श्रीमती हूं। क्या आप नारी नहीं हैं? अवश्य नारी हूं। किसी से भी पूछ देखिये, वह अपने को मनुष्य कहेगा। किन्तु किसी अज्ञानी मनुष्य से प्रश्न कीजिये, वह आप से इतना कदापि नहीं कहेगा कि, मैं मनुष्य हूं। वह यह भी कहेगा कि, मैं अमुक महाशय हूं, मैं अमुकी महाशया हूं। किन्तु, मनुष्य तो आप भी हैं। तब वह शायद अपना मनुष्य होना मंज़ूर करले।

अब हमारा सवाल है, आपने क्या कभी कोई शुद्ध, अविशिष्ट. वा अनिर्दिष्ट मनुष्य देखा है? कभी आपने ऐसा कोई देखा है? जहाँ हमें संयोग पड़ता है, अमुक श्रीमान् या अमुकी श्रीमती

प्रकट हो जाती है, कोई महाशया या कोई महाशय निकल आते हैं। किन्तु वास्तविक मनुष्य अर्थात् कोरा वा शुद्ध मनुष्य आप कहीं नहीं पा सकते। तथापि हम जानते हैं कि यह शुद्ध मनुष्य सब वस्तुओं में विशेष है। यह जाति, अर्थात् कोरा मनुष्य, अपने रामपन और मोहनपन से रहित, अथवा अपने महाशयपन या महाशयापन से अतीत मनुष्य मिलना आप को दुर्घट है। इस प्रकार के नाम वा उपाधि आदि से रहित विशुद्ध मनुष्य हम कहीं नहीं पा सकते, यद्यपि यह मनुष्य इन सब शरीरों में वर्तमान है। अमुक महाशय को अपने सामने लाइये। उसका मनुष्य-अंश अलग कर लीजिये। मनुष्य अर्थात् वास्तविक मनुष्य घटा दीजिये, फिर क्या बच रहेगा? कुछ नहीं। सब गया, सब ग़ायब। 'महाशय' निकाल डालिये, सम्पूर्ण महाशय-पन तथा दूसरी बातें निकाल डालिये, हमारे लिये कुछ नहीं रह जाता, किन्तु वास्तविक मनुष्य अब भी वहाँ है। राम वास्तविक मनुष्य से मूलभूत शक्ति का अर्थात् आपके भीतर की अनन्तता का अर्थ लेता है। तत्त्व-विचारक बर्कले के शब्दों के जाल में न भूलिये। पूरी परीक्षा और विवेचना कीजिये। आप देखेंगे कि भीतरी अनन्तता वास्तव में ऐसी कोई वस्तु है, जो देखी, सुनी और चखी नहीं जा सकती। फिर भी जो कुछ आप देखते हैं, सब का मूल (सोता) यही है, यही अखिल दृष्टि का कारण है, यही अखिल ध्वनि का कारण है, यही उन सब चीज़ों का सारभूत है, जो आप चखते हैं। यही वास्तविक सत्ता है, यही आत्म देव है, जो कुछ आप जानते, देखते, सुनते या छूते हैं। सब में यही एक शक्ति है। यह सर्वत्र मौजूद होते हुए भी अकथनीय है। इस प्रकार हमारी समझ में आता है कि सान्त के भीतर का अनन्त

देखा, सुना, समझा, और विचारा नहीं जा सकता है। और फिर भी आप जो कुछ देखते हैं, इसी के द्वारा; जो कुछ सुनते हैं, इसी के द्वारा; और जो कुछ सूँघते हैं, इसी के द्वारा। यह वर्णनातीत होते हुए भी मूलभूत है, और समस्त वर्णित पदार्थों का सारांश है।

अन्त में राम आप से चाहता है कि आप अपने ऊपर केवल एक कृपा करें। सब छोड़ कर मनुष्य बनिये। ये सब शरीर ओस के बूंदों के समान हैं, और असली मनुष्य सूर्य की किरण के समान है, जो ओस के मोतियों वा दानों में होकर गुज़रती और उन सब को डोरे में पिरो देती है। ये सब शरीर माला के मनकों के तुल्य हैं और असली मनुष्य उन सब में होकर निकलने वाले डोरे के समान है। एक क्षण के लिये यदि आप शान्त बैठ कर ऐसा विचारें कि, आप विश्व-मानव हैं, आप अनन्त शक्ति हैं, तो आप देखेंगे कि आप वास्तव में वही हैं। मनुष्य होते हुए भी मैं सब कुछ हूं; वह अनिश्चित मनुष्य या मनुष्य वर्ग होता हुआ भी मैं सब कुछ हूं; तुम सब एक हो, वास्तव में तुम सब एक हो। इस श्रीमानपन वा श्रीमतीपन से ऊपर उठिये। इससे ऊपर उठतेही आप की समस्त से एकता हो जाती है। कैसी महान धारणा है! आप समस्त से एक हो जाते हैं, तब आपकी अखिल विश्व से एकता हो जाती है। एक उपनिषद् के एक अंश का यह उल्था है, किन्तु कुछ रूपान्तर से है।

"I am the Unseen Spirit which informs
All subtle essence! I flame in fire,
I shine in sun and moon, planets and stars,
I blow with the winds, roll with the waves!

I am the man and woman, youth and maid !
The babe new born the withered ancient, propped
Upon his staff ! I am whatever is—
The black bee and the tiger and the fish,
The green birds with red eyes, the tree, the grass,
The cloud that hath the lightning in its womb,
The seasons and the seas ! In Me they are,
In Me begin and end."

(Upanishad, Sir Edwin Arnold, translator.)

मैं ब्रह्म अगोचर निर्विकार;
सब सूक्ष्मतत्त्व का परम सार।
पावक में ज्वाला मम विकाश;
रवि शशि ग्रहगण में मम प्रकाश ॥ १ ॥
मैं बहता हूं नित पवन-संग;
लहराता हूं सह जल-तरंग।
मैं नर हूं, पुनि मैं सुभग नारि;
मैं बालक हूं, मैं ही कुमारि ॥ २ ॥
मैं ही हूं पुनि नवजात बाल;
मरणोन्मुख बूढ़ा अति बिहाल।
मैं श्याम मक्षिका, सिंह काल;
मैं हरित कीर द्रग लाल लाल ॥ ३ ॥
मैं ही हूं जल में जलज मीन;
मैं ही तृण, मैं ही तरु नवीन।
चंचल चपला घन-घटा बीच;
मेरी ही छवि कवि रहे खींच ॥ ४ ॥
मैं ही सब ऋतु, मैं ही समुद्र;
मुझ में ही है सब बृहत्, क्षुद्र।

मुझ में ये दृश्यादृश्यमान :
करते सु-आदिमध्यावसान ॥ ५ ॥

अनन्त तुम हो; वह अनन्तता तुम हो; और वह अनन्तता होने के कारण तुमने, मानो इन कल्पित, मिथ्या और मायामय शरीरों की सृष्टि की है। तुमने अपने लिये शीशमहल की भाँति यह संसार रचा है। तुम उसी एक अनन्त वा विश्वव्यापी ईश्वर का ध्यान रखो, जो वास्तव में तुम हो और जो इस जग में रहता और व्याप्त है।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

कारण शरीर पर आत्मसूर्य ।

(ता० १२ जनवरी १९०३ को अमेरिका के सैन फ्रांसिस्को के गोल्डन गेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान ।)

महिलाओं और भद्रपुरुषों के रूप में नित्य स्वरूप !

आज के व्याख्यान का विषय अनित्य में नित्य है। प्रारम्भ करने से पहले कुछ शब्द उस प्रश्न के उत्तर में बोले जाँयगे, जो राम से बारंबार किया गया है:- "जिस रंग के कपड़े आप पहनते हैं उसकी विशेषता क्या है ? बौद्ध पीले, और वेदान्ती साधु अर्थात् स्वामी गेरुए रंग के कपड़े क्यों पहनते हैं ?"

आप जानते हैं, हरेक धर्म के तीन अंग होते हैं। प्रत्येक धर्म का अपना अपना तत्त्व-शास्त्र, पुराणशास्त्र, और कर्मकाण्ड है। दर्शनशास्त्र के बिना कोई धर्म टिक नहीं सकता। विद्वानों, बुद्धिमानों और युक्तिशील श्रेणी के लोगों पर प्रभाव डालने के लिये धर्म में दर्शन शास्त्र की ज़रूरत पड़ती है; रसिक चितवृत्तियों अथवा जोशीले स्वभाव के लोगों का मन मोहने के लिये पुराण की, और जन साधारण को अपनी ओर खींचने के लिये कर्मकाण्ड की उसमें आवश्यकता पड़ती है।

वस्त्रों के रंग का सम्बन्ध वेदान्त धर्म के कर्मकाण्ड-विभाग से है। ईसाई 'क्रॉस' अर्थात् सूली के चिह्न को क्यों धारण करते हैं ? यह कर्मकाण्ड है। ईसाई अपने गिर्जाघरों की चोटियों पर 'क्रॉस' क्यों लगाते हैं ? यह भी कर्मकाण्ड है। रोमन कैथोलिक (सम्प्रदाय के) ईसाइयों में कर्मकांड की अधिकता है। प्रोटेस्टैंटों

(दूसरी ईसाई-सम्प्रदाय) में कर्मकाण्ड की न्यूनता है, किन्तु कुछ न कुछ है अवश्य। इसके बिना उनका भी काम नहीं चलता। इसी प्रकार ये रंग वेदान्त धर्म का कर्मकाण्ड है। हिन्दू की दृष्टि में लाल और गेरुए रंगों का वही अर्थ है जो ईसाई के लिये 'क्रॉस' का है। सूली (क्रॉस) क्या सूचित करती है? वह ईसा की मृत्यु की, ईसा के प्रेम की यादगार है। ईसा ने जनता के लिये अपने शरीर को सूली पर चढ़ने दिया। ईसाइयों के सूली-चिह्न पहनने का यह अभिप्राय है। यदि आप किसी हिन्दू से सूली का अर्थ पूछें तो वह कुछ और ही बतावेगा। वह कहेगा, ईसा का उपदेश है सूली लो, अपनी सूली लो और मेरा अनुसरण करो। 'मेरी सूली लो' यह वह नहीं कहता। बाइबिल में (बाइबिल के नये संस्करण में) सेंट पाल या ईसा आप से ईसा की सूली उठाने को नहीं कहते, किन्तु वे कहते हैं अपनी सूली लो। ठीक यही शब्द वहाँ हैं, अपनी सूली लो। इनका अर्थ है, अपने शरीर को सूली पर चढ़ाओ, अपनी विषयासक्ति को सूली पर चढ़ाओ, अपने परिच्छिन्नात्मा को सूली पर चढ़ाओ, अपने अहंकार को सूली पर चढ़ाओ। यह उसका अर्थ है। अतएव सूली अपने स्वार्थों को, अपने तुच्छ अहंकार को, अपने तुच्छ अहंकारमय, स्वार्थमय परिच्छिन्नात्मा को सूली देने का चिह्न होना चाहिये। सूली का अर्थात् सूली-चिह्न पहनने का यह अर्थ है। इसके अर्थ आप चाहे इस प्रकार लें चाहे और प्रकार, यह आप की इच्छा पर निर्भर है। किन्तु वेदान्त सदा आप से सूली को इसी अर्थ में लेने की प्रार्थना करता है। और इसी अर्थ में एक बौद्ध पीत वस्त्र पहनता है।

पीला रंग, कम से कम भारत में, मुर्दे का रङ्ग है। मृतक शरीर

का पीला रङ्ग होता है। पीले वस्त्रों या पीली पोशाक से सूचित होता है कि, उनको धारण करनेवाला मनुष्य अपने शरीर को सूली पर चढ़ा चुका है, अपने रक्त-मांस के शरीर को निरानिर तुच्छ समझ चुका है, विषयाशक्ति से ऊपर उठ चुका है, सब स्वार्थमयपूर्ण हेतुओं से परे है: ठीक वैसे ही जैसे कि रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के ईसाई जब किसी को साधु बनाते हैं तब उसे कौफिन या अरथी में रखते हैं और उसके सिरहाने खड़े होकर 'जौब' (*Job*)* वाला अध्याय पढ़ते हैं। उन गीतों, भजनों और उपदेशों को वे उसके निकट पढ़ते हैं, जो साधारणतः मुर्दे के पास पढ़े जाते हैं। और अरथी में रक्खे हुए मनुष्य को विश्वास और निश्चय कराया जाता है कि वह मुर्दा है; अर्थात् समस्त प्रलोभनों, सम्पूर्ण विषयासक्तियों, और समग्र सांसारिक इच्छाओं के लिये वह मुर्दा है। बौद्धों को पीले कपड़े पहनने पड़ते हैं, जिसका अर्थ है कि उस मनुष्य को सांसारिक आकांक्षाओं से, स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों और मन्तव्यों से अब कोई मतलब नहीं रह गया, मानों संसार के लिये वह मुर्दा है। वेदान्तियों के गेरुये रङ्ग का अभिप्राय है अग्नि का रङ्ग। यह रङ्ग (वक्ता के कपड़ों के रङ्ग से अभिप्राय है) ठीक ठीक आग के रङ्ग का सा रङ्ग नहीं है, किन्तु आग से इसकी अपेक्षा अधिक मिलता हुआ दूसरा रंग अमेरिका में नहीं मिल सका। हमारे भारत में एक रङ्ग है जो ठीक अग्नि के रङ्ग का है। एक भारतीय साधु कहीं पर बैठा हो, तो दूर से देखकर आप नहीं जान सकते कि मनुष्य है या अंगारों का ढेर। यह रंग अग्नि के सदृश है, इसका अर्थ यह है कि मनुष्य ने अपने

---

*बाइबिल का एक भाग।

शरीर का दाह कर दिया है। आप जानते हैं कि, हमारे भारत में मृतक शरीर गाड़ा नहीं जाता, हम उसे भस्मीभूत करते अर्थात् जलाते हैं। इस प्रकार यह लाल रङ्ग स्पष्ट सूचित करता है कि इन कपड़ों को पहननेवाले मनुष्य ने अपने शरीर का हवन कर दिया है, अपने शरीर को सत्य की वेदी पर चढ़ा दिया है, सब सांसारिक इच्छायें जला दीं, जला दीं, जला दी हैं। सब सांसारिक इच्छायें, सब सांसारिक आकांक्षायें, सब सांसारिक कामनायें और लालसायें अग्नि देव के हवाले कर दी गई हैं।

सूली का भी रङ्ग लाल है। ईसा का रक्त भी लाल है। ईसाइयों को भी किसी लाल चीज़ की आवश्यकता पड़ती है। यह भी लाल है, और रक्त तथा अग्नि होने के दोहरे अर्थ रखता है। किन्तु यह एक और अभिप्राय का भी सूचक है। पीले रङ्ग से भी शरीर की मृत्यु अर्थात् विषयासक्ति की मृत्यु प्रकट हो सकती थी, किन्तु वे (हिन्दू साधु) पीले वस्त्र नहीं पहनते, वे अग्नि के रङ्ग के लाल कपड़े पहनते हैं। इसका भाव यह है कि, एक दृष्टि से तो यह मरण है और दूसरी दृष्टि से जीवन। आप जानते हैं, अग्नि में जीवन होता है, अग्नि जीवन का पालन करती है, अग्नि में तेज होता है, शक्ति होती है। लाल वस्त्र जतलाते हैं कि समस्त तुच्छ कामनायें, समग्र स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियें और क्षुद्र आकांक्षायें अग्नि के हवाले कर दी गईं, अर्थात् मार दी गईं। किन्तु दूसरी दृष्टि से उन्हीं के द्वारा जीवन, ज्वाला, तेज और शक्ति प्रकट हो आते हैं। लाल पोशाक दोहरा अर्थ रखती है। वह विषयासक्ति की तो मृत्यु और आत्मिक जीवन का अर्थ रखती है। भयभीत मत हो, भयभीत न हो। वेदान्त जल-संस्कार (बैप-

टिज़्म, ईसाई धर्म का एक संस्कार) के बदले अग्नि-संस्कार की शिक्षा देता है। वह अग्नि, अग्नि-ज्वाला के संस्कार का, शक्ति और तेज के संस्कार का उपदेश देता है। ओह! भय न करो कि यह अग्नि है और हमें भस्म कर देगी। तुम भी बाइबिल में पढ़ते हो, "जो अपना जीवन बचाना चाहे वह जीवन खोवे"। "He who would save his life must lose it." इस तुच्छ जीवन को खो कर तुम असली जीवन की रक्षा कर सकते हो, यही सिद्धान्त है। अरे! इस संसार के लोग अपने जीवन का कैसा सर्वनाश करते हैं। वे अपने सांसारिक जीवन को क़ैद की ज़िन्दगी, मृत्यु की ज़िन्दगी. अर्थात् नरक की ज़िन्दगी बना लेते हैं। राम को आप क्षमा करें, यह सत्य है। उनके हृदयों पर, उनकी छातियों पर चिन्ता और शोक का विराट हिमालय, चिन्ता और शोक का विराट पहाड़ रक्खा हुआ है। हिमालय हमें न कहना चाहिये, हिमालय तो साक्षात् शक्ति और विभूति है। हम शोक और चिन्ता का महाशक्तिशाली पहाड़ कहेंगे। वे अश्रु और हास्य के बीच में घड़ी के पेंडूलम अर्थात् लटकन की तरह सदा झूला करते हैं, कभी किसी की टेढ़ी नज़र और धमकी से हताश होते हैं, कभी किसी की कृपा और आशाजनक वचनों से प्रसन्न। अपनी कल्पना से वे सदा अपने इर्दगिर्द कारागार, अंधकूप और नरक की सृष्टि उत्पन्न किया करते हैं।

वेदांत चाहता है कि आप इस तुच्छ प्रकृति, इस मूर्खता से पीछा छुड़ा लें। इस अज्ञान को, इस परिच्छिन्न अहंकार को, इस तुच्छ स्वार्थपूर्ण प्रकृति को, जो आप के शरीर को नरक बनाये हुए है, जला दो और ज्ञान की अग्नि को भीतर आने दो। अग्नि को हिन्दू सदा ज्ञान का

स्थानापन्न बनाते हैं। ज्ञान की अग्नि भीतर आने दो, और यह सब भूसी तथा कूड़ा करकट जल जाने दो; सिर से पैर तक अग्निरूप, स्वर्गीय अग्निरूप नखशिख दहकते हुए तुम निकल आओ, यही इस रंग का अर्थ है।

किसी ने राम से पूछा था, "तुम ध्यान क्यों खींचते हो?" राम ने उसे कहा "भाई! तुम्हीं समझ कर बताओ कि इन कपड़ों में क्या दोष है"। उसने कहा, "मैं तो कोई दोष या हानि नहीं पाता, किन्तु दूसरे लोग दोष निकालते हैं"। परन्तु दूसरों की अज्ञानता के तुम ज़िम्मेदार नहीं हो। अपनी बुद्धि और दिमाग़ से सावधान हो। यदि आप स्वयं कोई दोष निकाल सकते हैं तो इन कपड़ों में निकालिये। यदि दूसरे दोष निकालते हैं तो आप उनके ज़िम्मेदार नहीं हैं।

सब से श्रेष्ठ साधु, श्रेष्ठतम भारतीय साधु, इस संसार में सबसे बड़ा स्वामी, सूर्य अर्थात् उदय होता हुआ सूर्य है। निकलता हुआ सूर्य नित्य आप को लाल पोशाक में, वेदांती साधु की पोशाक में दर्शन देता है। आज के व्याख्यान में, यह सूर्य अनित्य शरीरों की अपेक्षा नित्य स्वरूप को आप के सन्मुख दर्शायगा। सूर्य, स्वामी, साधु, लाल वस्त्रधारी सूर्य को हम सच्ची आत्मा, वास्तविक स्वरूप, जो इस सूर्य की अपेक्षा बेबदल है, जो नित्य है, जो आज कल और हमेशा एक-रस है, उसका एक चिन्ह मान लेते हैं। हम अब अनित्य अर्थात् बदलने वाली वस्तुओं की चर्चा करेंगे, जो मनुष्य में अनित्य शरीरों के स्थान पर हैं। मनुष्य में बदलने वाले अर्थात् अनित्य पदार्थ भी हैं, और उसी मनुष्य में निर्विकार, निर्विकल्प, नित्य वास्तविक आत्मा भी है। वास्तविक आत्मा सूर्य के समान है। और परिवर्तनशील पदार्थ तीन शरीर हैं; जो घन रूप; लघु

रूप और बीज रूप हैं। राम इन शरीरों को ये नाम देता है। संस्कृत में इन्हें स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर कहते हैं। और राम उनका उलथा घन (gross) शरीर, लघु (subtle) शरीर, बीज (seed) शरीर करता है। ये तीनों शरीर अर्थात् कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीर परिवर्तनशील पदार्थ हैं; ये आत्म नहीं, किन्तु अनात्म हैं। ये परिवर्तनशील और अस्थिर हैं। ये आप स्वयं नहीं हो। आप नित्यात्मा हो, निर्विकार हो। यही दिखाना है।

आप को तीनों शरीरों और वास्तविक आत्मा की स्पष्ट धारणा कराने के लिये हम एक उदाहरण का सहारा लेते हैं। कृपा पूर्वक खूब ध्यान दीजियेगा। आज के व्याख्यान में युक्ति की बातें न बघारी जाँयगी, बहुत तर्क-वितर्क न होगा। आज मनुष्य का मसला (सिद्धान्त), जैसा कि हिन्दुओं ने सिद्ध किया है, आप को साफ़ करके बताया जायगा। उसकी स्पष्ट व्याख्या की जायगी ताकि आप तुरन्त समझ सकें। पीछे यदि समय मिलेगा तो हम तत्त्व शास्त्र में प्रवेश करेंगे और प्रश्न के प्रत्येक पहलू को दलीलों से सिद्ध करेंगे। आप जानते हैं कि किसी विषय पर न्याय-शास्त्र का प्रयोग करने के पूर्व हमें पहले समझ लेना चाहिये कि सिद्धांत क्या है। इस लिये आज सिद्धांत का अभिप्राय स्पष्ट किया जायगा। और आप देखेंगे कि इस व्याख्या में भी, अथवा आवरण रूपी मेघों का दूर होना और सिद्धांत का समझना ही स्वयं प्रमाण हो जायगा। जैसा कि पोप (एक अंग्रेज़ कवि) ने लिखा है।

"Virtue is a fairy of such a beauteous mien,
As to be loved needs only to be seen."

"नेकी एक ऐसी रूपवती सुंदरी है कि उसे प्यार करने के लिये केवल देख लेने भर की आवश्यकता है।"

इसी प्रकार सत्य में भी ऐसी भव्य सुंदरता है कि आप के हृदयों में उसके पैठ जाने के लिये केवल उसे साफ़ साफ़ देख लेने की ज़रूरत है। सूर्य के अस्तित्त्व के लिये किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। सूर्य को देखना ही सूर्य को प्रमाणित करना है। हर एक चीज़ जो कुछ भी हो किसी बाहरी प्रकाश में दिखाई देती है, किन्तु प्रकाश को किसी दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती कि उसकी सहायता से वह देखा जासके। इस लिये आज रात को किसी युक्ति और प्रमाण के विना ही केवल सिद्धांत आप के सामने रख दिया जायगा। अब हम उदाहरण पर आते हैं।

कृपया आप राम के साथ हिमालय की हिमशिलाओं (glaciers) को चलिये। कैसा जगमग दृश्य हमें दिखाई पड़ता है। हीरे का सा पहाड़, सब सफ़ेद, अद्भुत, झलझलाता हुआ, श्वेत हिमशिलाओं का समुद्र, अति चमकदार, अति सुन्दर, प्रभाशाली, उत्साह फूंकनेवाला है। वहाँ न कोई वनस्पति है, न पशु, न नर न नारी। इन बर्फ़ीली चट्टानों पर जीवन का एक स्रोत मात्र सूर्य अर्थात् इन मनोहर दृश्यों पर चमकने वाला प्रभामण्डल रूप सूर्य दिखाई देता है। अहा, कैसा सुहावना दृश्य है! कभी कभी सूर्य का प्रकाश बादलों से छनकर भूमि पर पड़ता है, और सारी दृष्टिगत भूमि को अग्निवर्ण से दीप्त कर देता है, सम्पूर्ण दृश्य को स्वामी की पोशाक पहना देता है, सारी रंगभूमि को साधु अर्थात् भारतीय साधु बना देता है। कुछ ही देर बाद सब दृश्य पीला इत्यादि हो जाता है। किन्तु है इस रंगशाला में केवल एक वस्तु, दूसरी कोई वस्तु नहीं। वह एक वस्तु सूर्य है।

आप समझते हैं कि इन हिम-शिलाओं में हिंदुस्थान की बड़ी बड़ी नदियां छिपी हुई अर्थात लुकी हुई हैं। भारत की सब बड़ी

बड़ी नदियां इन्हीं हिम-शिलाओं से निकलती और बहती हैं। इन हिम-शिलाओं में नदी का मूल स्थान या कारण शरीर है। अब आप कृपापूर्वक राम के साथ साथ उतर कर नदी-जीवन की दूसरी अवस्था पर चले आइये।

यहाँ हम दूसरा ही रूप देखते हैं, दूसरे ही प्रकार के दृश्यों और भूभागों (landscapes) पर आते हैं। अब भी हम पहाड़ में ही हैं, किंतु बरफ़ से ढकी हुई चोटियों पर नहीं, कुछ नीचे पर हैं। यहाँ मीलों तक, दर्जनों और कोड़ियों मीलों तक सब कहीं सुंदर गुलाब लगे हुये हैं और पवन गुलाब की रुचिकर मधुर सुगन्ध से पूरित है। यहाँ सुंदर बुलबुलें और दूसरी चिड़ियाँ गा रही हैं, वर्ष भर नित्य प्रेमपत्र लिखा करती हैं अथवा प्रेम प्रलाप करती हैं। यहाँ मनोहर गायक पक्षी वा अन्य पक्षी विशेष अपनी मीठी तानों से पवन को परिपूर्ण करते हैं, और यहाँ हम शानदार, सुंदर, मनोहर वृक्षों के बीच में अत्यन्त चित्ताकर्षक गंगा या किसी दूसरी नदी को अपने घूमते फिरते, टेढ़े मेढ़े मार्ग से जाते, खेलते, पहाड़ों में किलोल करते हुए देखते हैं। आहा! कैसे सुंदर नाले और छोटी छोटी नदियाँ यहाँ हमें मिलती हैं। इन सुंदर नालों में तट पर लगे हुए वृक्षों की परछाँही पड़ती है, और ये छोटी नदियां या नाले बड़े सुहावने ढंग से ख़ूब मौज से खेलते हुए कभी इधर झुकते हैं और कभी उधर। बार बार चक्कर काटते, कभी इधर मुड़ते और कभी उधर, तथा बराबर गाते हुए, ये नदियाँ और नाले बह रहे हैं।

यह क्या है? नदी-जीवन की यह दूसरी दशा है। यहाँ नदी अपने सूक्ष्म शरीर में है। यह नाले या क्षुद्र नदी का रूप नदी का सूक्ष्म शरीर है। यह सूक्ष्म शरीर नदी के कारण शरीर

से निकला है। यह नदी के कारणशरीर से आया है। आप जानते हैं कि नदी के कारण-शरीर पर सूर्य चमक रहा था, और नदी के कारण-शरीर पर सूर्य के ताप और प्रकाश की क्रिया से नदी का सूक्ष्म-शरीर निकल आया। यह सूक्ष्म-शरीर है। यह अति चञ्चल, डाँवाडोल, घुमावदार, बांका-तिरछा है। कहीं यह कभी नीचे फांदता और जोश तथा जल्दी में छलांगें भर रहा है, और कहीं यह शांत भाव से झील बनकर स्थिरता धारण करता है। यह बहुत ही डाँवाडोल, चञ्चल और परिवर्तनशील है।

आओ, थोड़ा उतर कर समभूमि में पहुंचें। यहाँ मैदान में दूसरे ही दृश्यों से हमारा सामना है। वही जल, वही नदी हमने बर्फ़ की टोपी पहने हिमशिलाओं में कारण रूप में मौजूद देखी थी, और नीचे पहाड़ों पर अपने सूक्ष्म आकार में उसने अत्यन्त विलक्षण और कविता रूप धारण किया। वही जल, वही नदी, अब मैदान में मटियारी नदी हो जाती है। मैदान में वही नदी, वही गंगा बड़ी शक्तिशालिनी सरिता हो जाती है। वह बहुत बदल गई। उसने नये वस्त्र अर्थात् नया रंग धारण किया है। उसकी असली स्वच्छता और निर्मलता नहीं रह गई। वह मैली और गंदली हो गई, तथा अपना रंग भी बदल दिया। मटियारी वह होगई। और साथ ही साथ उसकी गति भी बदल गई। अब वह मंद अर्थात् अति मंद होगई। और दूसरी ओर अब वह अति उपयोगी हो गई है। इस विराट नदी के जलतल पर अब नावें और जहाज़ चल रहे हैं, और व्यापार हो रहा है। लोग आकर नहाते हैं, और महान् नदी का जल अब नहरों और जल-प्रवाहों वा बम्बों तथा खेत सींचने और आस पास के देश को उपजाऊ बनाने के काम में लाया जा रहा है।

नदी-जीवन की यह तीसरी दशा नदी का स्थूल शरीर है। और नदी के जीवन का हाल क्या है? नदी की असिल प्रेरक शक्ति का क्या हाल है? नदी की असली प्रेरक शक्ति सूर्य अर्थात् ज्वाज्वल्यमान ज्योति-मण्डल है। अब इस उदाहरण को मनुष्य पर घटाइये।

तुम्हारे तीन शरीर कहाँ हैं, और उनका एक दूसरे के साथ तथा तत्त्व स्वरूप से अर्थात् तुम्हारे वास्तविक स्वरूप या आत्मा से कैसा सम्बन्ध है?

अपनी गहरी नींद (सुषुप्ति) की अवस्था में जहाँ अपने से इतर प्रत्येक वस्तु से तुम बेख़बर रहते हो, अर्थात् जहाँ तुम संसार के विषय में कुछ नहीं जानते, जहाँ पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं हैं, घर घर नहीं है और संसार संसार नहीं है, जहाँ अज्ञानता है, जहाँ अज्ञानता के सिवाय और कुछ नहीं है, जहाँ अव्यवस्था की हालत है, मृत्यु की हालत है, प्रलय की हालत है, जहाँ यों कह लीजिये कि पूरी शून्यता की दशा है, ऐसी गाढ़ निद्रा की अवस्था में वास्तव में आप क्या हैं?

वेदान्त कहता है, वहाँ उस दशा में, जिसकी जाँच आप में से अधिकांश ने कभी नहीं की है, मनुष्य का कारण शरीर है, मनुष्य के वास्तविक स्वरूप या आत्मा के नीचे मनुष्य का कारण शरीर सीधा चित लेटा हुआ है। मनुष्य-जीवन की नदी के जीवन से तुलना होने पर, हिम-शिलाओं पर चमकते हुये सूर्य की भाँति वहाँ हम शुद्ध आत्मा पाते हैं।

कृपया ख़ूब ध्यान से सुनिये। अब एक अत्यन्त सूक्ष्म बात का वर्णन किया जायगा। किसी और दिन भी यह बात कही जा चुकी है, परंतु अवसर चाहता है कि वह फिर दोहराई जाय।

तुम्हारी गहरी नींद अर्थात् सुषुप्ति की अवस्था में यह संसार मौजूद नहीं है, केवल स्वप्न-भूमि है। जागने पर तुम कहते हो कि, "गहरी नींद की दशा में कुछ वर्तमान नहीं था, कुछ मौजूद नहीं था, कुछ नहीं"। वेदांत कहता है, सचमुच उस गहरी नींद की दशा में कुछ मौजूद नहीं है। किंतु आप जानते हैं, जैसा कि हेगेल (Hegel) ने साफ़ साफ़ दिखाया है (जर्मन दार्शनिक हेगेल से पहले ही हिन्दू ऋषिगण विचार कर सिद्ध कर गये हैं कि यह 'कुछ नहीं' भी कुछ है) यह 'कुछ नहीं' भी कारण-शरीर है। यह वस्तु-अभाव, जिसे आप अपनी जाग्रत दशा में 'कुछ नहीं' बताते हैं, कारण शरीर है; यह आपके जीवन की हिम-शिला है। जैसा कि बाइबिल में कहा गया है कि, 'कुछ नहीं' से ईश्वर ने कुछ की सृष्टि की; उसी प्रकार हिंदुओं ने दिखलाया है कि इस कारण शरीर से जिसे जागने के बाद आप 'कुछ नहीं' वर्णन करते हैं, इस कारण-शरीर से जिसे आप 'कुछ नहीं' कहते हैं, इस कारण-शरीर या 'कुछ नहीं' से समस्त संसार निकलता या पैदा होता है। यदि तत्त्व-ज्ञानी लोग आकर कहें कि 'कुछ नहीं' से 'कुछ' कदापि नहीं निकल सकता, तो वेदांत कहता है, जिसे हमने 'कुछ नहीं' कहा है वह वास्तव में 'कुछ नहीं' नहीं है। आप उसे केवल जागने पर 'कुछ नहीं' कहते हैं। आप जानते हैं कि एक ही शब्द की हम जिस तरह चाहें व्याख्या कर सकते हैं। यह वास्तव में 'कुछ नहीं' नहीं है। यह कारण-शरीर है। यह हिम-शिलाओं के समान है। हाँ, अब आप कहेंगे, हम समझ गये कि उस सुषुप्ति से, जिसे हम 'कुछ नहीं' कहते हैं, कुछ का जन्म होता है, और वह देखने मात्र 'कुछ नहीं' कारण-शरीर है। किंतु अपने भीतर के सूर्य का अनुभव कीजिये, भीतरी ईश्वर का अनुभव कीजिये, आत्मा

का अनुभव कीजिये, जो कारण शरीर की इस हिम-शिला से इस समस्त सृष्टि की उत्पत्ति करता है। सूर्य या ईश्वर या आत्मा का अनुभव कीजिये। आप पूछेंगे कि इसका क्या अर्थ है? कृपा करके सुनिये।

उठने पर आप कहते हैं, "ऐसी गहरी नींद सोया कि स्वप्न में कुछ भी नहीं देखा"। उस पर हम कहते हैं कृपा-पूर्वक इस कथन को क़ाग़ज़ पर लिख लीजिये। तब वेदांत आकर कहता है कि, यह कथन ठीक उसी मनुष्य का सा कथन है, जिसने कहा था कि घोर रात्रि में अमुक अमुक स्थान पर एक भी प्राणी मौजूद नहीं था। न्यायकर्त्ता ने उससे यह कथन क़ाग़ज़ पर लिख लेने को कहा, और उसने यही किया। हाकिम ने उससे प्रश्न किया, क्या यह कथन तुम्हारा सच है? उसने कहा, हाँ। तुम किम्वदन्ती के आधार पर यह बात कह रहे हो अथवा अपनी निजी जानकारी के आधार पर? तुमने स्वयं देखा है? उसने कहा, हाँ, मैंने स्वयं देखा है। बहुत ठीक। यदि तुमने अपनी आँखों से देखा है और यदि तुम चाहते हो कि हम तुम्हारी बात को सत्य समझें कि वहाँ कोई मौजूद नहीं था, तो अन्ततः तुम मौक़े पर अवश्य उपस्थित रहे होगे, तभी तुम्हारा बयान सही हो सकता है। किन्तु यदि तुम स्थल पर उपस्थित थे तो तुम्हारा यह बयान अक्षरशः सत्य नहीं है, अर्थात् सर्वथा ठीक नहीं है, क्योंकि मनुष्य होते हुए तुम मौजूद तो थे। कम से कम एक मनुष्य मौक़े पर मौजूद था। इस प्रकार यह, कि कोई मौजूद नहीं था, उस स्थल पर एक भी मनुष्य वर्तमान नहीं था, मिथ्या है, अर्थात् विरुद्ध बयान है। इसके सत्य होने के लिये, और तुम चाहते हो कि हम इसे सत्य समझें, इसका असत्य होना ज़रूरी है। इसका असत्य होना इस लिये

ज़रूरी है कि कम से कम एक मनुष्य को स्थल पर मौजूद होना चाहिये।

इसी प्रकार, जागने पर जब हम बयान करते हैं कि "अरे भाई, ऐसी गहरी नींद मैं ने ली कि उस स्थल पर कुछ भी मौजूद न था", तो मैं कहता हूं, महाशय! आप मौजूद थे। यदि आप सोये होते, यदि आपका सच्चा स्वरूप अर्थात् वास्तविक आत्मा और वास्तविक सूर्य, वास्तविक ज्योति-मंडल, वास्तविक ईश्वर सोया होता, तो स्वप्न की अव्यवस्था और शून्यता की गवाही कौन देता? जब आप स्वप्न की अवस्था और शून्यता की गवाही दे रहे हैं, तो आप वहाँ अवश्य उपस्थित होंगे। इस प्रकार आपकी गहरी निद्रा में, वेदान्त कहता है, कि वहाँ दो वस्तुयें अवश्य दिखाई देती हैं:-(१) शून्यता, जो हिम-शिलाओं या कारण-शरीर के तुल्य है, और (२) साक्षी-ज्योति, अर्थात् सूर्य, प्रकाशमान आत्मा, प्रभापूर्ण स्वरूप या ईश्वर, जो उस सब को देख रहा और गहरी निद्रित अवस्था के उजाड़-खगड पर भी चमक रहा है। वहाँ पर सच्चा स्वरूप नित्य वा निर्विकार सूर्य है, और गहरी नींद की वह शून्यता कारण-शरीर है, जो परिवर्तनशील वा अनित्य और चंचल है। यह परिवर्तनशील और चंचल क्यों है? क्योंकि जब आप स्वप्नभूमि में आते हैं, जब आप स्वप्नावस्था में पड़ जाते हैं, वह शून्यता जाती रहती है, वह शून्यता नहीं बाक़ी रहती। यदि गहरी नींद की वह अव्यवस्था या शून्यता आप की वास्तविक आत्मा होती, तो वह सदा ज्यों की त्यों रहती। किन्तु वह बदलती है। जब आप स्वप्न-देश में आते हैं, तब बदलने की सामर्थ्य ही से सूचित होता है कि वह असली नहीं है। यह कारण शरीर वास्तविक नहीं है। आप को अश्चर्य होगा,

आप कहेंगे कि हमारा यह अद्भुत संसार उस शून्यता से कैसे निकल पड़ा। किंतु यह तथ्य है। यूरोप और अमेरिका में आप लोग दूसरे ही ढंग से इन मामलों पर विचार करते रहे हैं, आप उलटी पुलटी दशा में इन बातों को ग्रहण करते आये हैं। राम पर विश्वास कीजिये, यह वह सच्चाई है, जो प्रत्येक व्यक्ति में ज़रूर व्यापेगी, जो इस सृष्टि के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में देर या सवेर में ज़रूर प्रवेश करेगी।

यहाँ लोग पेंदी से चोटी पर अर्थात् नीचे से ऊपर चीज़ों को ले जाने के अभ्यासी हैं। वे चाहते हैं कि नदियां नीचे से ऊपर पहाड़ पर उलटी बह कर जांय, जो प्रकृति-नियम-विरुद्ध या अस्वाभाविक है। और इस लिये राम के अभी के कथन पर, कि "आपकी गहरी नींद की शून्यावस्था से आप के स्वप्न लोक का आविर्भाव होता है", आपको आश्चर्य होगा, आप चकित होंगे। किंतु ज़रा जाँच कीजिये वा विचार कीजिये, क्या यह प्रकृति का क्रम नहीं है? आपकी यह पृथ्वी कहाँ से आई? आपकी यह पृथ्वी कभी बादली दशा में या कोहरे की सी दशा में थी। यह सब सृष्टि पहले ऐसी दशा में थी, जिसका कोई आकार न था, जो दशा आपकी गहरी नींद की दशा के तुल्य धुन्धली सी थी। यह आकारहीन दशा में थी, यह ऊटपटांग दशा में थी। उस ऊटपटांग दशा से धीरे धीरे उद्भिज वर्ग की, पशु वर्ग की, और मनुष्य की उत्पत्ति हुई। वेदांत आपको बतलाता है कि, आप सम्पूर्ण प्रकृति में जो कुछ पाते हैं, जो कुछ भौतिक दृष्टि से आप सत्य पाते हैं, वही अध्यात्म दृष्टि से भी सत्य है। यदि, कहने में, यह समस्त संसार ऊटपटांग या शून्य अवस्था से उपजता है, तो आपकी स्वप्न और जाग्रत दशायें भी उसी गहरी नींद की दशा या ऊटपटांग दशा से,

अर्थात् शून्य अवस्था की दशा से हुईं। आपकी जाग्रत और स्वप्न दशायें उससे उत्पन्न हुईं। ठीक यही बात प्रत्येक मनुष्य के जीवन में पाई जाती है। मनुष्य जब बच्चा होता है तो वह शून्यता की हालत से बहुत मिलता जुलता है, मानो उस अवस्था से धीरे धीरे वह दूसरी दशाओं में आता है, जिन्हें आप उच्चतर कहते हैं, यद्यपि उच्चतर और निम्नतर सापेक्षक शब्द हैं।

समस्त विश्व में जो नियम है वही नियम हरएक मनुष्य के साधारण जीवन का भी है। सुषुप्ति-अवस्था से यह स्वप्नावस्था पैदा होती है। लोग स्वप्न-अवस्था की व्याख्या इस तरह पर करने की चेष्टा करते हैं, मानों स्वप्नावस्था जाग्रत अवस्था के सहारे है। आप को यह देखकर आश्चर्य होगा कि सिद्धांतों को वेदांत उनके यथार्थ रूप में दर्शाता है और स्पष्ट करता है कि, सब यूरोपीय तत्व-ज्ञानी अर्थात् आपके सब हेगेल (Hegels) और कैंट (Kants) स्वप्न के अद्भुत व्यापार को पूरी तरह नहीं समझ सके। आज इस विषय पर कुछ कहने का हमें समय नहीं है। किंतु यह विषय किसी अन्य व्याख्यान में या कोई पुस्तक द्वारा सिद्ध करके आपको दिखाया जायगा।

अब हम स्वप्न-अवस्था पर आते हैं। स्वप्न-लोक में हम मानों हिम-शिलाओं से निचले पहाड़ों पर आते हैं। आप अभी तक पर्वत पर सोये हुए हैं। यहाँ सूक्ष्म-शरीर अर्थात् स्वप्नदर्शी आत्मा अपने आपको एक विचित्र लोक में, अथवा काव्यमय प्रदेश में पाता है। आपका स्वप्नदर्शी आत्मा अभी एक पक्षी है, अभी एक राजा है, तुरन्त वह भिक्षु हो जाता है। अब वह एक ऐसा मनुष्य है, जो हिमालय पहाड़ पर अपनी राह भूल गया है। कुछ देर बाद वह लंदन सरीखे बड़े नगर का निवासी

बन जाता है। अभी वह इस नगर में है और फिर उस नगर में। कैसा परिवर्तनशील है! जिस तरह नदियाँ पहाड़ों पर परिवर्तनशील, सर्पगति और चञ्चल हैं; दम बदम इस ओर और उस ओर मुड़ती रहती हैं, वही दशा तुम्हारे स्वप्नदर्शी आत्मा की है। अपनी स्वप्न-अवस्था में आप सब बात में फुर्ती दिखाते हैं, ठीक उसी तरह जैसे नदियाँ पहाड़ पर फुरतीली होती हैं, जैसे नदी, नाले पर्वत पर अति तेज़, फुरतीले, खेलाड़ी और वेगवान होते हैं। इसी तरह आपका स्वप्नदर्शी आत्मा अति खेलाड़ी और जल्दबाज़ है। आप कल्पना के देश में रहते हैं। वहाँ मुर्दे जी उठते हैं, और ज़िन्दा लोगों को आप कभी कभी मुर्दा पाते हैं। अद्भुत देश है! विचित्रता और काव्य का देश है! क्या यह ठीक सूक्ष्म-शरीर वाली पहाड़ पर की नदी के समान नहीं है, जहाँ वह विचित्रता और काव्य के देश में होती है? स्वप्न के अनुभव के बाद, मानों पहाड़ से निकलते हुए आप अपनी दूसरी दशा से गुज़रते हुए मैदान में आते हैं। आप जाग पड़ते हैं। अपनी जाग्रत-अवस्था में आप स्थूल-शरीर गढ़ते हैं, ठीक वैसे जैसे कि नदी को मैदान में उतरते समय स्थूल-शरीर की ज़रूरत पड़ती है। आप समझते हैं कि, गहरी नींद की (सुषुप्ति) अवस्था कारण-शरीर कहलाती है, और आप के स्वप्न-देश का शरीर सूक्ष्म-शरीर कहलाता है, तथा आप की जाग्रत-अवस्था का शरीर स्थूल कहलाता है। आप जानते हैं कि जब नदियाँ पहाड़ों से उतर कर मैदान में पैर रखती हैं, उनका सूक्ष्म-शरीर जैसा का तैसा बना रहता है, केवल वह एक लाल या मटियारा ओढ़ना अपने ऊपर ओढ़ लेता है। आप पहाड़ से आने वाले जल को

भी जानते हैं। वह ताज़ा और स्वच्छ जल मट्टी, कीचड़ और मैदान की धूल में छिपा रहता है। नदी का सूक्ष्म-शरीर जैसा कि वह पहाड़ में देखा गया था, वहाँ (मैदान में आकर) बदला नहीं। उसने केवल नये कपड़े धारण कर लिये हैं, नई पोशाक पहन ली है। इस तरह नदी जब मैदान में उतरती और नई मटियारी पोशाक पहनती है, हम कहते हैं कि, नदी अपने स्थूल शरीर में है। जब सूक्ष्म-शरीर कारण शरीर से निकला था तब ऐसा नहीं था। तब कारण-शरीर को पिघल कर सूक्ष्म शरीर पैदा करना पड़ा था। और जब जाग्रत दशा में सूक्ष्म शरीर को पिघलना या बदलना नहीं पड़ता, उसे केवल नये कपड़े, नई पोशाक पहनना पड़ती है। वास्तव में यह घटना होती है।

आप की जाग्रत-अवस्था में सूक्ष्म-शरीर (दूसरे शब्दों में मन-बुद्धि) जो स्वप्न-देश में काम कर रहा था, ग़ायब नहीं हो जाता, वहीं बना रहता है। किन्तु ये भौतिक तत्त्व, भौतिक सिर तथा और सब भौतिक अंग, उस पर मानों पोशाक की तरह पहन लिये जाते हैं। और जब आप को सोना होता है, यह भौतिक स्थूल-शरीर केवल उतार दिया जाता है, मानों वह किसी खूंटी पर टाँग दिया गया, और सूक्ष्म शरीर इससे रहित हो गया।

जिस तरह सोते समय लोग अपने कपड़े उतार डालते हैं, उसी तरह आप इसे (स्थूल-शरीर को) उतार डालते हैं, और आप के स्वप्नों में केवल सूक्ष्म-शरीर काम करता है। अच्छा, तो सूक्ष्म शरीर क्या है? अब यह दिखाया जायगा कि वह सूक्ष्म शरीर भी भौतिक है। सूक्ष्म और स्थूल का एक दूसरे से सम्बन्ध बताया जायगा। आप जानते हैं कि जाड़े

की ऋतु में (जाड़े की ऋतु रात के समान है) नदियाँ आम तौर से अपने स्थूल शरीर को हटा देती हैं, अपने को अपने स्थूल शरीर से रहित कर लेती हैं और केवल अपना सूक्ष्म शरीर अपने साथ रखती हैं, अर्थात् शीतकाल में नदियों का डील डौल घट जाता है, वे अपना कीचड़, मट्टी और लाल, मटियारा जामा त्याग देती हैं। वे मानों नींद लेती हैं। जिस तरह नदियाँ अपना स्थूल-शरीर उतार डालती हैं और केवल सूक्ष्म शरीर ही रखती हैं, ठीक उसी तरह प्रत्येक दिन जब आप रात को सोने लगते हैं (आप का शीत काल), आप स्थूल को उतार डालते और केवल सूक्ष्म शरीर रख लेते हैं।

किन्तु जो सूर्य कारण-शरीर पर चमक रहा था, वही सूर्य समान भाव से नदी के सूक्ष्म-शरीर पर भी चमकता है, प्रत्येक मनुष्य के सूक्ष्म-शरीर पर समान भाव से चमकता है, जब वह (मनुष्य) स्वप्न-प्रदेश में होता है। और नदी के कारण तथा सूक्ष्म-शरीरों पर चमकने वाला सूर्य उसके स्थूल शरीर पर भी उसी तरह चमकता है।

शुद्ध आत्मा या वास्तविक स्वरूप, जो गहरी नींद (सुषुप्ति) की दशा के शरीर पर चमकता देखा गया था, आपके स्वप्न-प्रदेश और आपकी जाग्रत-दशा तथा मानों स्थूल-शरीर पर भी चमकता है। किन्तु भेद क्या है? भेद है सूर्य के प्रतिबिम्ब में। जब सूर्य नदी के कारण-शरीर वा हिम-शिलाओं पर चमक रहा था, तब उनमें सूर्य की छाया-मूर्ति नहीं दिखाई देती थी। हिम-शिलाओं पर सूर्य की क्रिया बड़ी प्रचण्ड थी, किन्तु प्रतिबिम्ब या छाया-मूर्ति नहीं दिखाई देती थी। परन्तु नदी के सूक्ष्म-शरीर पर चमकते ही उसका प्रतिबिम्ब पड़ने लग गया।

जब सूर्य नदी के सूक्ष्म-शरीर पर चमकने लगा, तब सूर्य की छाया-मूर्ति दिखाई देने लगी। हिम-टोपधारी चोटियों या हिम-शिलाओं पर सूर्य की छाया-मूर्ति दिखाई नहीं देती, किन्तु नदी के सूक्ष्म-शरीर में दिखाई देती है; अर्थात् पहाड़ों में वा नालों में सूर्य की छाया-मूर्ति दिखाई देती है। यह छाया-मूर्ति क्या सूचित करती है? यह सूचित करती है कि छाया-मूर्ति आपका असली स्वरूप, शुद्ध, निर्विकार और निर्विकल्प आत्मा, असली ब्रह्म या ईश्वर है। वही ईश्वर आपकी गहरी नींद की दशा में भी आप में वर्तमान है और वही ईश्वर आपके कारण-शरीर पर चमकता है। किन्तु विचार कीजिये, गहरी नींद की दशा में किसी तरह का अहंभाव उपस्थित नहीं है, आप को कोई विचार नहीं होता कि, मैं सोया हूं, मैं बढ़ता हूं, मैं भोजन पचाता हूं, मैं यह करता हूं। अर्थात् वहाँ (गहरी नींद की दशा में) किसी प्रकार का अहंभाव नहीं है। वास्तविक आत्मा वहाँ है, किन्तु वहाँ किसी प्रकार का अहङ्कार नहीं है। यह झूठा, देखने मात्र का अहङ्कार, जिसे लोग आत्मा समझते हैं, वहाँ नहीं है। स्वप्न की दशा में यह प्रकट होता है। स्वप्न-अवस्था नदी की दूसरी अवस्था अर्थात् नदी के सूक्ष्म-शरीर के समान है। उस (स्वप्न की) अवस्था में यह प्रकट होता है, और जागती दशा में भी यह प्रकट होता है। आप जानते हैं कि आपको जाग्रत-अवस्था नदी की मैदानी दशा के, अर्थात् नदी के स्थूल-शरीर के तुल्य है। उसमें सूर्य साफ़ चमक रहा है; वह हिम-शिलाओं पर भी स्वच्छता से चमक रहा था। किन्तु नदी में उसकी छाया-मूर्ति प्रतिबिम्बत होती है और गंदली नदी पर भी सूर्य की छाया-मूर्ति दिखाई पड़ती है। इसी तरह आपकी जाग्रत-अवस्था में भी सूर्य की छाया-

मूर्ति दिखाई पड़ती है। यह अहंकार—मैं यह करता हूं, मैं वह करता हूं, मैं यह हूं, मैं वह हूं और यह सब अहंभाव—यह स्वार्थी देखने मात्र आत्मा जाग्रत-अवस्था में भी अपने को प्रकट करता है। किन्तु आप जानते हैं कि आपकी स्वप्न-अवस्था के अहंकार और आपकी जाग्रत-अवस्था के अहंकार में अन्तर है। आपके स्वप्न-जगत में अहंभाव, जो आपके लिये सच्ची आत्मा या ईश्वर की छाया अथवा प्रतिबिम्ब है, ठीक उसी तरह चञ्चल, परिवर्तनशील, अस्थिर, डाँवाडोल, और धुंधला है जैसे नदी में जब, कि वह पहाड़ पर होती है, सूर्य का प्रतिबिम्ब अस्थिर, चंचल और परिवर्तनशील होता है। और आपकी जाग्रत-अवस्था में यह अहंभाव ऐसे निश्चित और स्थायी है जैसे मन्द धारा में वा मन्द नदी में, जब कि वह मैदान में बह रही है।

यहाँ पर कुछ और कहना है। लोग पूछते हैं कि स्थूल-शरीर को सूक्ष्म-शरीर का परिणाम या कार्य (बाद का असर) कहने का आपको क्या हक़ है? लोग पूछते हैं, स्वप्न-दशा को जाग्रत-दशा के ऊपर रखने का आपको क्या अधिकार है? इस पर ध्यान दीजिये। जाग्रत-अवस्था का आपका अनुभव किन पदार्थों का बना हुआ है? आपकी जाग्रत-अवस्था का अनुभव देश, काल और वस्तु पर टिका हुआ है। क्या आप किसी भी द्रव्य अर्थात् इस संसार की किसी भी वस्तु का विचार उसमें देश, काल, वस्तु भाव की कल्पना डाले बिना कर सकते हैं? कदापि नहीं, कदापि नहीं। देश, काल और वस्तु के बिना आपको किसी भी चीज़ की धारणा नहीं हो सकती। इनके बिना किसी भी वस्तु की धारणा असम्भव है। देश, काल और वस्तु आपके संसार के ताने और बाने के

समान हैं। उन पर ध्यान दीजिये, वे आपके स्वप्न-जगत में हैं और जाग्रत-अवस्था में भी हैं। आप जानते हैं, मैक्समूलर (Max Muller) ने जर्मन तत्त्ववेत्ता कैंट के "क्रीटिक आफ़ प्योर रीज़न" (Kant's Critique of Pure Reason) नामक पुस्तक के अपने अनुवाद की प्रस्तावना में कहा है कि कैंट भी उसी तत्त्वज्ञान की शिक्षा देता है जिसकी वेदांत। वे कहते हैं कि कैंट ने साफ़ दिखला दिया है कि देश, काल और वस्तु पहले ही से हैं, और हिंदुओं ने यह नहीं दिखाया है। राम तुमसे कहना चाहता है कि मैक्समूलर को हिन्दू धर्म-ग्रंथों का काफ़ी ज्ञान नहीं था। राम तुमसे कहना चाहता है कि, हिन्दुओं ने देश, काल और वस्तु को पहले ही से मौजूद अर्थात् स्वयं कर्त्ता के अन्दर मौजूद सिद्ध किया है। और उसीसे दिखलाया गया है कि आपकी जाग्रत अवस्था का अनुभव एक विचार से आपके स्वप्न-अवस्था के अनुभव का उत्तर-कार्य (after effect) है। धैर्य से सुनियेगा। आपकी गाढ़ निद्रा की अवस्था में आपको काल का कोई बोध नहीं होता, देश का कोई बोध नहीं होता, वस्तु (निमित्त) का कोई बोध नहीं होता। आप स्वप्न-अवस्था में उतरते हैं। वहाँ काल प्रकट होता है, देश की उत्पत्ति होती है, और वस्तु की भी। हिन्दू आपसे कहते हैं कि, आपके स्वप्न-जगत के देश, काल और वस्तु उसी तरह आपकी सुषुप्ति-अवस्था से निकले हैं, जिस तरह बीज से नन्हा अंकुर अपने दुर्बल और अशक्त रूप में निकलता है। और आपकी जाग्रत-अवस्था में देश, काल और वस्तु बढ़कर महान वृक्ष की दशा में आ जाते हैं। वे बली हो जाते और पक कर बड़ी ज़ोरदार नदी की दशा प्राप्त कर लेते हैं। वे अपना स्थूल रूप धारण करते हैं; ठीक जैसे जैसे कि तुम बढ़ते हो, वैसे वैसे तुम्हारे साथ देश,

काल और वस्तु के संकल्प भी बढ़ते हैं; यह समझते हुए कि अहंभावी द्रष्टा (कर्त्ता) देश, काल और वस्तु के परिणाम के सिवाय और कुछ भी नहीं है, जैसे जैसे ये वृद्धि पाते हैं, वैसे वैसे वह (अहं भाव) वृद्धि पाता है। आप के स्वप्नों में भी काल होता है; किन्तु अपने स्वप्नों के काल से, अपनी जाग्रत-दशा के काल की तुलना कीजिये। स्वप्न का काल चंचल, अनिश्चित, धुंधला, अस्पष्ट, अस्थिर और अनियत है। और जाग्रत-अवस्था का काल स्वभावतः प्रौढ़ (पक्के) रूप में है। मैं बतलाता हूं, आपके स्वप्न-अवस्था के काल से वह काल बलिष्ठ अर्थात् प्रौढ़ रूप है। आप जानते हैं, कि स्वप्न में कभी कभी मरे जी उठते और जीते मर जाते हैं। आपकी जाग्रत-दशा में ऐसा नहीं होता। इस दशा में काल निश्चित है। आपके स्वप्न-जगत में भूतकाल भविष्य हो जाता है और भविष्य भूत हो जाता है। जाग्रत-अवस्था में ऐसा नहीं। आपने सुना होगा कि हज़रत मोहम्मद को स्वप्न में आठवें आकाश पर चढ़ने में बड़ा समय लगा था। किन्तु जब वे जागे, तो उन्हें मालूम हुआ कि केवल दो पल बीते थे।

इसी तरह आपकी जाग्रत-दशा की चीज़ें आपके स्वप्न-दशा की चीज़ों से केवल जाति ही में नहीं, किन्तु गाढ़ता और अंशों (मिक़दार) में भी भिन्न हैं। आप की स्वप्नावस्था में वस्तुयें विकारवान्, चंचल, अनिश्चित और अस्थिर हैं। वे बदली जा सकती हैं, जिस तरह छोटे पौधे की बाढ़ आप जिस तरफ़ चाहें फेर सकते हैं। किन्तु जब वह बड़ा भारी वृक्ष हो जाता है, वह दूसरे रूप में ढाला, फेरा या बदला नहीं जा सकता। अपने स्वप्न-जगत् में अभी आप एक नारी देखते हैं, क्षण भर में वह घोड़ी हो जाती है। अभी आप अपने

सामने एक जीता मनुष्य पाते हैं और बिना कुछ भी समय बीते वह मुर्दा होजाता है। अभी आप अपने सामने एक पहाड़ पाते हैं और बात की बात में वह आग बन जाता है। जो चीज़ें आप अपनी स्वप्नावस्था में पाते हैं, वे गहरी नींद की दशा में मौजूद नहीं थीं। गहरी नींद की दशा अर्थात् सुषुप्ति से वे ऐसे निकल पड़ीं, जैसे हिमशिलाओं से छोटी नदियाँ वा चंचल नाले निकल पड़ते हैं। और आपकी जाग्रत-अवस्था में ये पहले ही से उपस्थित काल और देश परिपक्व होकर कठिन और दृढ़ रूप में आजाते हैं, निश्चित होजाते हैं, और अपनी एक विशेष दृढ़ता पाते हैं।

आपके स्वप्नजगत् की बुद्धिमता अर्थात् आपके स्वप्नजगत् की बुद्धि जाग्रत-अवस्था से सम्बन्ध रखती है। राम निजी अनुभव से जानता है कि, जब वह विद्यार्थी था, प्रायः उसने स्वप्न में उन महाकठिन सवालों को हल कर डाला जिन पर वह विचार करता रहा था। किन्तु जागने पर वह उन्हें न हल कर सका। ओह, तर्क-वितर्क (सवाल लगाने की क्रिया) में भूल थी। आपके स्वप्नजगत् के तर्क-वितर्क भी चंचल, विकारवान् और जाग्रत-दशा से सम्बन्ध रखने वाले हैं; जिस तरह अधिक बढ़ा हुआ वृक्ष भी चंचल, छोटे पौधे, अर्थात् परिवर्तनशील कली वा परिवर्तनशील छोटे वृक्ष के सम्बन्धी हैं।

प्रायः राम ने स्वप्न में कवितायें रचीं। किन्तु जागने पर जब उसने कविता पर दृष्टि डाली, तो वह असम्बद्ध थीं और पंक्तियां (मात्रायें) ठीक न उतरीं। उसमें शृंखला (सिलसिला) का, वा एकता का अभाव था। स्वप्न-अवस्था की युक्तिमाला जाग्रत-दशा की युक्तिमाला से इस तरह सम्बन्ध रखती है, जिस तरह नदी का सूक्ष्म-शरीर उसके स्थूल-शरीर का सम्बन्धी

है ; और आपके स्वप्न-जगत् का देश भी उसी तरह आपकी जाग्रत-दशा के देश से जुड़ा हुआ है। (जाग्रत अवस्था में) देश दृढ़, निरन्तर, बेबदल है। अब आप कहेंगे, नहीं, नहीं। यह क्या बात है कि, हम अपने स्वप्नों में उन्हीं वस्तुओं को देखते हैं जिनको हम अपनी जाग्रत-दशा में देखते हैं। हमारे स्वप्न हमारी जाग्रतदशा की केवल स्मृतियां हैं। राम कहता है, इससे क्या होता है? यही सही। बीज क्या है? बीज से सुंदर छोटा पौधा निकलता है, वह परिवर्तनशील, लोचदार है। इस परिवर्तनशील, लचकदार छोटे पौधे से बड़ा भारी, बलवान वा कठोर वृक्ष उगता या बढ़ता है। बहुत ठीक। पुनः इस दृढ़ वृक्ष से कुछ और बीज प्राप्त होते हैं; वैसे ही बीज, जैसों ने इस वृक्ष को उपजाया था। अब ये बीज पूरे वृक्ष को अपने में धारण किये हुए हैं। वृक्ष ने अपना सब सारांश और सब शक्ति उलट कर फिर बीजों में रखदी। तो क्या हमें यह तर्क करना चाहिये कि वृक्ष बीज से नहीं निकला था? क्या यह तर्क करने का हमें अधिकार है कि वृक्ष बीज से नहीं निकला? नहीं, नहीं ; ऐसी बहस करने का हमें कोई अधिकार नहीं है।

इसी तरह पर वेदान्त कहता है कि सुषुप्ति, जिसे मैं आपकी बीज-अवस्था कहता हूं, यह गहरी नींद की दशा बीज के समान है। उसीसे स्वप्न-अवस्था आती है और उसीसे जाग्रत-अवस्था वा स्थूल-शरीर मानों प्रकट होता या बढ़ता है। और आपका जाग्रत-अनुभव यदि फिर लौटाकर आप को नींद में जमाया अर्थात् घनीभूत किया जा सकता है, तो यह बिलकुल स्वाभाविक है। यदि आपका जाग्रत-अनुभव जमाया जा सकता है, या आपकी स्वप्नअवस्था में अर्थात् आपके स्वप्न-जगत् के अनुभव में लौटाया

जा सकता है, तो इससे राम के बयान का खण्डन नहीं होता। ऐसा ही सही। फिर भी उससे आप यह कहने के अधिकारी नहीं हो जाते कि आपकी जाग्रत-दशा आपके सूक्ष्म-शरीर या स्वप्न-देश से नहीं विकसित हुई थी। आप ऐसा कहने के अधिकारी नहीं हैं; ठीक उसी तरह, जिस तरह कि सारा वृक्ष बीज में जमा कर रख दिया जाने से हम यह कहने के अधिकारी नहीं हो जाते कि वृक्ष बीज से नहीं पैदा हुआ था। यदि आपको अपने स्वप्नों में साधारणतया अपनी जाग्रत-दशा की स्मृतियाँ आती हैं, तो उससे राम के इस कथन को नकारने के अधिकारी आप नहीं हो जाते कि, देश, काल, और वस्तु से ही अर्थात् स्वप्न-अवस्था के रूपान्तर या स्वप्नावस्था के अनुभव से ही जाग्रत-दशा का अनुभव विकसित होता या बढ़ता है।

वेदान्त दर्शन कहता है, स्वप्न-अवस्था या जाग्रत-अनुभव का जन्म आपकी गहरी नींद की अव्यवस्था अथवा शून्यता से हुआ था। संसार कुछ नहीं है, या संसार अविद्या का नतीजा है, हिन्दुओं के इस कथन का मतलब आपकी सुषुप्ति अवस्था है जिसमें अव्यवस्था या शून्यता विराजी होती है। आपकी गहरी नींद की दशा की एक प्रकार की शून्यता या अव्यवस्था अविद्या है, जमी हुई (घनीभूत) अविद्या है। यदि आप उसे ठीक अविद्या कहना चाहते हैं, तो गहरी नींद की दशा ठीक अविद्या है और उसी अज्ञानता या अन्धकार से यह संसार अथवा यह भेदभाव और विकार प्रकट होता है, और वह अविद्या परिवर्तनशील है। आप जानते हैं कि स्वप्नअवस्था में आप दो तरह की वस्तु पाते हैं, कर्त्ता और कर्म (subject and object)। वेदान्त के अनुसार कर्त्ता और कर्म साथ साथ आविर्भूत होते हैं। अपने स्वप्नों में आप एक ओर तो देखने वाले (द्रष्टा) होते हैं और दूसरी

और देखी जाने वाली चीज़ (दृश्य) बनते हैं। यदि स्वप्न में आप एक घोड़ा और उसका सवार देखते हैं, तो दोनों साथ ही दिखाई पड़ते हैं। यदि आप स्वप्न में पहाड़ देखते हैं, तो पहाड़ एक कर्म और आप द्रष्टा या देखने वाले अर्थात् कर्त्ता हैं। वहाँ कर्त्ता और कर्म साथ ही प्रकट हो आते हैं। वहाँ स्वप्नजगत में एक प्रकार के काल के द्वारा स्वप्न का भूत और भविष्य भी एक साथ पदार्थ का संगी हो जाता है। स्वप्न का भूत, वर्तमान और भविष्य काल, स्वप्न की अनन्तता, स्वप्न की वस्तु और स्वप्न के कर्त्ता तथा कर्म, ये सब के सब एक साथ ही प्रकट हो जाते हैं।

इसी तरह, वेदान्त कहता है, अपनी जाग्रत-दशा में भी आप देखी जाने वाली वस्तु हैं और देखने वाले भी। एक ओर तो आप मित्र और शत्रु हैं और दूसरी ओर देखने वाले हैं। एक ओर आप शत्रु हैं और दूसरी ओर आप मित्र हैं, आप सब कुछ हैं। किन्तु स्वप्न की ये सब अद्भुत घटनायें, सुषुप्ति की ये आश्चर्य घटनायें और जाग्रत-दशा के चमत्कार, ये सब के सब व्यापार विकारवान, अनित्य, चंचल, अस्थिर और अनिश्चित हैं। वास्तविक स्वरूप, जिसकी सूर्य से तुलना की गई थी, अर्थात् असली आत्मा, तीनों शरीरों पर उसी तरह चमकता है, जिस तरह सूर्य नदी के तीनों शरीरों पर चमकता है। आत्मा नित्य वा निर्विकार है। वह आत्मा या सूर्य आपकी सुषुप्ति-दशा को हिमशिला पर चमकता है। आपकी आत्मा या सूर्य से आपका जाग्रत-अनुभव प्रकाशित होता है। और आप यह भी देखते हैं कि, सूर्य केवल एक नदी के तीनों शरीरों पर ही नहीं चमकता है, किन्तु वही सूर्य ठीक उसी तरह संसार की सब नदियों के तीनों शरीरों पर प्रकाश डालता है। इसी तरह, इस नदी का शरीर यदि उस नदी के शरीर से भिन्न है तो क्या हुआ?

यदि इस जीवन की नदी उस जीवन की नदी से दूसरी तरह पर बहती है, तो क्या हुआ ? किन्तु जीवन की इन सब नदियों पर, अस्तित्त्व की इन सब धाराओं पर वही नित्य, निर्विकार, निरन्तर आत्मा, या सूर्यों का सूर्य सब कालों में, सब अवस्थाओं में, निर्विकार, अपरिवर्तनीय चमक रहा है। वही तुम हो, वही तुम हो। वही आपका वास्तविक स्वरूप है। और आपका वास्तविक स्वरूप आपके मित्र का वास्तविक स्वरूप है, बल्कि हर एक का और सब का वास्तविक स्वरूप है। आपकी वास्तविक आत्मा केवल जाग्रत-दशा में ही आपके साथ उपस्थित नहीं है, वह समान भाव से गहरी नींद की दशा में भी वर्तमान है, वह समान भाव से सब प्रकार की अवस्थाओं और विकारों में मौजूद है।

अनुभव करो कि वास्तविक आत्मा सब चिन्ता वा सब भय से परे है, सब मुसीबतों और दुखों से दूर है। कोई आपको हानि नहीं पहुँचा सकता, कोई आपको चोट नहीं पहुँचा सकता।

Break, break, break, at the feet of thy crags, oh sea.
Break, break, break, at my feet, oh world that be
Oh suns and storms, O earthquakes, wars,
Hail, welcome, come. try all your force on me!
Ye nice torpedoes, fire! my play things, crack!
On shooting stars, my arrows, fly!
You burning fire! can you consume?
O threatening one, you flame from me;
You flaming sword, you common ball,
My energy headlong drives forth thee!
The body dissolved is cast to winds;

Well doth Infinity me enshrine !
All ears, my ears ; all eyes, my eyes ;
All hands, my hands ; all minds, my minds !
I swallowed up death, all difference I drank up
How sweet and strong a food I find !
No fear, no grief, no hankering pain ;
All, all delight, or sun or rain !
Ignorance, darkness, quaked and quivered,
trembled, shivered, vanished, for ever ;
My dazzling light did parch and scorch it.
Joy ineffable ! Hurrah ! Hurrah !

टूट, टूट जा टूट, सिंधु ! अपने कगार के चरणों पर,
टूट, टूट जा टूट, जगत ! तू आकर मेरे चरणों पर ।
ऐ सूर्यो ! ऐ प्रबल वात्य ! ऐ भूकंपो ! ऐ समर महान !
नमस्कार । स्वागत । मुझ पर अज़माओ अपनी शक्ति सुआन ।
तू सुन्दर पनडुब्बी नौका, अग्नि ! खेल की मेरी वस्तु,
दरको ! ऐ टूटते सितारो, मेरे बाणों, छूटो ! अस्तु ।
तू प्रज्वलित अग्नि ! कर सकती है क्या मुझको भस्मीभूत ?
तू मुझसे, धमकानेवाली ! होती है प्रज्वलती भूत ।
तू लपकती कृपाण तथा तू गेंद ज़रासी अति सामान्य,
मेरी शक्ति हँकाती तुझको अधाधुंध कर तेरा मान्य ।
छिन्न-भिन्न यह देह पवन में फेंक दिया जब जाता है,
अनन्तता ही तब फिर मेरा मुखयालय बन जाता है ।
हैं सब कान, कान मेरे ; सब नेत्र, नेत्र मेरे ही हैं ;
हाथ सकल हैं कर मेरे ; मन सारे, मन मेरे ही हैं ।
निगल गया मैं मृत्यु, भेद भी गया पान कर मैं सारा ;
कैसा मधुर सुपुष्ट सुभोजन पाता हूं मैं बिन मारा ।

भीत न कोई, शोक न कोई ; नहीं लालसा की पीड़ा ;
अखिल, अखिल आनन्द, सूर्य या वृष्टि करें नित ही क्रीड़ा ।
ज्ञानशून्यता, अंधकार, हैं व्याकुल औ अति हिले हुए,
काँपे, औ थर्राए, ग़ायब हुए, सदा के लिये मुए ।
मेरी इस जगमगी ज्योति ने उसे झुलस औ भून दिया,
अमिटानंद अहाहाहा ! मैं ! वाह ! वाह !! क्या ख़ूब किया !!!

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

वास्तविक आत्मा

ता० ७ जनवरी १९०३ को अमेरिका के सैन फ्रांसिस्को के गोल्डेन-गेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान।

भद्र पुरुषों और महिलाओं के रूप में सर्व शक्तिमान् जगदीश्वर

एक जर्मन कथा के अनुसार एक मनुष्य ने अपनी प्रतिच्छाया खो दी थी। यह बड़ी ही विचित्र बात है। एक मनुष्य ने अपनी छाया खो दी और उसके लिये उसे हानि उठानी पड़ी। उसके सब मित्रों ने उसे तज दिया। सम्पूर्ण सम्पत्ति ने उसे छोड़ दिया, और वह इसके कारण बड़ी विपत्ति में पड़ गया। छाया खोने के बदले जिस मनुष्य ने अपना सारांश खो दिया हो उसके लिये आप क्या विचार करेंगे? जो मनुष्य केवल अपनी छाया खो बैठा है उसके उद्धार की आशा तो हो सकती है, किन्तु जो अपना वास्तविक सारांश अर्थात् शरीर खो बैठे उसके लिये कौनसी आशा हो सकती है?

इस संसार में अधिकांश मनुष्यों की यही गति है। अधिकांश मनुष्यों ने अपनी छाया नहीं किन्तु अपना सारांश वा अपनी वास्तविकता खो दी है। अचम्भों का अचम्भा! शरीर छाया मात्र है, आपका वास्तविक स्वरूप अर्थात् वास्तविक आत्मा ही आप की वास्तविकता है। हरएक मनष्य हम से

अपनी छाया की चर्चा करेगा; हरएक पुरुष अपने शरीर के सम्बन्ध की अति तुच्छ से तुच्छ बात बतावेगा; किन्तु अपने वास्तविक स्वरूप, अर्थात् वास्तविक तत्त्व वा वास्तविक आत्मा सम्बन्धी कुछ भी अथवा किंचिन्मात्र बात बताने वाले कितने थोड़े आदमी हैं। तुम कौन हो? यदि तुमने अपनी आत्मा ही खो दी, तो सारे संसार की प्राप्ति से क्या लाभ? लोग सम्पूर्ण संसार के पाने की चेष्टा कर रहे हैं, परन्तु वे जीवात्मा से अर्थात् आत्मा से रहित हो रहे हैं। खोगया, खोगया, खोगया। क्या खो गया? घोड़ा या घोड़सवार? घोड़सवार खो गया। शरीर घोड़े के सदृश है। और आत्मा अर्थात् सच्चा स्वरूप या जीवात्मा घोड़सवार के तुल्य है। घोड़ा तो है, घोड़सवार खो गया। हरएक मनुष्य घोड़े के विषय में हम से किञ्चित् और सब कुछ कह सकता है, परन्तु सवार, घोड़सवार, घोड़े के मालिक के सम्बन्ध में हम कुछ जानना चाहते हैं। आज रात हमारा विचार यह जानने का है कि, सवार, घोड़सवार वास्तविक स्वरूप या आत्मा क्या वस्तु है। यह गम्भीर विषय है। यह वह विषय है जिसके सम्बन्ध में संसार के तत्त्ववेता अपने दिमाग़ को छानते रहे हैं, जिस पर प्रत्येक ने और सब ने भरसक (यथाशक्ति) प्रयत्न किया है। यह गहरा विषय है, और इस घण्टे भर या कुछ कम ज़्यादा समय में इस विषय पर उचित विचार आप नहीं कर सकते। फिर भी एक कथा या उदाहरण के द्वारा हम इसे यथासम्भव सरल बनाने का उद्योग करेंगे।

एक बार यह विषय १५ या १६ वर्ष के एक लड़के को समझाया गया था और थोड़े ही समय में उसने पूरी तरह से समझ लिया था। यदि वह १५ या १६ वर्ष का लड़का समझ

गया था, तो आप सब तथा आपमें से हरएक इस विषय को भली भाँति समझ लेंगे, यदि आप एकाग्र होकर सुनेंगे वा पूरा ध्यान देंगे। उस लड़के को समझाने में जिस ढङ्ग से काम लिया गया था, आज भी उसी का प्रयोग किया जायगा।

एक बार एक भारतीय राजा का पुत्र राम के पास पहाड़ पर आया, और यह प्रश्न किया, "स्वामी जी! स्वामी जी! ईश्वर क्या है?" यह जटिल प्रश्न है, बड़ा कठिन सवाल है। सकल धर्म और अध्यात्म-शास्त्र इसी एक विषय के अनुसन्धान में रत हैं, और तुम ज़रा सी देर में इसे पूरी तरह जान लेना चाहते हो। उसने कहा, "हाँ स्वामीजी! हाँ महाराज! किससे मैं यह समझने जाऊँ। मुझे यह समझा दीजिये"। लड़के से प्रश्न किया गया, "प्यारे राजकुमार! तुम जानना चाहते हो, ईश्वर क्या वस्तु है, तुम ईश्वर से परिचित होना चाहते हो; परन्तु क्या तुम यह नियम नहीं जानते कि किसी महापुरुष से जब कोई मनुष्य भेंट करने की इच्छा करता है, तो पहिले उसे अपना परिचयपत्र (कार्ड) भेजना पड़ता है, अथवा अपना नाम-धाम भेजना पड़ता है? तुम ईश्वर से मिलना चाहते हो। उचित होगा कि अपना परिचय-पत्र ईश्वर को भेजो, अपना हुलिया ईश्वर को बतलाओ। अपना परिचय-पत्र उसे दो। मैं साक्षात् ईश्वर के हाथ में उसे रख दूँगा, और ईश्वर तुम्हारे पास आ जायगा, तथा ईश्वर क्या है, तुम देख लोगे"। लड़के ने कहा, "यह बहुत ठीक है, उचित बात है। मैं कौन हूं, आप को अभी जताता हूं। उत्तर-भारत में हिमालय पर रहने वाले अमुक राजा का मैं पुत्र हूं। यह मेरा नाम है"। एक पर्चे पर उसने ये नाम-धाम लिख दिया। राम ने पर्चा ले लिया और पढ़ा। वह तुरन्त ईश्वर के हाथ में न रखा गया। परन्तु उसी राजकुमार

को लौटा दिया गया। उससे कहा गया, "अरे राजकुमार! तुम नहीं जानते कि तुम कौन हो। तुम उस निरक्षर, अज्ञानी आदमी के समान हो, जो तुम्हारे पिता अर्थात् राजा से मिलना चाहता है और अपना नाम तक नहीं लिख सकता। क्या तुम्हारा पिता अर्थात् राजा उससे मिलेगा? राजकुमार! तुम अपना नाम नहीं लिख सकते। ईश्वर तुम से कैसे मिलेगा? पहले हमें ठीक ठीक बताओ कि तुम कौन हो, और तब ईश्वर तुम्हारे पास आवेगा और खुले चित्त से तुम से भेंट करेगा"।

लड़के ने सोचा। वह इस विषय पर चिंतन करने लगा। उसने कहा, "स्वामिन! स्वामिन! अब मैं समझा, अब मैं समझा। मैं ने अपना ही नाम लिखने में भूल की थी। मैं ने केवल शरीर का पता आपको बताया, और क़ागज़ पर यह नहीं लिखा कि, मैं कौन हूं।"

पास ही राजकुमार का एक अनुचर खड़ा हुआ था। अनुचर इसे नहीं समझ सका। अब राजकुमार से कहा गया कि, वे अपना अभिप्राय अनुचर को साफ़ साफ़ बतावें, और कुमार ने उस अनुचर से यह प्रश्न किया:—"अमुकामुक महाशय! यह परिचयपत्र (कार्ड) किसका है?" उस मनुष्य ने कहा, "मेरा"। तब अनुचर के हाथ की छड़ी लेकर कुमार ने उससे पूछा, 'ओ अमुकामुक महाशय! यह छड़ी किसकी है?" मनुष्य बोला, "मेरी"। अच्छा, तुम्हारे सिर पर यह पगड़ी किसकी है? मनुष्य ने कहा, "मेरी"। कुमार ने कहा, "बहुत ठीक! यदि पगड़ी तुम्हारी है, तो तुम्हारा पगड़ी से एक सम्बन्ध है; पगड़ी तुम्हारा माल है, और तुम मालिक हो। तब तुम पगड़ी नहीं हो, पगड़ी तुम्हारी है"। उसने कहा, "बेशक, यह तो साफ़ ही है"। "अच्छा, पेंसिल तुम्हारी चीज़

है, पेंसिल तुम्हारी ही है, और तुम पेंसिल नहीं हो"। उसने कहा, "मैं पेंसिल नहीं हूं, क्योंकि पेंसिल मेरी है, वह मेरी सम्पत्ति है, मैं स्वामी हूं"। बहुत ठीक! तब कुमार ने उस अनुचर के कान हाथ से पकड़ कर उसीसे पूछा, "ये कान किसके हैं?" और अनुचर ने कहा, "मेरे"। कुमार ने कहा, "बहुत ठीक! कान तुम्हारी वस्तु हैं, कान तुम्हारे हैं, परिणाम यह हुआ कि तुम कान नहीं हो। बहुत ठीक! नाक तुम्हारी सम्पत्ति है, नाक तुम्हारी है। इस लिये तुम नाक नहीं हो। इसी तरह, (अनुचर के शरीर की ओर संकेत करते हुए) वह शरीर किस का है? अनुचर ने कहा, "शरीर मेरा है, यह शरीर मेरा है"। अनुचर जी। यदि देह तुम्हारी है, तो तुम देह नहीं हो; तुम देह नहीं हो सकते, क्योंकि तुम कहते हो, कि देह मेरी है। तुम देह नहीं हो सकते। मेरा शरीर, मेरे कान, मेरा सिर, मेरा हाथ, यही बयान सिद्ध करता है कि तुम कोई दूसरी वस्तु हो; और हाथ, कान, नेत्र इत्यादि के सहित शरीर कोई दूसरी ही वस्तु है। यह तुम्हारा माल है, तुम मालिक हो, तुम स्वामी हो; शरीर तुम्हारी पोशाक के तुल्य है, और तुम मालिक हो। शरीर तुम्हारे घोड़े के समान है और तुम इसके सवार हो। फिर तुम क्या हो? अनुचर इतनी दूर तक तो समझ गया और कुमार के इस कथन से सहमत हुआ कि अपना पता बताने के अभिप्राय से जब उन्होंने (कुमारने) क़ाग़ज़ पर अपने शरीर का पता लिख दिया था, तब वे ग़लती पर थे। तुम न शरीर हो, न कान हो, न नाक हो, न नेत्र हो, यह सब कुछ भी नहीं हो। तब फिर तुम क्या हो? अब कुमार विचारने लगा और बोला—"ठीक, ठीक, मैं मन हूं, मैं मन

हूं, मैं अवश्य मन हूं"। अब उस कुमार से पूछा गया, "क्या वास्तव में ऐसा ही है?"

अब, क्या तुम मुझे बता सकते हो कि तुम्हारे शरीर में कितनी हड्डियाँ हैं? क्या बता सकते हो कि आज सबेरे तुमने जो भोजन किया था वह तुम्हारे शरीर में कहाँ पर रक्खा है? कुमार कोई उत्तर नहीं देसका और उसके मुँह से ये शब्द निकल पड़े, "जी, मेरी बुद्धि वहाँ तक नहीं पहुंचती। मैं ने यह नहीं पढ़ा है। मैं ने शारीरक या प्राणिविद्या अभी तक नहीं पढ़ी है। मेरी बुद्धि इसे नहीं समझ सकती, मेरे मस्तिष्क में यह नहीं समाता, मेरा मन इसकी धारणा नहीं कर सकता"।

अब कुमार से पूछा गया, "प्यारे कुमार! ऐ प्रिय बालक! तुम कहते हो, मेरा मन इसे नहीं धारण कर सकता, मेरी बुद्धि वहाँ तक नहीं पहुंचती, मेरा मस्तिष्क इसे नहीं समझ सकता। ये बाते कह कर तुम स्वीकार करते वा क़बूलते हो कि मस्तिष्क तुम्हारा है, मन तुम्हारा है, बुद्धि तुम्हारी है। अच्छा, यदि बुद्धि तुम्हारी है तो तुम बुद्धि नहीं हो। यदि मन तुम्हारा है तो तुम मन नहीं हो। यदि दिमाग़ तुम्हारा है तो तुम दिमाग़ नहीं हो। तुम्हारे इन्हीं शब्दों से प्रगट होता है कि तुम बुद्धि के प्रभु हो, दिमाग़ के मालिक हो, और मन के शासक हो। जब तुम मन, बुद्धि या दिमाग़ नहीं हो। तो तुम क्या हो? कृपा करके विचारो, खूब विचारो, और सावधानी से हमें ठीक ठीक बताओ कि तुम क्या हो। तब ईश्वर ठीक तुम्हारे पास लाया जायगा, तुम ईश्वर को देखोगे, तुम सीधे ईश्वर के सामने पहुँचा दिये जाओगे। दया करके हमें बताओ कि तुम कौन हो"।

लड़का सोचने लगा, विचारने लगा, पुनः पुनः विचारने लगा, परन्तु और आगे न जासका। उसने कहा, "मेरा मन, मेरी बुद्धि और आगे नहीं जा सकते"।

ओ! ये शब्द कैसे सच्चे हैं। सचमुच मन या बुद्धि अन्तरस्थ सच्चे ईश्वर या देव तक नहीं पहुँच सकती। सच्ची आत्मा, सच्चा ईश्वर शब्दों और मन की पहुँच से परे है।

लड़के से कहा गया कि अब तक तुम्हारी बुद्धि जहाँ तक पहुँची है कुछ देर बैठ कर उस पर विचार करो। "मैं शरीर नहीं हूं। मैं मन नहीं हूं।" यदि ऐसा है तो इसे भान (महसूस) करो, इसे अमल में लाओ; बोध की भाषा में, कार्य की भाषा में इसकी आवृत्तियाँ करो; अनुभव करो कि तुम शरीर नहीं हो। यदि इस विचार के अनुकूल अपना जीवन बना दो, यदि सत्य के इतने ही अंश को व्यवहार में तुम ले आओ, यदि तुम शरीर और मन से ऊपर उठ जाओ, तो सब चिन्ता और भय से तुम छूट जाते हो। शरीर और मन की कोटि से अपने को ऊँचा करते ही तुम्हें भय छोड़ देता है। समस्त चिन्ता दूर हो जाती है, सब रंज भाग जाता है, जब तुम सत्य के इतने ही अंश का अनुभव करते हो कि तुम शरीर और मन से परे कोई अन्य वस्तु हो।

इसके बाद बालक को यह जानने में कुछ सहायता दी गई कि वह स्वयम् क्या है, और उससे पूछा गया, "भाई राजकुमार! आज तुमने क्या किया है? क्या कृपा पूर्वक हमें बताओगे कि आज सबेरे आपने कौन कौन से काम किये हैं?"

वह वर्णन करने लगा, "मैं प्रातःकाल जागा, स्नान किया, और अमुक अमुक काम किया, भोजन किया, बहुत कुछ पढ़ा, कुछ चिट्ठियाँ लिखीं, कुछ मित्रों से मिलने गया, कुछ मित्रों

से अपने घर पर भेंट की, और यहाँ आप (स्वामी जी) के दर्शन करने आया"।

अब कुमार से प्रश्न किया गया, "बस, यही ? क्या तुम ने और बहुत कुछ काम नहीं किया ? केवल इतना ही ? ज़रा सोचो"। उसने बार बार विचार किया और फिर इसी तरह के कुछ और काम बताये। राम ने कहा "इतना ही सब कुछ नहीं है। तुमने सैकड़ों, हज़ारों, बल्कि लाखों और काम किये हैं। अगणित काम तुमने किये हैं, और उन्हें बताना तुम अस्वीकार करते हो। यह उचित नहीं है। तुमने जो कुछ किया हो कृपया हमें बता दो। आज सबेरे तुमने जो कुछ किया हो हमें सब बता दो"।

ऐसी अद्भुत बात सुन कर कि, बताये हुए कामों के सिवाय और भी हज़ारों काम मैंने किये हैं, कुमार चकित हुआ। "महाराज! मैंने आप से जो कुछ बताया है उसके सिवाय कुछ नहीं किया, वास्तव में कुछ नहीं किया"। नहीं, तुमने करोड़ों, अरबों, संखों बातें और की हैं। सो कैसे ?

लड़के से पूछा गया, "स्वामी जी की ओर इस समय कौन देख रहा है ?" उसने कहा, "मैं"। क्या तुम यह चेहरा, यह नदी गङ्गा, जो हम लोगों के निकट बह रही है, देख रहे हो ? उसने कहा, "हाँ, बेशक"। अच्छा, तुम नदी देखते और स्वामीजी का मुखमण्डल देखते हो, किन्तु नेत्रों की छे नसों को कौन चला रहा है ? तुम जानते हो कि, जब हम देखते हैं, तो आँखों की छे नसें डोलती हैं ? यह किसी दूसरे का काम नहीं हो सकता, यह कोई अतिरिक्त वस्तु नहीं हो सकती। देखने के कार्य में अवश्य आप का ही अपना आप होगा जो आँखों की नसों को डोलाता है।

लड़के ने कहा, "ओह, अवश्य यह मेरा ही काम हो सकता है, कोई दूसरी वस्तु नहीं हो सकती"।

अच्छा, इस समय देख कौन रहा है, इस भाषण को सुन कौन रहा है? लड़के ने कहा, "मैं, मैं"। अच्छा, यदि तुम देख रहे हो, यदि तुम यह उपदेश सुन रहे हो, तो वक्तृत्व शक्ति वाली नसों को फड़का कौन रहा है? तुम्हीं, तुम्हीं होगे। दूसरा कोई नहीं। आज सबेरे भोजन किस ने किया था? लड़के ने कहा, "मैंने, मैंने"। अच्छा, यदि तुमने आज सबेरे भोजन किया था, और तुम्हीं कल टट्टी जाकर उसे निकाल दोगे, तो भोजन को पचाता और एकरस करता कौन है? वह कौन है, कृपया बताइये, हमें बताइये? यदि तुमने भोजन खाया था और निकाल दिया था, तो उसे पचाने और एकरस करने वाले भी तुम्हीं हो सकते हो, दूसरा कोई नहीं हो सकता। वे दिन गये जब किसी प्राकृतिक चमत्कार की व्याख्या के लिये बाहरी कारणों की खोज की जाती थी। यदि कोई मनुष्य गिर जाता था, उसके गिरने का कारण कोई बाहरी प्रेत बताया जाता था। शङ्का के ऐसे समाधानों को विज्ञान-शास्त्र नहीं मानता। विज्ञान और तत्त्व-शास्त्र आप से कहते हैं कि घटना का कारण स्वयम् घटना में ही ढूँढ़ो।

तुम भोजन करते हो, टट्टी जाते हो और उसे निकाल बाहर करते हो। जब वह पचता है, तब अवश्य तुम्ही उसके पचाने वाले होते हो, कोई बाहरी शक्ति आकर उसे नहीं पचाती, वह तुम्हारा अपना आप ही होना चाहिये। पाचन का कारण भी तुम्हारे ही भीतर खोजना होगा, न कि तुम से बाहर।

अच्छा, लड़के ने यहाँ तक स्वीकार किया। अब उससे प्रश्न हुआ, "प्यारे कुमार! ज़रा सोचो, थोड़ी देर के लिये

विचार करो। पाचन क्रिया के अन्दर सैकड़ों गतियाँ होती हैं। पाचन क्रिया में, चबाने में, मुख में गिलटियों (glands) से राल निकलती है। दूसरे स्थान में दूसरी क्रिया गलाने (oxidation) की हो रही है। यहाँ रक्त बन रहा है यहाँ नाड़ियों में रक्त-संचरण हो रहा है। यहाँ वही भोजन शरीर के पट्ठो (muscles, स्नायु) नसों, हड्डियों और बालों में बदला जा रहा है। यहाँ शरीर में वृद्धि की क्रिया हो रही है। यहाँ बहुत सी क्रियायें हो रही हैं, और शरीर के भीतर की इन सब क्रियाओं का सम्बन्ध पाचन और परिपाक की क्रिया से है।

यदि तुम भोजन करते हो, तो साँस लेने का कारण भी तुम्ही हो; तुम्ही अपनी नाड़ियों में रक्त के सञ्चारक हो; तुम्ही बाल उगाते हो; तुम्ही शरीर की वृद्धि करते हो। और अब ध्यान दो कि, कितने कार्य, कितनी क्रियायें तुम हर क्षण करते रहते हो।

लड़का बारंबार सोचने लगा और बोला, "वस्तुतः, महाराज जी! मेरे शरीर में, अर्थात् इस शरीर में हज़ारों क्रियायें हो रही है, जिनको बुद्धि नहीं जानती, मन जिनसे बेख़बर है, और फिर भी वे हो रही हैं। और इन सब का कारण अवश्य मैं ही हो सकता हूं। इन सब का कर्त्ता मैं ही हूं, और निस्सन्देह मेरा यह कहना ग़लत था कि मैंने कुछ काम किये हैं इससे अतिरिक्त और नहीं किये, अर्थात् वही कुछ काम किये, जो मेरी बुद्धि के द्वारा हुए थे।

इसे और भी साफ़ कर देना चाहिये। तुम्हारे इस शरीर में दो प्रकार के काम हो रहे हैं, दो तरह के कार्य होरहे हैं; एक अपनी इच्छा से, और दूसरे अनिच्छा से। अपनी इच्छा से किये हुए काम वे हैं जो बुद्धि और मन के द्वारा होते हैं। उदाहरण के लियेः—लिखना, पढ़ना, चलना, बात चीत करना,

और पीना; ये कार्य बुद्धि और मन के द्वारा किये जाते हैं। इसके सिवाय हज़ारों क्रियायें और कार्य ऐसे कह सकते हैं कि जो सीधे सीधे किये जा रहे हैं और जिनमें मन या बुद्धि की आढ़त (agency) या माध्यम (medium) की आवश्यकता नहीं। उदाहरण के लियेः—सांस लेना, नाड़ियों में रक्त का सञ्चारण, बालों का बढ़ना, इत्यादि।

लोग यह भूल बल्कि बड़ी भूल करते हैं कि, केवल उन्हीं कामों को अपने किये हुए मानते हैं, जो मन या बुद्धि की आढ़त द्वारा होते हैं। अन्य सब करतूतें और कार्य, जो बुद्धि या मन की आढ़त के बिना सीधे सीधे हो रहे हैं, उन्हें वे बिलकुल अस्वीकार कर देते हैं। उन्हें वे पूरी तरह से परे हटा देते हैं। उनकी वे नितान्त परवाह नहीं करते। और इस भूल तथा लापरवाही से अपने शुद्ध स्वरूप को इस तरह छोटे से मन में क़ैद करने अथवा अनन्त को छोटा से दिमाग़ के साथ अभेद करने से लोग अपने को दुखिया अभागा बना रहे हैं। वे कहते हैं, "ओह, ईश्वर हमारे भीतर है।" बहुत अच्छा, स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है, ईश्वर तुम्हारे भीतर है, किन्तु वह सार पदार्थ (kernel), जो तुम्हारे भीतर है, वह सार पदार्थ (गूदा) तुम स्वयं हो, न कि ऊपर का खोल (छिलका)। दया करके इस पर गम्भीरता से विचार कीजिये। विचारो कि तुम गूदा हो या छिलका? क्या तुम वह हो, जो भीतर है, या वह जो बाहरी छिलका है?

कुछ लोग कहते हैं, "अजी! मैं खाता हूं और प्रकृति पचाती है; अजी! मैं देखता हूं किन्तु प्रकृति नसों को चलाती है; अजी! मैं सुनता हूं किन्तु नसों को प्रकृति कँपाती है।" न्याय, सच्चाई और स्वाधीनता के नाम में ज़रा विचारिये तो,

कि आप वह प्रकृति हैं या केवल शरीर ? समझ रखिये, आप वह प्रकृति हैं। आप अनन्त ईश्वर हैं। यदि पूर्व-निश्चयों को हटाकर, सब पूर्व-धारणाओं को दूर कर, और अन्धे विश्वासों को त्याग कर आप इस बात पर चिंतन करें, इसका पता लगावें, इसकी परीक्षा करें, और इस की छान बीन करें, तो आप का भी वही विचार हो जायगा, जो प्रकृति के उस रूप का जिसे आप राम कहते हैं। आप देखेंगे कि, आप गूदा या सार हैं, प्रकृति हैं, अर्थात् आप संपूर्ण प्रकृति हैं।

आप में से बहुतों ने इस तर्क का अभिप्राय समझ लिया होगा। किन्तु वह लड़का, भारतीय राजकुमार इसे भलीभाँति नहीं समझा। उसने कहा, "भला यहाँ तक तो मैं समझ गया कि मैं बुद्धि से परे कोई वस्तु हूं।" इसी समय कुमार के अनुचर ने प्रश्न किया, "महाराज ! मुझे ज़रा और अच्छी तरह समझा दीजिये, मैं अभी नहीं समझा हूं।" तब उस अनुचर से पूछा गया, "हे अमुकामुक प्यारे ! जब तुम सो जाते हो, तब जीते रहते हो या मर जाते हो ?" उसने उत्तर दिया, "जीता रहता हूं, मैं मर नहीं जाता।" और बुद्धि का क्या हाल होता है ? उसने कहा, "मैं स्वप्न देखता रहता हूं, बुद्धि तब भी बनी रहती है।" जब तुम गहरी नींद या सुषुप्ति में होते हो, (आप जानते हैं कि एक दशा ऐसी होती है कि जो गहरी नींद या सुषुप्ति कहलाती है। उस दशा में स्वप्न भी नहीं दिखाई पड़ते), तब बुद्धि कहाँ रहती है, मन कहाँ होता है ?

वह सोचने लगा। "हाँ ! वह शून्यता में चली जाती है। वह वहाँ नहीं है; अर्थात् बुद्धि वहाँ नहीं है, मन वहाँ नहीं है।" किंतु तुम वहाँ हो या नहीं ? उसने कहा, "ओह, मैं अवश्य वहाँ ही हूंगा, मैं मर नहीं सकता, मैं वहीं रहता हूं।" अच्छा,

अब ध्यान दो। गहरी नींद की दशा में भी जब बुद्धि नहीं रह जाती है, जहाँ बुद्धि मानो खूँटी या बाँस पर टाँगे हुए वस्त्र की तरह हो जाती है, जहाँ बुद्धि उतार कर अरगनी पर टाँगे हुए अँगरखे के समान है; तुम तब भी वहाँ हो, तुम मर नहीं जाते। लड़के ने कहा, "बुद्धि वहाँ नहीं रहती, और मैं मर नहीं जाता, यह मेरी समझ में अच्छी तरह नहीं आता।"

फिर लड़के से पूछा गया, यह गहरी नींद लेकर जब तुम जागते हो, तब जागने के बाद क्या ऐसी बातें नहीं कहते? "आज रात को मुझे खूब नींद आई, आज मैंने स्वप्न नहीं देखे।" क्या ऐसी युक्तियाँ तुम्हारी नहीं होतीं? उसने कहा, "होती हैं"। बहुत अच्छा, यह बात बड़ी सूक्ष्म है। तुम सब को ध्यान से सुनना होगा। गहरी नींद से जागने पर जब यह बात कही जाती है कि, "मुझे ऐसी गहरी नींद आई कि मैंने स्वप्न नहीं देखे; मैंने नदियाँ, पहाड़ नहीं देखे; उस अवस्था में न कोई पिता था, न माता थी, न घर था, न कुटुम्ब; ऐसी कोई वस्तु नहीं थीं; सब वस्तुयें मुर्दा और लुप्त थीं; वहाँ कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ भी नहीं था; मैं सो गया और वहाँ कुछ नहीं था।" यह बयान उस आदमी का सा बयान है जिसने एक जगह का ऊजड़पन देखा और कहा था, "घोर रात्रि में अमुक अमुक स्थान पर एक भी मनुष्य नहीं मौजूद था"। उस मनुष्य से यह बयान लिखने को कहा गया था। उसने इसे काग़ज़ पर लिखा। हाकिम ने उससे पूछा, अच्छा, क्या यह तेरा बयान सत्य है? उसने कहा, "जी हाँ"। अच्छा, यह बयान तुम्हारा सुना सुनाया है, या अपने निजी ज्ञान के आधार पर है? क्या तुम, निज नेत्र से देखने वाले साक्षी हो? उसने कहा,

"जी हाँ! मैं निज नेत्र से देखने वाला गवाह हूं। इसका सुने सुनाये पर आधार नहीं है"। तुम इसके निज नेत्र से देखने वाले गवाह हो कि काग़ज़ पर वर्णित स्थान में वर्णित समय पर कोई भी मनुष्य उपस्थित नहीं था। उसने कहा, "हाँ"। तुम क्या हो? तुम मनुष्य हो या नहीं? उसने कहा, "हाँ, मैं एक मनुष्य हूं"। तो फिर तुम्हारे कथनानुसार यदि यह बयान सत्य है, तो हमारे अनुसार यह असत्य है। तुम वहाँ मौजूद थे और तुम भी एक मनुष्य हो, इस लिये यह बयान कि "वहाँ एक भी मनुष्य न था," अक्षरशः सत्य नहीं हो सकता, तुम वहाँ मौजूद थे। तम्हारे अनुसार यह बयान सत्य होने के लिये हमारे अनुसार इसे असत्य होना पड़ेगा, क्योंकि वहाँ कोई भी चीज़ न होने की साक्षी के लिये कोई अन्य चीज़ वहाँ अवश्य होनी चाहिये, कम से कम स्वयं तुम को उस स्थल पर होना ही चाहिये।

इसी तरह गहरी नींद लेने के बाद जब तुम जागते हो, तो यह बात कहते हो, "मैंने स्वप्न में कोई चीज़ नहीं देखी"। अच्छा, हम कह सकते हैं कि तुम तो मौजूद रहे ही होगे। वहाँ कोई पिता, माता, पति, स्त्री, घर, नदी, परिवार नहीं उपस्थित था, परन्तु तुम तो उपस्थित ही होगे। तुम जो गवाही दे रहे हो, वही तुम्हारी गवाही सिद्ध कर रही है कि तुम सोये नहीं, तुम्हें निद्रा नहीं आई। यदि तुम्हें नींद आई होती तो हम से वहाँ की शून्यता की बात कौन बताता? तुम बुद्धि से परे कोई वस्तु हो। बुद्धि सोई हुई थी, दिमाग़ एक प्रकार से आराम में था, किन्तु तुम निद्रा में नहीं थे। यदि तुम सोये होते तो रक्त-नाड़ियों में रक्त का सञ्चारण कौन करता? पेट में पाचन-क्रिया कौन जारी रखता? तुम्हारे शरीर

की बाढ़ (वृद्धि) को कौन जारी रखता, यदि तुम वास्तव में गहरी नींद की दशा को प्राप्त हुए होते ? इस प्रकार तुम ऐसी कोई वस्तु हो जो कभी नहीं सोती । बुद्धि सोती है, परन्तु तुम नहीं । मैं शरीर, बुद्धि, और मन से परे कोई वस्तु हूं ।

अब लड़के ने कहा, "जी महाराज ! महाराज जी ! मैं यहाँ तक समझ गया और जान गया कि, मैं दिव्य शक्ति हूं, मैं अनन्त शक्ति हूं, जो कभी नहीं सोती, कभी नहीं बदलती । मेरी जवानी में शरीर की दूसरी दशा थी, मेरे बचपन में मन वैसा ही नहीं था जैसा अब है, शरीर वैसा ही नहीं था जैसा अब है । मेरे बचपन में मेरी बुद्धि, शरीर और मन मेरी आज की दशा से निहायत भिन्न हालत में थे ।" डाक्टर लोग हमें बतलाते हैं कि सात वर्ष के बाद सम्पूर्ण कायव्यूह बिलकुल ही बदल जाता है । प्रत्येक क्षण शरीर बदल रहा है, प्रति पल मन बदल रहा है, और बचपन में आप के जो मानसिक विचार थे, जो मानसिक भावनायें थीं, वे अब कहाँ हैं ? बालकपन के दिनों में आप सूर्य को देवदूतों के खाने के लिये सुन्दर कचौरी समझते थे, चन्द्रमा सीसे का एक सुन्दर टुकड़ा था, तारे हीरों के समान बड़े थे । ये विचार अब कहाँ चले गये ? तुम्हारा मन, तुम्हारी बुद्धि बिलकुल ही बदल गई है, उनमें सोलह आने परिवर्तन हो गया है । किन्तु तुम अब भी कहते हो, "जब मैं बच्चा था, जब मैं लड़का था, जब मैं सत्तर वर्ष का हो जाऊँगा" । तुम अब भी ऐसी बातें कहते हो, जिनसे स्पष्ट होता है कि तुम कोई ऐसी चीज़ हो, जो बचपन में भी थी, जो बालकपन में भी थी, और जो सत्तर वर्ष की अवस्था में भी वही रहेगी । जब तुम कहते हो, "मैं सो गया, मुझे गहरी नींद आ गई, इत्यादि," जब तुम ऐसी बातें

कहते हो, तब स्पष्ट होता है कि शुद्ध "मैं" तुम में है, वास्तविक आत्मा तुम में है, जो स्वप्न देश में वैसा ही रहता है तथा जैसा कि जाग्रत दशा में, तुम्हारे भीतर ऐसी कोई वस्तु अवश्य है, जो तुम्हारी मूर्छावस्था में भी रहती है, और जो उस समय भी रहती है जब तुम नहाते हो, खाते हो और लिखते पढ़ते हो। कृपा करके ज़रा सोचिये, विचारिये, ध्यान में लाइये। क्या तुम ऐसी कोई वस्तु नहीं जो सब परिस्थितियों में एक समान रहती है, जिस की दशा निर्विकार है, जो आज, कल और सर्वदा एकरस है ? यदि ऐसी है, तो थोड़ा और विचार कीजिये, और तुरन्त तुम्हारा ईश्वर का सामना करा दिया जायगा। आप जानते हैं कि आप को वचन दिया गया था कि "अपने को जानो, ठीक पता क़ागज़ पर लिख दो, और तुरन्त ईश्वर से तुम्हारी भेंट करा दी जायगी।"

अब लड़के को अर्थात् राजकुमार को यही आशा थी, कि क्योंकि मैं अपने को जान गया हूं, मुझे पता लग गया है कि मैं कोई निर्विकार वस्तु हूं, कोई चीज़ निरन्तर हूं, कोई ऐसी वस्तु हूं जो कभी नहीं सोती, अब मुझे ईश्वर को जानना चाहिये। कुमार से कहा गया, "भाई ! देखो, यहाँ पर ये पेड़ बढ़ रहे हैं। इस पेड़ को जो शक्ति बढ़ा रही है क्या वह उस शक्ति से भिन्न है जो उस वृक्ष को बढ़ा रही है ?" उसने कहा, "नहीं, नहीं, निश्चय एक ही शक्ति है"। अच्छा जो शक्ति इन सब पेड़ों को बढ़ा रही है वह क्या उस शक्ति से भिन्न है जो पशुओं के शरीरों को बढ़ाती है ? उसने कहा, "नहीं, नहीं, भिन्न नहीं हो सकती, एक ही शक्ति है"। अब, क्या वह बल, वह शक्ति जो तारों को चला रही है, उस शक्ति से भिन्न है जो नदियों को बहा रही है ? उसने कहा, "उसमें

भिन्नता नहीं हो सकती, एक ही शक्ति होनी चाहिये"। अच्छा, जो शक्ति इन वृक्षों को बढ़ा रही है, उस शक्ति से भिन्न नहीं हो सकती जो तुम्हारे शरीर या केशों को बढ़ाती है। प्रकृति की वही सर्वव्यापी शक्ति, जो तारों को चमकाती है, तुम्हारी आँखों को चमकाती या झपकाती है; वही शक्ति, जो उस शरीर के बालों की वृद्धि वा उत्पत्ति का कारण है, जिसे तुम मेरा कहते हो, वही शक्ति प्रत्येक और सब की नाड़ियों में रक्त दौड़ाती है। सचमुच, तब तुम और क्या हो? क्या तुम वही शक्ति नहीं हो, जो तुम्हारे बालों को बढ़ाती है, जो तुम्हारे रक्त को तुम्हारी नाड़ियों में बहाती है, जो तुम्हारे भोजन को पचाती है? क्या तुम वह शक्ति नहीं हो? सचमुच तुम वही शक्ति हो, जो बुद्धि और मन के परे है। यदि ऐसा है तो तुम वही शक्ति हो, जो सम्पूर्ण विश्व की शक्ति का शासन कर रही है। वही आत्मदेव तुम हो, वही ईश्वर तुम हो, वही अज्ञेय, वही तेज, शक्ति, तत्त्व, जो जी चाहे कहलो, वही दिव्य-शक्ति वही सर्व रूप, जो सर्वत्र विद्यमान् है, वही तुम हो।

बालक चकित होकर बोला, "वास्तव में, वास्तव में मैंने ईश्वर को जानना चाहा था। मैंने सवाल किया था कि ईश्वर क्या है, और मुझे पता लग गया कि मेरा अपना आप, मेरी सच्ची आत्मा ईश्वर है। मैं क्या पूछ रहा था, मैंने क्या पूछा था, कैसा बेहूदा प्रश्न मैंने किया था। मुझे अपने ही को जानना था, मुझे जानना था कि मैं कौन हूं, और ईश्वर का पता लग गया। इस तरह ईश्वर ज्ञात हो गया।"

इस सच्चाई के अनुभव करने के मार्ग में एक यही कठिनाई है कि, लोग बच्चों का स्वांग (अभिनय) करते हैं। आप जानते हैं, बच्चे कभी कभी किसी विशेष प्रकार की थाली पर

मुग्ध हो जाते हैं, और तब तक कोई पदार्थ भोजन करना नहीं चाहते जब तक उनकी प्रिय थालियों में वह चीज़ नहीं परोसी जाती। वे यही कहेंगे, "मैं अपनी थाली में खाऊँगा, मैं अपनी रकाबी में खाऊँगा, दूसरी किसी थाली में मैं कोई वस्तु ग्रहण न करूँगा"। ऐ बच्चो ! देखो, केवल यही एक विशेष रकाबी तुम्हारी नहीं है, घर की सब तश्तरियाँ तुम्हारी ही हैं, सब सोनहली थालियाँ तुम्हारी हैं। यह एक भ्रम है। यदि इस संसार में लोग अपने को जानलें, तो वे अपने वास्तव स्वरूप को सर्वशक्तिमान ईश्वर वा अनन्त शक्ति पालें। किंतु वे तो अपनी इस विशेष थाली अर्थात् इस सिर वा दिमाग़ पर लट्टू हो गये हैं। मस्तिष्क के द्वारा जो कुछ होता है, केवल वही मेरी करनी है। मन और बुद्धि के द्वारा जो कुछ होता है वह तो मेरा है और शेष सब मैं नहीं अपना सकता; बाक़ी सब मैं अस्वीकार करता हूं। मैं केवल वही ग्रहण करता हूं, जो इस विशेष थाली में मुझे परसा जाता है। यहीं से स्वार्थ शुरू होता है। वे सब कुछ इसी थाली के द्वारा कराना चाहते हैं। और इस थाली द्वारा की हुई वस्तु को अपनी समझते हैं, और हरएक चीज़ इसी छोटी सी थाली के आस पास जमा करना चाहते हैं, जिसे वे विशेषतः अपने को बताते हैं और जिससे उन्होंने अपनी एकता मानली है। संपूर्ण स्वार्थपरता तथा समस्त चिंता और विपत्ति का यही कारण है। इस मिथ्या विचार से पीछा छुटाओ, अपने सच्चे स्वरूप को सर्वरूप अनुभव करो, इस स्वार्थमय अहंकार से ऊपर उठो, इसी क्षण तुम आनन्द पाओगे, सम्पूर्ण विश्व से तुम्हारी एकता हो जायगी। यह उसी ढंग की भूल है जैसी राजकुमार ने की थी, जब जकड़ने वाला प्रश्न कुमार से किया गया था "तुम्हारा स्थान कहाँ है?" और उसने राजधानी बताई थी, "वह मेरा स्थान है"। ऐ लड़के!

राज्य की राजधानी ही तेरा एक मात्र स्थान नहीं है। सम्पूर्ण राज्य अर्थात् समग्र देश तुम्हारा है। तुम उस प्रधान नगर में, अर्थात् राजधानी में रहते हो, किन्तु वह राजधानी ही तुम्हारा एक मात्र स्थान नहीं है, समग्र राज्य तुम्हारा है। यह सुंदर भू-भाग, ये सुहावने दृश्य, हिमालय की यह महान् रचना, ये सब तुम्हारे ही हैं, न कि केवल वह विशेष छोटा नगर।

लोगों से यही भूल होती है। यही बुद्धि या दिमाग़ तुम्हारे वास्तविक स्वरूप अर्थात् आत्मा का मुख्य नगर अथवा राजधानी कहा जा सकता है। किन्तु तुम्हें कोई अधिकार नहीं है कि केवल इसी को तुम अपना कहो और अन्य सब को पराया। मस्तिष्क रूपी यह छोटी सी राजधानी अर्थात् मन या बुद्धि की यह राजधानी मात्र ही तुम्हारी नहीं है। विशाल संसार अर्थात् सम्पूर्ण विश्व तुम्हारा है। समस्त सूर्य्य, तारे, चन्द्रमा, भूमि, ग्रह तथा आकाश-गंगा (milky ways) ये सब तुम्हारे हैं। इसका अनुभव करो। अपना जन्म-अधिकार अभी प्राप्त करो। सब चिन्ता, सब विपत्ति दूर हो जायगी।

लोग स्वाधीनता की चर्चा करते हैं। लोग मुक्ति की चर्चा करते हैं। पहले यह तो देखो कि वह है क्या, जो तुम्हें बाँधे हुए है? यदि तुम स्वाधीन होना चाहते हो, यदि तुम मुक्ति पाना चाहते हो, तो तुम्हें जानना चाहिये कि तुम्हारे बन्धन का कारण क्या है। यह ठीक कहानी के बन्दर की सी बात है। भारत में बन्दर बड़े विलक्षण ढंग से पकड़ा जाता है। एक सँकरे मुँह का बरतन ज़मीन में गाड़ दिया जाता है और उसमें कुछ मेवाज़ात और बन्दरों के रुचिकर अन्य खाद्य पदार्थ रख दिये

जाते हैं। बन्दर आते हैं। और भांड़े में अपने हाथ डालकर उनको मेवों से भर लेते हैं। इससे मुट्ठी मोटी हो जाती है और फिर निकाले नहीं निकलती। इसी से बन्दर पकड़ा जाता है, वह निकल नहीं सकता। अद्भुत रीति से अर्थात् विचित्र उपाय से बन्दर पकड़ा जाता है।

हम पूछते हैं, तुम्हें पहले कौन बाँधता है? तुमने स्वयं अपने को दासता और बन्धन के अधीन किया है। यह समग्र विस्तृत संसार है, विशाल सुंदर वन है, और सम्पूर्ण विश्व के इस महान् सुंदर वन में एक सँकरे गले का बरतन मिलता है। संकीर्ण गले का यह बरतन क्या चीज़ है? यह तुम्हारा मस्तिष्क है। यह छोटा दिमाग़ ही सँकरे मुँह का बरतन है। इसमें कुछ बादाम आदि मग़ज़ियात हैं और लोगों ने इनको पकड़ लिया है। दिमाग़ की आढ़त या इस बुद्धि के माध्यम द्वारा किया हुआ सब कुछ मनुष्य अपना मान लेता है। हरएक कहता है, "मैं मन हूं।" हरएक मनुष्य ने कार्यतः अपने को मन मान लिया है। "मैं मन हूं, मैं बुद्धि हूं"। और सँकरे मुँह के बरतनों के इन मेवों को वह मज़बूत पकड़ता है। यही तुम को ग़ुलाम बनाता है। यही तुमको चिन्ता, भय, प्रलोभनों, और सब तरह के क्लेशों का दास बनाता है। यही तुमको बाँधता है। इस संसार में सब दुःखों का कारण यही है। यदि तुम मुक्ति चाहते हो, यदि तुम स्वाधीनता चाहते हो, तो मुट्ठी खोल दो, अपने हाथ ख़ाली कर दो। सारा जंगल तुम्हारा है, तुम हरएक वृक्ष पर कूद फाँद सकते हो और जंगल की सब वस्तुएँ अर्थात् जंगल के सब फल, और अख़रोट खा सकते हो। ये सब तुम्हारे हैं। सम्पूर्ण संसार तुम्हारा है। इस स्वार्थपूर्ण अज्ञानता को छोड़ दो, और तुम स्वतंत्र हो, अपने त्राता आप ही हो।

"Making a famine where abundance lies,
(Is it fair ? No, it is not fair, it is not becoming)
Making a famine where abundance lies,
This thy foe, to thy sweet self so cruel,
Should not be so, should not do this,
Within thine own bud buriest thou content.
Thou makest waste and niggarding,
Be not niggardly, be not miserly,"

(It is niggardliness to give away all this property and confine thyself unto the few things in this little brain only.)

यदि सब से अपनी एकता का तुम अनुभव कर लो, तो तुम देखोगे कि, तुम्हारा यह मस्तिष्क अनन्त शक्तिशाली हो जायगा। यह वह बात है जो सारे संसार से तुम्हारी पूर्ण अभेदता कर देगी।

(1) "Oh, we can wait no longer,
We too take ship, O soul,
(here the word soul means intellect)
Joyous we too launch out on trackless seas
Fearless for unknown shores on waves of ecstasy to sail
Amid the wafting winds, (thou pressing me to thee, I thee to me, O soul).

(2) Carolling free, singing our song of God
Chanting our chant of pleasant exploration
With laugh and many a kiss,
(Let others deprecate, let others weep for sin, remorse, humiliation)
O soul, thou pleasest me, I thee.

जहाँ प्रचुरता है वहाँ दुर्भिक्ष डालते हो।

(क्या यह न्याय है ? नहीं, यह न्याय नहीं है, यह उचित नहीं है)।

जहाँ प्रचुरता है वहाँ दुर्भिक्ष डालते हो, यही (स्वार्थपूर्ण अज्ञान) तेरा शत्रु है, तेरे मधुर आत्मा के प्रति इतना निष्ठुर है ; ऐसा न होना चाहिये, ऐसा न करना चाहिये। अपनी ही कली के भीतर छुपकर तू संतुष्ट रहता है। तू गँवाता है, और वह भी कंजूसी से। कंजूस मत बन, लोभी मत बन। (यह सब मालमता दे देना और इस छोटी सी बुद्धि की कुछ चीज़ों से अपने को परिमित कर लेना कंजूसी है।)

(१) "ओह, अब हम नहीं ठहर सकते; ऐ बुद्धि, हम भी जहाज़ पर सवार होते हैं।

ऐ बुद्धि ! (तू अपने अङ्क में मुझको भरती हुई,और मैं अपने में तुझे भरता हुआ) निर्भीकता से अज्ञात तटों की ओर खेने का प्रचण्ड वायु के बीच, हर्षोन्माद की लहरों पर, सहर्ष हम भी पथहीन समुद्र में रवाना होते हैं।

(२) निश्चिन्तता से गायन करते हुए, ईश्वर का अपना गीत गाते हुए, सुखमय अन्वेषण की तानें अलापते हुए, तू हँसी और अनेक चुम्बनों के सहित, तू ऐ बुद्धि ! मुझ को आनन्द देती है, मैं तुझको देता हूं। (दूसरों को क्षमा-प्रार्थना करने दो, दूसरों को पाप अनुताप और अपकर्ष के लिये रोने दो)।

(3) Ah more than any priest, O soul, we too believe in God
But with the mystery of God we dare not dally.
O soul, thou pleasest me, I thee,
Sailing these seas or on the hills, or waking in the night,

(4) Thoughts, silent thoughts of Time and Space and Death, like waters flowing,
Bear me indeed as through the regions infinite,
Whose air I breathe, whose ripples hear, lave me all over,
Bathe me, O God, in thee, mounting to thee
I and my soul to range in range of thee.

(5) O thou transcendent,
Nameless, the fibre and the breath,
Light of the light, shedding forth universes, thou centre of them,
Thou mightier centre of the true, the good, the loving
Thou moral, spiritual fountain-affection's source thou reservoir,
(O pensive soul of me--O thirst unsatisfied--waitest not there?
Waitest not haply for us somewhere there the Comrade perfect?)
Thou pulse—thou motive of the stars, suns, systems,
That, circling, move in order, safe, harmonious,
Athwart the shapeless vastnesses of space,
How should I think, how breathe a single breath, how speak, if, out of myself,

(३) ऐ बुद्धि, हम भी किसी धर्माचार्य से अधिक ईश्वर में विश्वास रखते हैं, किन्तु ईश्वर के रहस्य के साथ विलास करने का हमें साहस नहीं। ऐ बुद्धि! तू मुझको आनन्द देती है, मैं तुझको।

(४) इन समुद्रों में खेते हुए, या पहाड़ों पर चलते हुए, या रात में जागते हुए, जल की तरह बहते हुए विचार अर्थात् काल देश और मृत्यु के मौन विचार, वास्तव में मानो मुझे ऐसे अनन्त प्रदेशों के बीच में ले जाते हैं, जिनकी पवन का मैं श्वास लेता हूं, जिस पवन की सनसनाहट मैं सुनता हूं, और जो पवन मेरे सारे अंगों को धो डालती है। हे भगवन्! मुझे और मेरी बुद्धि को तू अपनी श्रेणी में मिलने दे। और जब मैं आपकी ओर बढ़ूं तो मुझे तू अपने में नहाने दे या डुबकी लगाने दे।

(५) हे भगवन्! तू सर्वोच्च, बेनाम, श्वास और नाड़ी, प्रकाश का भी प्रकाश, विश्वों को रचता हुआ उनका केन्द्र है, और तू सत्य, धर्म और प्रेम का भी महान् केन्द्र है। तू सभ्यता और आध्यात्मिकता का स्रोत वा प्रेम का मूल और भण्डार है।

(ऐ मेरी चिन्ताग्रस्त बुद्धि! ऐ बे बुझी प्यास, क्या तू वहाँ नहीं राह देख रही है? क्या कहीं पर वहाँ हमारा पक्का साथी (निजात्मा) सहर्ष हम लोगों की राह तो नहीं देख रहा है?)

तू नाड़ी है अर्थात् तू विश्व, ब्रह्माण्ड की तथा उन सूर्यों, नक्षत्रों और मण्डलों की प्रेरक है, कि जो चक्कर काटते हुए आकाश के निराकार और अनन्त विस्तरों के आर पार क्रम पूर्वक, सुरक्षित और एक ताल घूमते हैं। यदि मैं अपने से बाहर हो जाऊँ तो फिर मैं कैसे विचार सकूँ, बोल सकूँ और एक श्वास तक ले सकूँ।

(6) I could not launch, to those, superior universes?
Swiftly I shrivel at the thought of God,
At Nature and its wonders, Time and Space and Death,
But that I, turning, call to thee, O soul, thou actual me,
And lo, thou gently masterest the orbs,
Thou matest Time, smilest content at Death,
And fillest, swellest full the vastnesses of Space.

(7) Greater than stars or suns
Bounding, O soul, thou journeyest forth;
What love than thine and ours could wider amplify?
What aspirations, wishes, outvie thine and ours, O soul?
What dreams of the ideal? what plans of purity, perfection, strength?
What cheerful willingness for other's sake to give up all?
For other's sake to suffer all?

(8) Reckoning ahead, O soul, when thou, the time achiev'd,
The seas all cross'd, weather'd the capes, the voyage done,
Surrounded, copest, frontest God, yieldest, the aim attain'd,
As fill'd with friendship, love complete, the Elder Brother found,
The Younger melts in fondness in his arms.

(६) मैं उन महान् विश्वों में घुस नहीं सका, ईश्वर का ध्यान होते ही, प्रकृति और उसके चमत्कारों पर, देश और काल तथा मृत्यु पर, मैं तेज़ी से सिकुड़ता हूं ; पर ऐ बुद्धि, जो कि तू वास्तविक 'मैं' है, वही 'मैं' (जब) फिर कर तुझे पुकारती है, तब देखो, तू सहज ही में ग्रहमण्डलों की मालिक बन जाती है, तू समय की संगिनी बन जाती है, संतोष से मृत्यु पर मुसक्याती है, और आकाश के अनन्त विस्तारों को ऊपर तक लबालब भर देती है।

(७) नक्षत्रों या सूर्यों से अधिक फुदकती हुई, ऐ बुद्धि ! तू आगे यात्रा करती है। मेरे और तेरे प्रेम से अधिक दूसरा कौन प्रेम विशेष विस्तार से फैल सकता है ? ऐ बुद्धि ! तेरी और मेरी से बढ़कर कौन सी आकांक्षायें व अभिलाषायें हो सकती हैं ? आदर्श के कौन से स्वप्न ; पवित्रता, सिद्धि, और शक्ति की कौन सी तदबीरें ; दूसरों के लिये प्रसन्नता पूर्वक सर्वस्व त्याग की कौन सी हर्ष पूर्वक इच्छायें, और दूसरों के लिये सब कुछ सहने की कौन सी आकांक्षायें, मेरी और तेरी से बढ़ी चढ़ी हो सकती हैं ?

(८) आगे का ख़याल करते हुए, जब तू ऐ बुद्धि ! समय पाकर, सब समुद्र पार कर लेगी, अन्तरीपों (capes) की सब दिक़्क़तें झेल जायगी, और यात्रा हो चुकेगी ; जब ऐ बुद्धि ! (चारों ओर से ईश्वर से) घिरी हुई, तू सामना करती हुई ईश्वर के सम्मुख होती अपने को अर्पण कर देगी, तब तू लक्ष्य को ऐसे प्राप्त होगी जैसे सौहार्द और प्रेम से परिपूर्ण बड़े भाई के मिल जाने पर छोटा भाई उसकी स्नेहमयी गोद में पिघल जाता है।

(9) Passage to more than India !
Are thy wings plumed indeed for such far flights ?
O soul, voyagest thou indeed on voyage like those ?
Disportest thou on waters such as those ?
Soundest below the Sanscrit and the Vedas ?
Then have thy bent unleash'd.

(10) Passage to you, your shores, ye aged fierce enigmas!
Passage to you, to mastership of you, ye strangling problems
You, strew'd with the wrecks of skeletons, that, living, never reach'd you.

(11) Sail on, march on to the real self ; get rid of all this superstition, this superstition of the body. Get rid of this hypnotism of this little body ; you have hypnotized yourself into this brain or body. Get rid of eternity, the reality, the true self ; passage to more than India.

(12) Passage to more than India !
O Secret of the earth and sky !
Of you O waters of the sea ! O winding creeks and rivers !
Of you O woods and fields ! of you strong mountains of my land !
Of you O prairies ! of you gray rocks !
O morning red ! O clouds ! O rain and snows !
O day and night, passage to you !

(९) (परम प्रिय !) भारत से भी अधिक [दूर] का मार्ग ! क्या तेरे पंख सचमुच ऐसी लम्बी उड़ानों के योग्य हैं ? ऐ बुद्धि ! ऐसी लम्बी यात्रायें भी क्या सचमुच तू करती है ? ऐसे जलों पर भी तू बिहार करती है ? क्या तू संस्कृत और वेदों के नीचे से ध्वनि उठाती है ? तो ले, अपने बन्धन का पट्टा ख़ारिज करवा ले।

(१०) तेरे लिये मार्ग है, तट तेरे हैं, ऐ पुरानी भयंकर पहेलियों ! ऐ गलाघोट्टू समस्याओं ! तुम्हे बूझने के लिए अब रास्ता साफ़ है। जीते जी जो तुमको कभी न पहुंच सके, उनके कंकालों (ढाँचों) के टुकड़ों वा ढेरों से तुम ढकी हुई हो।

(११) खेते चलो, बढ़े चलो अपने वास्तविक स्वरूप तक। इस संपूर्ण अन्ध-विश्वास को अर्थात् शरीरके इस अन्ध–विश्वास को छोड़ो। इस क्षुद्र शरीर के जादू से पिंड छुड़ाओ। तुमने अपने को इस बुद्धि या शरीर के मोह में फंसा लिया है। उससे पीछा छुटाओः खेते चलो; नित्यता, वास्तविकता अर्थात् सच्ची आत्मा की ओर बढ़े चलो। भारत से भी अधिक दूर का मार्ग लो।

(१२) ऐ भारत से भी अधिक दूर रास्ते ! ऐ भूमि और आकाश के रहस्य। ऐ समुद्र के जलों ! ऐ घूमती हुई खाड़ियों और नदियों ! ऐ बनों और खेतों ! ऐ मेरे देश के विशाल पर्वतों ! ऐ पांडु वर्ण चट्टानों ! ऐ भारी भारी भूधरों ! ऐ आरक्त प्रातःकाल ! ऐ मेघों ! ऐ वृष्टि और हिमों ! ऐ दिन और रात ! तुम्हारे रहस्य का मार्ग साफ़ है।

(13) Rise above the body, and you become all these, you get a passage unto all these. All these you realise yourself to be.

(14) O sun and moon and all you stars! Sirius and Jupiter!
Passage to you!
Passage, immediate passage! the blood burns in my veins!
Away, O soul! hoist instantly the anchor!

(15) Cut the hawsers—haul out—shake out every sail!
Have we not stood here like trees in the ground long enough?
Have we not grovel'd here long enough, eating and drinking like more brutes?
Have we not darken'd and dazed ourselves with books long enough?

(16) Sail forth—steer for the deep waters only,
Reckless O soul, exploring, I with thee, and thou with me
For we are bound where manner has not yet dared to go
And we will risk the ship, ourselves and all.

(17) O my brave soul!
O farther, farther sail!
O daring joy, but safe! are they not all the seas of God?
O farther, farther, farther sail!

(१३) शरीर से ऊपर उठो, और तुम ये सब हो जाते हो, तुम्हें इन सब के लिये रास्ता मिल जाता है। अनुभव करो कि, तुम स्वयं ये सब हो।

(१४) ऐ चन्द्र और सूर्य और समस्त नक्षत्रों! बृहस्पति और लुब्धक! तुम को पहुँचने का मार्ग, अर्थात् तुम्हें तुरंत पहुँचने का मार्ग साफ़ है। रक्त मेरी नसों में उबल रहा है। ऐ बुद्धि! तुरन्त लंगर उठाकर चल दे!

(१५) (इस शरीर रूपी जहाज़ के) रस्से काट डालो, (इसे) बाहर निकाल दो और हरएक बादबान खोल दो। भूमि पर वृक्षों की तरह क्या काफ़ी देर तक हम यहाँ नहीं खड़े रहे? केवल पशुओं के समान खाते पीते क्या हम यहाँ काफ़ी देर तक रेंगते नहीं रहे? क्या हमने देर तक अपने को पुस्तकों से चौंधिया और अन्धकार मय नही बना लिया है?

(१६) खेते चलो—केवल गहरे पानी के लिये नाव बढ़ाओ। निश्चिन्तता से ऐ बुद्धि! मैं तेरे साथ, और तू मेरे साथ अन्वेषण करते हुए बढ़ो। क्योंकि हमारा लक्ष्य वह है जहाँ जाने का किसी नाविक ने अभी तक साहस नहीं किया।

अपने को, सर्वस्व को और जहाज़ को हम जोखिम में डालेंगे।

(१७) ऐ मेरी वीर बुद्धि! ओ, आगे आगे खेओ! ऐ साहसी किन्तु सुरक्षित आनन्द! क्या वे सब समुद्र ईश्वर के नहीं हैं? ओ आगे, आगे और आगे खेओ।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

पाप ; आत्मा से उसका सम्बन्ध ।

(रविवार ता० १६ नवम्बर सन् १९०२ को दिया हुआ व्याख्यान ।)

बहनों और भाइयों !

पिछले सप्ताह में जो चार व्याख्यान दिये गये हैं उन्हीं के सिलसिले में आज का विषय है। जिन्होंने पिछले व्याख्यान सुने हैं वे इसे खूब समझ सकेंगे।

आज के व्याख्यान में राम पाप की व्याख्या न करेगा, अथवा पाप कौन लाया? कहाँ से यह आया? या संसार में यह पाप क्योंकर है? कुछ लोग दूसरों से अधिक पापी क्यों होते हैं? कुछ लोगों में दूसरों से लालच क्यों अधिक होता है? और दूसरों में लालच की अपेक्षा क्रोध क्यों अधिक होता है? इत्यादि प्रश्नों में न पड़ेगा। यदि समय मिला तो इन प्रश्नों का विचार किसी दूसरे व्याख्यान में किया जायगा।

पाप शब्द का व्यवहार उसके साधारण अर्थ में आज हम कर रहे हैं, अथवा उस अर्थ में जो अर्थ समस्त ईसाई संसार उसका ग्रहण करता है।

इस संसार में आप कुछ अति विचित्र घटना, अत्यन्त विलक्षण वा अजीब घटना देखेंगे। आप इस संसार में कुछ ऐसी बातें देखेंगे जो तत्वज्ञानियों की चतुरता को मात करती हैं; और आपको कुछ ऐसे नैतिक और धार्मिक तथ्य दिखाई पड़ेंगे जो वैज्ञानिकों को उद्विग्न करनेवाले हैं। वेदान्त के प्रकाश

में अर्थात् वेदान्त के विचारानुसार आज इनकी व्याख्या की जायगी। पाप की अद्भुत घटना भी इन्हीं विचित्र तथ्यों के अन्तर्गत है। यह कैसी बात है कि हर एक मनुष्य जानता है कि इस संसार में जिसने जन्म लिया है वह मरेगा अवश्य। प्रत्येक पेड़ जो पृथ्वी पर दिखाई देता है वह एक दिन नष्ट अवश्य होगा। प्रत्येक पशु जो पृथ्वी पर दिखाई देता है एक दिन नष्ट अवश्य होगा। प्रत्येक मनुष्य मरेगा अवश्य; हर आदमी यह जानता है। बड़े बड़े सूरमा, सिकन्दर, नेपोलियन, वाशिंगटन, वेलिंगटन आदि जो लाखों मनुष्यों की मौत के कारण हुए, सब मरे। ये सब के सब, जिनके हाथों से नर-संहार और रक्तपात बयान से बाहर हुए, मृत्यु को प्राप्त हुए। वे भी मरे, और मरों को जीवित करने वाले भी मरे। हम जानते हैं, शरीर नश्वर हैं। हर एक मनुष्य यह जानता है; परन्तु व्यवहार में कोई भी इस पर विश्वास नहीं करता। बुद्धि से तो वे इसे स्वीकार करते हैं; परन्तु व्यावहारिक विश्वास इस तथ्य में नहीं दिखलाते। यह क्या बात है? जो सत्तर वर्ष का हो चुका है, जो नब्बे वर्ष का होने वाला है, ऐसे बूढ़े से बूढ़े मनुष्य के पास जाओ और तुम देखोगे कि वह भी अपने सम्बन्धों की फैलावट जारी रखना चाहता है, वह हमेशा इस संसार में रहना चाहता है, मृत्यु को परित्याग करना चाहता है, और व्यावहारिक जीवन में अपनी मौत की बात कभी नहीं सोचता। वह अपनी सम्पत्ति बढ़ाना चाहता है, वह अपने नातेदारों और मित्रों का मण्डल बढ़ाना चाहता है, वह अपने शासन में अधिकाधिक सम्पत्ति चाहता है। वह जीते रहने की आशा करता है। व्यवहारतः मृत्यु में उसका कोई विश्वास नहीं है, और

इसके सिवाय, मृत्यु का नाम ही उसके सारे शरीर में मूड़ की चोटी से पैर के अंगूठे तक, कंपकपी पैदा कर देता है। मृत्यु के नाम से सारा शरीर थरथराने लगता है। यह क्या बात है कि मनुष्य मृत्यु के ख़्याल को नहीं सह सकता, मृत्यु के नाम को नहीं सह सकता, और साथ ही जानता है, कि मौत अवश्यम्भावी है। यह क्या बात है? यह एक नियम-विरोध है, एक प्रकार का असत्याभास वा उलट-आभास है। इसे समझाओ। मनुष्यों को मृत्यु में व्यावहारिक विश्वास क्यों नहीं होता, यद्यपि उसका बौद्धिक ज्ञान उन्हें होता है? वेदान्त इसे इस प्रकार समझता है:—"मनुष्य में असली आत्मा है, जो अमर है; वहाँ वास्तविक आत्मा है जो नित्य निर्विकार, आज, कल और सदा एकरस है। मनुष्य में कोई ऐसी वस्तु है जो मृत्यु को नहीं जानती, किसी प्रकार के परिवर्तन को नहीं जानती। मृत्यु में व्यावहारिक अविश्वास का कारण मनुष्य में इस वास्तविक आत्मा की उपस्थिति है। और यही वह वास्तविक, नित्य तथा अमर आत्मा है कि जो अपने अस्तित्व को मृत्यु में लोगों के व्यावहारिक अविश्वास द्वारा सिद्ध करता है।"

अब हम एक दूसरी विचित्र घटना पर आते हैं, अर्थात् स्वाधीन होने की अभिलाषा की घटना पर। इस संसार में प्रत्येक प्राणी स्वतंत्र होना चाहता है। कुत्ते, शेर, चीते, पक्षी, मनुष्य को भी स्वाधीनता से प्रेम है। स्वाधीनता का ख़्याल सार्वभौम है। राष्ट्र ख़ून गिराते हैं और मानव जाति के रक्त से भूमि तर करते हैं; पृथ्वी का सुन्दर मुख स्वाधीनता के नाम पर हत्याकाण्ड से, और रक्त से लोहित किया जाता है। ईसाई, हिन्दू, मुसलमान, सबने अपने सामने एक लक्ष्य रक्खा है।

क्या है ? मुक्ति, जिसका छोटा सा अर्थ आज़ादी है।

भारत में किसी मन्दिर में एक मनुष्य मिठाई बाँटता देखा गया। बड़े हर्ष और अभ्युदय के समय भारतवासी ग़रीबों को मिठाई या दूसरी चीज़ें बाँटते हैं। किसी ने आकर पूछा, इस प्रसन्नता का कारण क्या है ? मनुष्य ने कहा कि "मेरा घोड़ा खोगया"। चकित होकर उस ने कहा, "वाह ! तुम्हारा घोड़ा खोगया और तुम आनन्द मना रहे हो" ? मनुष्य ने कहा, "मेरी बात का उलटा अर्थ न समझो। घोड़ा तो मैंने खो दिया, परन्तु सवार को बचा लिया। चोरों के एक दल ने मेरा घोड़ा चोरा लिया। जिस समय घोड़ा टहलाया गया था उस समय मैं उस पर सवार न था ! यदि मैं घोड़े पर सवार होता तो शायद मैं भी चोरा जाता। धन्यवाद है कि घोड़े के साथ मैं नहीं चोरा लिया गया"। लोग जी खोल कर हंसे। वाह, कैसा सीधा आदमी है !

भाइयों और बहनों ! यह कहानी हास्यजनक जान पड़ती है परन्तु हरएक को इसे अपने पर घटा कर देखना चाहिये कि, वह इस मनुष्य से भी अधिक बेढंगा बर्ताव कर रहा है या नहीं। "उसने घोड़ा खो दिया, किन्तु अपने को बचा लिया।" परन्तु हज़ारों, नहीं लाखों मनुष्य क्या कर रहे हैं? वे घोड़े को बचाने की चेष्टा कर रहे हैं और सवार को खो रहे हैं। यह कितनी बुरी बात है। इस प्रकार जब उसने घोड़े को खो दिया और सवार को बचा लिया तो उसके लिये आनन्द मनाने का अवसर तो था। सभी जानते हैं कि, असली आत्मा, या वास्तविक स्वरूप 'अहं' अथवा जीवात्मा का सूक्ष्म-शरीर से वैसा ही सम्बन्ध है जैसा सवार या घोड़े वाले का घोड़े से। किन्तु किसी से भी जाकर उसके वास्तविक स्वरूप तथा उसके विषय

में पूछियेः—"तुम्हारा स्वरूप क्या है और वह क्या करता है तो उत्तर मिलेगा, "मैं अमुकामुक महाशय हूं। मैं फ़लां फ़लां कार्यालय में काम करता हूं"। ये सब लक्षण और उत्तर केवल स्थूल-शरीर से सम्बन्ध रखते हैं। अर्थात् ये ऐसे उत्तर हैं जो असंगत हैं। हम पूछते हैं, "तुम कौन हो, तुम क्या हो?" और उसके उत्तरों से उसकी वास्तविकता पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। यह लक्ष्य से बाहर है, प्रसंग से संगत नहीं रखता। हम उसके स्वरूप अर्थात् आत्मा के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं और वह हमें घोड़े की बात बता रहा है। हम सवार का हाल जानना चाहते हैं, और वह प्रश्न को टालकर ऐसी बातें हमें बताता है, जो बिलकुल नहीं पूछी गई थीं। क्या हम घोड़े ही को सवार नहीं समझ रहे हैं? घोड़ा खो गया है, अब गलगपाड़ा मचाना चाहिये, खोगया! खोगया!! खोगया!!! समाचार पत्रों में छपवा देना चाहिये, खोगया! खोगया!! खोगया!!! क्या खोगया? घोड़ा? नहीं, घोड़ा नहीं खोगया है। हरएक घोड़े की बात कहता है। शरीर के लक्षण, चिन्ह और हाल सब कोई कहने को तय्यार है। खोई हुई चीज़ है घोड़सवार, खोई हुई वस्तु है आत्मा अर्थात् वास्तविक स्वरूप, सार पदार्थ, जीवात्मा। महान् आश्चर्य है!

सच्चे स्वरूप, सवार अर्थात् वास्तविक आत्मा का हम कैसे पता लगावें और पावें? गत सप्ताह के व्याख्यानों में प्रायः हर दिन इसी प्रश्न के उत्तर दिये गये। आज हम एक दूसरी ही विधि से अर्थात् पाप की विचित्र घटना से इस प्रश्न का उत्तर देंगे। पाप का मूल क्या है? पाप ने इस संसार में कैसे प्रवेश किया? जो उत्तर दिया जायगा वह उल्टा समझ पड़ेगा, विलक्षण व चकित करने वाला समझ पड़ेगा। किन्तु चकित मत

होइये। देखने में यह आश्चर्यजनक उत्तर भी स्वयं आपकी बाइबिल के उपदेशों से सर्वथा संगत साबित किया जासकता है—जिस बाइबिल को यूरोपीय लोग उस तरह नहीं समझ सकते जिस तरह भारतवासी; क्योंकि ईसा एशिया का है, और यह भी दिखाया जा सकता है कि वह भारत का भी है। बाइबिल के सब रूपक और अलंकारों की हिंदू—शास्त्रों में बारम्बार आवृत्तियां हुई हैं। इस से हिन्दू वा एशिया के लोग, उस प्रकार की लेख-शैली के अभ्यासी होने के कारण, पाश्चात्य लोगों की अपेक्षा बाइबिल को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। और इस लिये अभी जो उत्तर दिया जायगा वह जिन लोगों को अपने पोषित अथवा अति प्रिय विचारों और अति पूज्य भावों के सर्वथा विपरीति और आश्चर्यजनक समझ पड़े, उन्हें धीरज धरना चाहिये, क्योंकि देखने में यह अद्भुत व्याख्या अन्त में स्वयं तुम्हारी बाइबिल के उपदेशों के विरुद्ध नहीं है। पाप की समस्या पर आने के पूर्व हम कुछ प्रारम्भिक बातों पर विचार करेंगे।

यह कैसी बात है कि, पैदा होने वाले हरएक को यद्यपि मरना पड़ेहीगा, फिर भी लोग मृत्यु का विचार कभी नहीं कर सकते? मृत्यु का विचार मात्र उनके शरीर को कंपा देता है। और उनके शिर की चोटी से लेकर पैर के अँगूठे तक थर्राहट पैदा कर देता है। हम कहते हैं, यह क्या बात है कि, भूत काल में जितने महाराजा हुए सब चल बसे, सब महात्मागण भी जो मृतकों को जीवित और उनके शरीरों को फिर उठाकर खड़ा करते थे, मृत्यु को प्राप्त हो गये। वे मुर्दों को ज़िन्दा करते थे पर उनके शरीर भी मुर्दा हो गये हैं। हम देखते हैं कि, भूत काल के सब धनाढ्य पुरुष तथा भूतकाल के सब बलिष्ठ पुरुष मर गये

हैं। और बुद्धि के विचार-विन्दु से हमें निश्चय है कि देर या सबेर में हमारे शरीर अवश्य मरेंगे। तुम चाहे सत्तर वर्ष तक जीते रहो; नहीं, नहीं, उसकी दूनी, चौगुनी अवस्था तक के हो जाओ; परन्तु मरना अवश्य पड़ेगा। मौत से तुम नहीं बच सकते। यह सर्वथा निश्चित है। परन्तु महा विस्मयकर बात तो है यह कि, ऐसा सब होते हुए भी कोई अमली रूप से अपनी मृत्यु पर विश्वास नहीं कर सकता। हर एक मृत्यु के विचार से घृणा करेगा, मृत्यु आने की चिन्ता को न सहन करेगा। हर एक अपने साथियों से अपने सम्बन्धों को फैलाता जाता है और अपने नातेदारों से नातेदारियाँ बढ़ाता रहता है, अपने कार्य क्षेत्र की वृद्धि का प्रसार करता रहता है, और इस तरह पर ज़िन्दगी बसर करता है, मानों मृत्यु उसे कभी न ग्रसेगी, अथवा उसकी मृत्यु होना असम्भव है। यह क्या बात है? इसका क्या कारण है? मौत का नाम किसी से सुनते ही मनुष्य के सारे शरीर में बुख़ार चढ़ आता है। यह क्यों? एक ओर तो मृत्यु का आना अटल है, दूसरी ओर हम उसके ख़्याल से भी भागते हैं; ठीक ऐसे भागते हैं जैसे पक्षी अपने पंखों पर पानी पड़ते ही पानी को गिरा देता है। यह क्या बात है कि हम मृत्यु पर व्यावहारिक विश्वास कदापि नहीं कर सकते? मौत का वर्णन करने वाले गान आप भले ही गावें, परन्तु व्यवहार में मौत पर विश्वास कभी नहीं कर सकते। इसका कारण क्या है? वेदान्त इसकी व्याख्या करता हुआ कहता है कि, वास्तविक कारण आपके वास्तविक आत्मा की अमरता है। आपका वास्तविक आत्मा कभी नहीं मर सकता। जिस शरीर को मरना है, जो हर क्षण मृत्यु को प्राप्त होता रहता है—मृत्यु से हमें यहाँ परिवर्तन समझना

चाहिये—जो हर क्षण बदल रहा और मर रहा है, वह आपका वास्तविक आत्मा नहीं है। आप में कोई ऐसी वस्तु है, जो कभी नहीं मर सकती। इस शरीर के साथ आत्मा का, अर्थात् आपके वास्तविक स्वरूप का, जो कभी नहीं मर सकता, संयोग है। परन्तु आप कहेंगे कि, व्यावहारिक जीवन में, अर्थात् दैनिक जीवन में हम यह विश्वास नहीं करते कि,' आत्मा कभी नहीं मरेगा, परन्तु हम यह विश्वास करते हैं कि, हमारे शरीर कभी न मरेंगे—ऐसा विश्वास करते हैं कि हमारे शरीरों को अमर रहना चाहिये। हिन्दूधर्म का वेदान्तदर्शन कहता है, यद्यपि यह सत्य है कि, आत्मा को नहीं मरना है और शरीर को मरना है : परन्तु भूल से आत्मा के गुण, अर्थात् वास्तविक स्वरूप या जीवात्मा का गौरव नाशवान् शरीर को प्रदान किया जाता है। इसके मूल में अविद्या है। यह विचार सार्वभौम है। यह सब कहीं अर्थात् सब देशों में वर्तमान है। और पशु-जगत में भी यह वर्तमान है। इस विश्वास की सर्वव्यापकता को वेदान्त के सिवाय और कोई दूसरा तत्त्व-शास्त्र नहीं समझाता। इस विश्वास की सार्वभौमिकता एक तथ्य है, और यह तथ्य समझाया जाना चाहिये। जो तत्त्व-शास्त्र प्रकृति के सब तथ्यों को नहीं समझाता, वह तत्त्वशास्त्र ही नहीं है। अधिकांश तत्त्वशास्त्रों की भाँति वेदान्त इस तथ्य को विना समझाये नहीं छोड़ देता। कारण आन्तरिक होना चाहिये। बाहरी कारणों का प्रमाण देने के दिन गये। एक आदमी गिर पड़ता है, उसके गिरने का कारण उसी के भीतर दिखाना होगा। वह कह सकता है, ज़मीन फिसलनी थी, या इसी तरह की कोई और बात। किन्तु कारण घटना में ही दिखाना होगा, उससे बाहर नहीं। और यदि स्वयं घटना में कारण की प्राप्ति

हो सकती हो, तो बाहरी कारणों में जाने का हमें कोई अधिकार नहीं है। अमरता में असली विश्वास को आप ऐसे कारण से किस प्रकार समझा सकते हैं कि जो भीतरी हो न कि बाहरी? शरीर में हम ऐसी कोई बात नहीं पाते जो हमें यह विश्वास अर्थात् अमरता का विश्वास दे सके। मन में हम ऐसी कोई वस्तु नहीं पाते, जो यह विचार देने वाली हो। मन से परे जाओ, शरीर से परे जाओ, और वेदान्त असली स्वरूप अर्थात् सच्ची आत्मा को बताता है, जिसका वर्णन किसी पिछले व्याख्यान में किया जा चुका है। वही ज्योति स्वरूप, साक्षी-आत्मा और अमर है; वह आज, कल और सदा एक रस है। 'अ-मृत्यु' में इस सार्वभौम विश्वास का कारण हमें उस (आत्मा) में मिल सकता है। और व्यावहारिक जीवन में की हुई भूल वैसी ही है, जैसी गैलीलियो (Galeleo) के समय से पूर्व समस्त मानव जाति ने की थी। जैसे पृथ्वी की गति सूर्य को (भ्रम से) प्रदान की जाती है। वैसे ही शरीर को आत्मा की दिव्य अमरता प्रदान करने में आप भी भूल करते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि अमर आत्मा और नश्वर शरीर दोनों विद्यमान हैं, और उनके साथ साथ अज्ञान अथवा अविद्या है। यह अविद्या कहां से आई? अब हम देखते हैं कि, अविद्या मनुष्य में है, आत्मदेव मनुष्य में है, तथा शरीर भी मनुष्य में है। ये सब भीतरी चीज़ें हैं, इनमें से बाहरी कोई नहीं, अर्थात् इनमें से आप के विषय से बाहर कोई नहीं है। अब इनके अर्थात् शरीर, चित्त तथा अमर आत्मा और अविद्या के कार्य से शरीर की मृत्यु पर व्यावहारिक अविश्वास की घटना का अस्तित्व दर्शाया जाता है।

पुनः, यह क्या बात है कि, इस संसार में कोई भी स्वतंत्र

नहीं हो सकता, यद्यपि हर एक अपने को स्वतंत्र समझता है, स्वतंत्रता का विचार करता है, और स्वतंत्रता की अत्यन्त इच्छा की जाती है। आप कहेंगे कि, मनुष्य स्वाधीन है। क्या तुम में अनेक अभिलाषायें, प्रलोभन, और विकार नहीं हैं? तो फिर आप अपने को स्वतंत्र कैसे कह सकते हैं? मीठे फल या स्वादिष्ट भोजन आप को ग़ुलाम बना सकते हैं। कोई भी चित्ताकर्षक रंग तुरन्त आप के मन को हर सकता है, मोहित कर सकता है, और आप को ग़ुलाम बना सकता है। लौकिक अभ्युदय का कोई भी ख़्याल आप को ग़ुलाम बना सकता है, और फिर भी आप अपने को स्वतंत्र कहते हैं। ज़रा सूक्ष्मता से जाँच कर देखिये कि, भला पूरी स्वाधीनता से आप मन माना कोई काम कर सकते हैं? क्या यह बात नहीं है कि, आप के किसी मामले में कोई गड़बड़ होते ही आप का मिज़ाज बेक़ाबू हो जाता है? आप क्रोध के ग़ुलाम हैं, वृत्तियों के ग़ुलाम हैं। यह क्या बात है कि, वास्तव में लोग पूरे स्वतंत्र नहीं हो सकते, और फिर भी वे सदा स्वाधीनता का विचार, स्वाधीनता की बात-चीत करते रहते हैं; और स्वाधीनता उन को बड़ी मधुर है, अत्यन्त वाञ्छनीय और अति प्यारी है?

भारत में रविवार स्वतंत्रता का दिन है, और स्वतंत्रता के ख़्याल द्वारा बच्चों को सप्ताह के दिनों की शिक्षा दी जाती है। हर दिन वे अपनी माताओं से पूछते हैं, आज कौन दिन है? वे उनसे बताती हैं, आज सोम, मंगल या बुध है। फिर वे अपने पोरों पर मंगल, बुध इत्यादि गिनना शुरू करते हैं। अरे! इतवार कब आवेगा?

पृथ्वीतल पर इतना ख़ून क्यों बहाया जाता है? स्वतंत्रता, स्वाधीनता के विचार के कारण। वह कौनसा विचार था

जिसकी प्रेरणा से अमेरिकनों ने उससे जिसे वे अपनी मातृभूमि कहा करते थे अपना सम्बन्ध तोड़ लिया? यह क्या था? स्वाधीनता का विचार। प्रत्येक धर्म का उद्देश्य क्या है? हमारी संस्कृत भाषा में मोक्ष शब्द है, जिसका अर्थ है मुक्ति, स्वाधीनता, स्वतंत्रता। अरी स्वाधीनता! स्वाधीनता!! स्वाधीनता!!! प्रत्येक मनुष्य इस मधुर स्वाधीनता का भूखा और प्यासा है। और फिर भी ऐसे आदमी कितने हैं जो वास्तव में स्वाधनी हैं? बहुत थोड़े।

वेदान्त कहता है, इस जगत में आप हर घड़ी कारागार में बन्द हैं—ऐसी कारागार जिस में तेहरी दिवाले हैं—काल की दीवाल, देश की दीवाल, और वस्तु की दीवाल। जब आप का प्रत्येक विचार, प्रत्येक कार्य उक्त कारणों की शृंखला से स्थिर होता है, और आप उस ज़ंजीर से बंधे हुए हैं, तो जब तक आप इस संसार में निवास कर रहे हैं, तब तक स्वाधीन आप कैसे हो सकते हैं? फिर भी स्वाधीनता हर एक और सब की प्रिय वस्तु है। क्या यह विचित्र और विरोधाभास नहीं है? क्या यह वचन-विरोध नहीं जान पड़ता है? यह समझाओ।

वेदान्त कहता है, इसका भी कारण है, और वह कारण आप के अन्दर है, आप से बाहर नहीं है। आप में स्वाधीनता का यह विचार अर्थात् यह सार्वभौम विचार हमें बताता है कि, आप में कोई चीज़ है; और आप में वह वस्तु आप का सच्चा स्वरूप वा आत्मा, अथवा वास्तविक 'अहं' है, क्योंकि यह स्वाधीनता आप 'मुझ' के लिये, 'मैं' के लिये अर्थात् वास्तविक आत्मा के लिये चाहते हैं, और किसी दूसरे के लिये नहीं। आपमें ऐसी कोई वस्तु है, जो वास्तव में स्वाधीन, असीम और अपरिच्छिन्न है। इस विचार की सार्वभौमिकता स्पष्ट भाषा में प्रचार करती

है कि मनुष्य का वास्तविक स्वरूप अर्थात् वास्तविक आत्मा कोई पूर्ण स्वतंत्र वस्तु है। परन्तु उसी तरह की भूल के कारण, जो अज्ञानी लोग पृथ्वी की गति सूर्य पर आरोपित करने और सूर्य की किरणों को पृथ्वी पर लाने में करते हैं—अविद्या के कारण गुणों का परस्पर परिवर्तन करते हैं—हम शरीर, मन, 'स्थूल-शरीर' के लिये स्वाधीनता की प्राप्ति करना चाहते हैं।

इस संसार में हम एक और अति विचित्र घटना देखते हैं। अपने परिच्छिन्न आत्मा की दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य इस संसार में पापी है। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी तरह किसी न किसी त्रुटि या कमी का ज़िम्मेदार है, और फिर भी अपने सच्चे हृदय से कोई भी अपने को पापी नहीं समझता है। इस विशाल विश्व में पृथ्वीतल पर कोई अर्थात् एक भी व्यक्ति अपनी प्रकृति पापिष्ट होने पर विश्वास नहीं करता। अपने आन्तरिक हृदय से वह अपने को शुद्ध समझता है। व्यावहारिक जीवन में कोई भी अपने को पापी नहीं समझता। ऊपर से यदि तुमने अपने को पापी पुकारा भी तो क्या हुआ। किन्तु तब भी वास्तविक लक्ष्य यही रहता है कि, लोग मुझे धर्मात्मा मनुष्य समझें। अपने को पापी कहने का असली मन्तव्य यही होता है कि लोग हमें धर्मात्मा वा पुण्यात्मा कहें; परन्तु अपने अन्तरतम हृदय में उन्हें अपनी प्रकृत्ति के पापमय होने पर कुछ भी विश्वास नहीं होता। हर एक अपने विचार से शुद्ध है। न्यायालय में ऐसा प्रश्न होने पर कि "तुमसे पाप हुआ?" घोर पापी और अपराधी कदाचित ही कभी कहते हैं "हाँ, हम से पाप हुआ"। यदि लाचार होकर उन्हें पापाचार स्वीकार करना पड़ता है, तो मामले में कोई दूसरा ही पेंच होता है। यद्यपि बाहर से वे अपने पाप-कर्म को स्वीकार करते हैं, तथापि अपने हृदयों में

वे अपनी स्वीकृति (confession) को ग़लत समझते हैं। उन्होंने कोई पाप नहीं किया। यह कैसी बात है? जो लोग देवालय में पुजारी के सामने अपने पापों को क़बूलते हैं, उन्हें भी सड़क पर यदि कोई चोर के नाम से पुकारता है, तो वे पलट पड़ते हैं और उस पर मुक़दमा चलाते हैं अर्थात् अभियोग लगाते हैं और न्यायालय से दण्ड दिलवाते हैं। केवल ईश्वर के सामने, देवालय में उन्होंने परमात्मा के नेत्रों में धूल झोंकने की चेष्टा की थी। केवल देवस्थान में उन्होंने अपने पाप स्वीकार कर के अपने को पापी कहा था।

यह अद्भुत घटना भी स्पष्ट करती है कि, इस संसार में कितनी बेहूदगी या वाक्य विरोध है। यह बेढंगापन कैसे दूर होगा? वेदान्त कहता है, "हम पापी नहीं हैं और हम पाप से बहुत परे हैं," इस विचार को निर्मूल कर सकने की हमारी असमर्थता और अपनी प्रकृतियों के निष्पाप होने में हमारे व्यावहारिक विश्वास की सर्वव्यापकता इस बात के जीते जागते प्रमाण तथा लक्षण हैं कि, वास्तविक आत्मा की प्रकृति निष्पाप है अर्थात् सच्ची आत्मा वा वास्तविक जीवात्मा स्वभाव से पापहीन, शुद्ध, और पवित्र है। हमारा वास्तविक स्वरूप, अर्थात् वास्तविक आत्मा निष्पाप, विशुद्ध और परम पुनीत है। यदि आप इस व्याख्या को नहीं मानते, तो इस स्पष्ट वाक्य—विरोध की किसी दूसरी तरह से व्याख्या कीजिये।

यह कैसी बात है कि, हरएक मनुष्य बुद्धि से जानता है कि वह संसार का सब धन नहीं सञ्चय कर सकता, यथेच्छ धनी नहीं हो सकता है? यह हम नित्य ही अपने मध्य में देखते हैं। जो लोग करोड़पती प्रसिद्ध हैं, उनसे जाकर पूछिये कि, क्या वे संतुष्ट और तृप्त हैं? यदि वे जी खोल कर आपसे

बात करेंगे तो कहेंगे कि, हम संतुष्ट नहीं हैं, तृप्त नहीं हैं। वे और अधिक, और अधिक, और अधिक धन चाहते हैं। उनके हृदय भी उतने ही स्वच्छ हैं जितने कि उनके, जिनके पास केवल चार डालर (अमेरिकन रुपया) है। मन की शांति, संतोष और विश्राम के लिये चार रुपये और चार अरब रुपये में कुछ भी अन्तर नहीं है। ये काम धन के नहीं हैं। यदि धनी होते हुए भी लोग संतुष्ट और शान्त हैं, तो शान्ति का कारण दौलत नहीं है। किन्तु उस शान्ति का कारण अवश्य ही कुछ और होगा, अवश्य ही उसका कारण अनजाने वेदान्त का व्यवहार होगा, और कुछ नहीं। उनकी शान्ति का कारण एक मात्र वही (वेदान्त का व्यवहार) हो सकता है, क्योंकि विभूति को अपने स्वामी को प्रसन्न करने की शक्ति नहीं है।

हमें अब निश्चय है कि दौलत के सञ्चय से, भौतिक सम्पत्ति से शान्ति की प्राप्ति नहीं होती, और फिर भी प्रत्येक मनुष्य अर्थ का भूखा है, अर्थ के लिये छटपटा रहा है। क्या यह विचित्र नियमविरुद्धता नहीं है? इसे समझाइये। कोई भी तत्त्वशास्त्र या धर्म इसे पूरे तर्क से या युक्तिपूर्वक नहीं समझाता। वेदान्त कहता है, यह देखो, सम्पत्ति के लिये अर्थात् सब कुछ बटोरने और सञ्चय करने के लिये हाय हाय मची हुई है। यह क्यों? शरीर समस्त संसार को अपने अधिकार में कदापि नहीं ला सकता। यदि सारा संसार भी आपके अधिकार में आजाय, तो भी आपको संतोष न होगा; आप चन्द्रलोक पर अधिकार जमाने की बात सोचने लगेंगे। सारे संसार के शासक सम्राटों का अर्थात् रोम के सम्राटों का ख़्याल कीजिये। उन नीरो जैसे सम्राटों का ध्यान कीजिये। क्या आप के रोमाञ्च नहीं होता? उन क़ैसर और नीरो जैसे सम्राटों की

मानसिक अवस्थाओं का विचार कीजिये। क्या वे सुखी थे? क्या वे संतुष्ट थे? उनमें से एक (नीरो) खाता है, वह खाने का शौक़ीन है, और हर घड़ी एक से एक स्वादिष्ट भोजन उसके लिये तैयार रहते हैं। वह एक पदार्थ जी भर के खाता है और अब उसके पेट में जगह नहीं है। उसके पास वमन करने की औषधियाँ हैं, और, उनसे वह अभी खाया हुआ पदार्थ क़ै कर देता है। अब दूसरे पदार्थ उसके पास लाये जाते हैं, और वह फिर इच्छा भरके खाता है। यह सब केवल रुचि की तृप्ति के लिये। इस तरह वह समस्त दिन खाता और वमन करता रहता है। क्या वह तृप्त हुआ? क्या उसे शान्ति मिल गई? नाम मात्र को भी नहीं। हमें इसका निश्चय है। नहीं, सम्पूर्ण संसार के अधिकारी हम नहीं बन सकते, और यदि बन भी जाँय तो भी क्या परिणाम? सम्पूर्ण संसार को प्राप्त कर यदि आपने अपनी आत्मा खो दी, तो क्या फल हुआ? ज्योतिष-विद्या-विषयक गणनाओं में स्थिर नक्षत्रों के साथ जब हम व्यवहार करते हैं, उस समय आप की यह पृथ्वी एक बिन्दु मात्र होती है। यह पृथ्वी गणितशास्त्रीय परिमाण-रहित बिन्दु मात्र समझी जाती है।

आपकी यह पृथ्वी क्या है? इस पृथ्वी पर अधिकार होने से वास्तविक तृप्ति अथवा वास्तविक शान्ति कैसे मिल सकती है? यद्यपि बुद्धि की ओर से हम यह जानते हैं, तथापि इस ऐश्वर्य के पीछे बिना झपटे हम नहीं मान सकते। वेदान्त कहता है, इसका कारण यही है कि, आपमें वास्तविक आत्मा अर्थात् आप में वास्तविक 'अहं' वस्तुतः सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी है। इसी कारण से तुम अपने को सारे संसार का मालिक देखना चाहते हो।

भारत में एक महाराजा की कथा प्रचलित है, जो अपने पुत्र द्वारा कारागार में डाल दिया गया था। उसका पुत्र सम्पूर्ण राज्य का अधिकारी बनने का अभिलाषी था, इसी लिये वह क़ैदख़ाने में बन्द किया गया था। पुत्र ने अपनी धन की भूख बुझाने के लिये पिता को जेलख़ाने डाला था। एक बार पिता ने अपने ही पुत्र को कुछ विद्यार्थी भेज देने को लिखा ताकि विद्यार्थियों को पढ़ाकर वह अपना मनोरञ्जन कर सके। इसपर पुत्र ने कहा, "इस मनुष्य अर्थात् मेरे पिता की सुनते हो! वह इतने वर्षों तक साम्राज्य का शासन करता रहा है और अब भी हुकूमत करने की अपनी पुरानी आदत उससे नहीं छोड़ी जाती। वह अब भी विद्यार्थियों पर शासन करना चाहता है, कोई न कोई उसे शासन करने के लिये चाहिये। वह अपनी पुरानी आदतें नहीं त्याग सकता।"

यही बात है। हम अपनी पुरानी आदतें कैसे त्याग सकते हैं? पुराना अभ्यास हम में चिपटा रहता है। हम उसे दूर नहीं कर सकते। आप का वास्तविक आत्मा वा सम्राट शाहजहां (इस शब्द का अर्थ है, 'सारे संसार का शासक', और इस प्रकार उस सम्राट शाहजहां के नाम का अर्थ है, सम्पूर्ण विश्व का सम्राट) विश्व अर्थात् ब्रह्माण्ड का सम्राट है। अब आपने सम्राट को एक बन्दीख़ाने में, अपने शरीर की अन्धी कोठरी में, अथवा अपने परिच्छिन्न-आत्मा की हदबन्दी में डाल रक्खा है। वह वास्तविक आत्मा, वह विश्व का सम्राट अपने पुराने अभ्यासों को भला कैसे भूल सकता है? वह अपने स्वभाव को कैसे त्याग सकता है? किसी में भी अपनी प्रकृति को दूर कर देने की शक्ति नहीं है। इसी प्रकार आत्मा अर्थात् आप का असली स्वरूप आपमें असली तत्त्व वा अपने स्वभाव को भला

कैसे छोड़ सकता है? आपने उसे कारागार में बन्द कर रक्खा है, किन्तु कारागार में रहते हुए भी वह सारे संसार पर अधिकार करना चाहता है, क्योंकि समग्र ब्रह्माण्ड उसका था। वह अपनी पुरानी आदतों को नहीं छोड़ सकता। यदि आप चाहते हैं कि, आकांक्षा का यह भाव, अथवा यह लोभ दूर होजाना चाहिये, यदि आपकी इच्छा है कि इस संसार के लोगों का लिप्सा-भाव जाता रहे, तो क्या आप उन्हें ऐसा करने का उपदेश दे सकते हैं? असम्भव।

कुछ कटु बातें कहने पर आप राम को क्षमा करेंगे, परंतु सत्य कहना ही होगा। राम सत्य का व्यक्तियों से अधिक आदर करता है। सत्य कहना ही चाहिये। बाइबिल में मैथ्यू के पाँचवें अध्याय में, पहाड़ी पर उपदेश (Sermon on the Mount) में कहा गया है, "यदि आप के एक गाल पर कोई थप्पड़ जमावे, तो दूसरा भी उसकी ओर कर दीजिये"। जब आपको पवित्र सिद्धान्तों का प्रचार करना हो तब अपने पास धन न रखिये; नंगे पैर, नंगे सिर जाना चाहिये। यदि न्याया-लय में आप बुलाये जाँय तो जाने के पहले यह न सोचिये कि, आपको क्या कहना पड़ेगा। अपना मुँह खोलिये और वह भर जायगा। उद्यान के फूलों और वन के पक्षियों को देखिये। वे दूसरे दिन का कोई विचार नहीं करते, परन्तु कोकावेलियों और गौरैय्यों को ऐसे वस्त्र पहनने को मिलते हैं कि सालोमन भी स्पर्धा करे। क्या आपकी बाइबिल में यह बयान नहीं है कि "ऊँट चाहे सुई की नोक से निकल जाय, परन्तु धनी के लिये स्वर्ग के राज्य की प्राप्ति असम्भव है।" क्या आपने बाइबिल में नहीं पढ़ा है कि, "एक धनी आदमी ने आकर ईसामसीह से दीक्षित होने की इच्छा प्रकट की" और

ईसामसीह ने कहा, "तुम्हारे लिये एक ही उपाय है, दूसरा कोई नहीं। अपनी सब दौलत तुम त्याग दो। इतना करने ही से तुम्हें शान्ति मिल सकती है" ? त्याग का यह भाव, यह अध्याय, जो कम से कम भारत में और, सारे संसार में, धर्म प्रचारकों (मिशनरियों) द्वारा बहुत पीछे रक्खा जाता है, यह अध्याय वेदान्त की और उन उपदेशों की शिक्षा देता है जिनका पालन आज भी भारतीय साधु करते हैं। उस पवित्र धर्म के नाम में, त्याग की उस शिक्षा के नाम में ज़रा उन लोगों पर ध्यान दीजिये जो भारत में आचार्य और धर्म-प्रचारकों की हैसियत से जाते हैं । राम को कृपया आप क्षमा करें। यदि आप आत्मा को शरीर में समझते हैं, तो किसी को रुष्ट न होना चाहिये। किसी को ज़रा सा भी रुष्ट होने का अधिकार नहीं है, यदि उसके तुच्छ शरीर के विरुद्ध कुछ कहा जाता है।

क्या यह विस्मय की बात नहीं है कि, त्याग के नाम पर भारतवर्ष जाने वाले लोग गाड़ियों पर नित्य आराम करें, शानदार महलों में रहें, और बारह चौदह सौ रुपये महीने तनख़्वाह लेकर राजसी ठाठ से रहते हुए कहें कि, हम त्याग के धर्म का प्रचार और उपदेश करते हैं ? क्या यह विचित्रता नहीं है ? वेदान्त कहता है कि, मञ्च पर से किसी प्रकार की शिक्षा या प्रचार के द्वारा आप धन संचय और प्रत्येक वस्तु के अधिकारी बनने के विचार का दमन नहीं कर सकते। तुम इसका दमन नहीं कर सकते, क्योंकि अपने वास्तविक आत्मा का सार्वभौम प्रभुत्व अथवा विश्वव्यापी एक राजाधिपत्य तुम नाश नहीं कर सकते। किन्तु क्या यह रोग असाध्य है ? क्या इस रोग की कोई औषधि वा कोई प्रतिकार नहीं है ? है, है।

इस घोर पाप का कारण अज्ञान है, जिस अज्ञान के कारण आप आत्मा का गौरव शरीर पर आरोपित करते हैं, और दूसरी ओर शरीर के क्लेश को आत्मा पर आरोपित करते हैं। इस अज्ञान को दूर करो और निर्धन होता हुआ भी मनुष्य तुम्हें समृद्धिशाली दिखाई पड़ेगा, और सम्पत्ति या भूमि से हीन होता हुआ भी मनुष्य तुम्हें सम्पूर्ण संसार का महाराजा दिखाई पड़ेगा। जब तक अविद्या वर्तमान है तब तक आप में लोभ और आकांक्षा रहे ही गी। इसका कोई उपाय नहीं है, कोई इलाज नहीं है। इस ज्ञान को प्राप्त करो, इस दैवी-बुद्धिमत्ता को प्राप्त करो, और आत्मा को बन्धनमुक्त करो, उसे क़ैदख़ाने से तुरन्त निकालो। उसे स्वाधीन करो। इसका आशय यह है कि, अपना सच्चा, नित्य, अनन्त आत्मा का (जो ईश्वर है, स्वामी है, विश्व का शासक है) अनुभव करो। ऐसा अनुभव करो, और तुम पवित्रों के पवित्र अर्थात् महापवित्र हो जाते हो, और लौकिक वसुधा या सांसारिक ऐश्वर्य के विचार को स्थान देना भी आप को पाप-कर्म तथा अपमानजनक समझ पड़ेगा।

संसार के उन सब देशों को जीतने के बाद, जो उसे ज्ञात थे, जब सिकन्दर भारत में आया तो उसने विलक्षण भारत-वासियों को, जिनकी चर्चा उसने बहुत सुनी थी, देखने की इच्छा प्रकट की। सिंधु नदी के तटपर किसी साधु या आचार्य के पास लोग उसे ले गये। साधु बालू पर नंगे-सिर, नंगे-पैर, नंगे-बदन पड़ा हुआ था, और यह भी पता नहीं कि कल भोजन उसे कहां से मिलेगा। इस दशा में पड़ा हुआ वह घास खा रहा था। महान (आज़म) सिकन्दर उसके निकट अपने पूरे गौरव से युक्त खड़ा हो गया है, ईरान से उसने

जो ज्वाज्वल्यमान रत्न और हीरे पाये थे उनसे जटित उसका मुकुट चमचमा रहा है, प्रकाश फैला रहा है। और उसीके निकट विना वस्त्र के वह साधु था। कितना अन्तर है, कितना भेद है! एक ओर तो सारे संसार के वैभव का प्रतिनिध-स्वरूप सिकन्दर का शरीर, और दूसरी ओर सारी ग़रीबी का प्रतिनिधि स्वरूप महात्मा है। किन्तु उनकी वास्तविक आत्माओं की ग़रीबी या अमीरी के यथार्थ ज्ञान के लिये केवल उनके मुखमण्डलों की ओर आपके देखने की ज़रूरत है।

भाइयों और बहनों! अपने घावों को छिपाने के हेतु तुम ऐश्वर्य के लिये हाय हाय करते हो, उन (घावों) को ढकने के लिये तुम पट्टी बांधते हो। इस एक साधु को देखिये, जिसकी आत्मा धनाढ्य थी; इसी साधु को देखिये, जिसे अपनी आत्मा की अमीरी और गौरव का अनुभव हो गया था। उसके पास महान सिकन्दर खड़ा है, जो अपनी आन्तरिक दीनता को छिपाना चाहता है। महात्मा के प्रभापूर्ण, प्रसन्न, आनन्दमय चेहरे की ओर देखिये। महान सिकन्दर उसकी सूरत से चकित हो गया। वह उस पर आसक्त हो गया और उसने महात्मा से यूनान चलने को कहा। साधु हँसा, और उसने उत्तर दिया, "संसार मुझ में है, मैं संसार में नहीं आ सकता। विश्व मुझ में है, मैं विश्व में बद्ध नहीं हो सकता। यूनान और रूम मुझ में हैं। सूर्य और नक्षत्र मुझ में उदय और अस्त होते हैं।"

महान सिकन्दर इस प्रकार की भाषा का अभ्यासी न होने के कारण विस्मित हुआ। उसने कहा, "मैं तुम्हें धन दूँगा। सांसारिक सुखों से मैं तुम्हें डुबा दूँगा। सब तरह के पदार्थ, जिनकी लोग इच्छा करते हैं, सब तरह के पदार्थ, जो लोगों को

मोहते और अपना दास बनाते हैं, बहुलता से तुम्हें प्राप्त होंगे। कृपया मेरे साथ यूनान चलिये।"

महात्मा उसके उत्तर पर ख़ूब हँसा और बोला, "ऐसा कोई हीरा या सूर्य या तारा नहीं है, जिसके प्रकाश का कारण मैं नहीं हूं। सम्पूर्ण नक्षत्रों के गौरव का कारण मैं हूं। समस्त इच्छित वस्तुओं की मोहनी वा चित्ताकर्षक शक्ति मुझसे है। पहले तो इन पदार्थों को गौरव और मनोहरता मैंने प्रदान की, और अब इन्हें ढूँढ़ता फिरूँ? सांसारिक धनिकों के द्वारों पर माँगता फिरूँ? सुख और आनन्द पाने के लिये पाशविक वृत्तियों और स्थूल शरीर के दरवाज़ों पर हाथ फैलाऊँ? यह मेरी मर्यादा के विरुद्ध है, मेरे लिये अपमान-जनक है। यह मेरी शान के ख़िलाफ़ है। मैं इतना नीचा कभी नहीं झुक सकता। नहीं, मैं उनके द्वारों पर जाकर हाथ नहीं पसार सकता।"

इससे महान सिकन्दर आश्चर्य में पड़ गया। उसने अपनी तलवार खींच ली और साधु का सिर उड़ा देना ही चाहता था। अब तो साधु ठट्ठा कर हँसा और बोला, "ऐ सिकन्दर! तू ने अपने जीवन में इतनी झूठी बात कभी नहीं कही, ऐसा घृणित मिथ्यालाप कभी नहीं किया। मुझे मार, मुझे मार, मुझे मार। वह तलवार कहाँ है जो मुझे मार सकती है? वह कौन सा अस्त्र है, जो मुझे घायल कर सकता है? ऐसी कौन सी विपत्ति है, जो मेरी प्रसन्नता को नष्ट कर सकती है? वह कौन सा रंज है, जो मेरे आनन्द में विघ्न डाल सकता है? नित्य, आज, कल और सदा एकरस, पवित्रों में पवित्र और शुद्धों में शुद्ध, विश्व-ब्रह्माण्ड का प्रभु हूं, मैं वही हूं, मैं वही हूं। ऐ सिकन्दर! जो शक्ति तुम्हारे हाथों को चलाती है वह मैं ही हूं। तुम्हारे इस शरीर के मर जाने पर भी मैं वही शक्ति, जो

तुम्हारे हाथों को चलाती है, बनी रहता हूं। मैं ही वह शक्ति हूं, जो तुम्हारी नसों को हरकत देती है।" सिकन्दर के हाथ से तलवार छूट पड़ी ।

इससे हमें पता चलता है कि, त्याग के भाव का लोगों को अनुभव कराने का केवल एक ही उपाय है। लौकिक दृष्टि से हम तभी सर्वस्व त्यागने को तैयार होते हैं जब दूसरी दृष्टि से हम धनी हो जाते हैं। "ग़रीबी में जो कुछ मिलता है वह टिकाऊ होता है"। क्या आपने अशंकनीय (unquestionable) वैज्ञानिक नियम नहीं सुना कि "what is gained in poverty is lasting" ? बाहरी हानि अथवा बाहरी त्याग की प्राप्ति तभी होती है जब भीतरी पूर्णता, आन्तरिक स्वामित्व या सम्राटत्व की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।न्तु

इस संसार में क्रोध का अस्तित्त्व क्यों है ? हम नित्य बड़े बड़े उपदेश सुनते हैं कि, हमें क्रोध कभी न करना चाहिये, निर्बलता को कभी न पास फटकने देना चाहिये। इस आशय के उपदेश हम नित्य सुनते हैं ; तथापि जब अवसर पड़ता है, तब हम दब जाते हैं। ऐसा क्यों है ? क्रोध, द्वेष, अपनी बड़ाई वा प्रशंसा तथा अन्य पाप क्यों हैं ? इन सब पापों की व्याख्या भी वेदान्त उसी प्रणाली और सिद्धान्त पर करता है । इन सब पापों पर व्यौरेवार विचार करने का शायद समय नहीं है। यदि आप इस सम्बन्ध में अधिक जानना चाहते हैं, तो राम के पास आइये। आप को सब पापों का कारण और निदान भली भांति समझा दिया जायगा । परन्तु अब समय बहुत थोड़ा रह गया है, इस लिये राम सब का सारांश कहेगा । अब आपका ध्यान विशेष करके इस तथ्य की ओर खींचा जाता है कि, इन सब पापों का कारण अविद्या है, जिस के कारण

आप वास्तविक आत्मा को स्थूल शरीर तथा चित्त के साथ एक कर देते हैं। इस अज्ञान को त्यागो और इन पापों का कहीं पता भी न लगेगा। यदि इन पापों को आप किसी और उपाय से दूर करना चाहेंगे तो आपका प्रयत्न अवश्य असफल होगा, क्योंकि कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं किया जा सकता। अज्ञान का निस्सन्देह नाश किया जा सकता है। अविद्या को हम हटा सकते हैं। जन्म लेने पर बच्चे इस संसार की अनेक बातों से अनभिज्ञ होते हैं। किन्तु हम देखते हैं कि, क्रमशः अनेक विषयों के सम्बन्ध में उनकी अज्ञानता घटती जाती है। केवल अज्ञान दूर किया जा सकता है।

ऐसी दशा में, एक ऐसी शक्ति है जो आपको क्रोध दिलाती है, और आपमें आकांक्षायें पैदा करती है, पाप करवाती है, और जिसकी प्रेरणा से आप धन-सञ्चय करते हैं। आप अपने उपदेशों और शिक्षाओं से इस शक्ति को किसी तरह भी नहीं मिटा सकते, आप इसे दमन नहीं कर सकते, आप इसे कदापि दबा नहीं सकते, क्योंकि शक्ति वहां है। वेदान्त कहता है, हम इस शक्ति को आत्मा में घटा सकते हैं। इसका दुरुपयोग न कीजिये। इसका उचित प्रयोग कीजिये। आप में जो असली तत्त्व है, जो शुद्ध आत्मा है, जो अद्वितीय है, जो समग्र संसार का मालिक है, उसी की यह शक्ति है।

हर एक स्वतंत्र वा स्वाधीन होना चाहता है। और स्वाधीनता के भाव का, स्वाधीनता की आकांक्षा का प्रधान लक्षण, मूल रूप क्या है? वह है उस उँचाई पर उठना, जहां द्वंद नहीं है। वास्तविक आत्मा की शक्ति चाहती है कि, आप उस अवस्था को प्राप्त करें जहां आपको पूरी स्वाधीनता है, अर्थात् जहां आपका कोई प्रतिद्वंदी नहीं है; जहाँ आपकी बराबरी का कोई

नहीं है। आत्मा, अर्थात् वास्तविक आत्मा का कोई प्रतिद्वंदी नहीं है। यदि आप सांसारिक स्वार्थपरता या आत्म-श्लाघा के विचार से पीछा छुटाना चाहते हैं, तो आप असली शक्ति को हटा और नाश नहीं कर सकते। किसी भी शक्ति का नाश नहीं किया जा सकता। न नित्य आत्मा का ही विनाश किया जा सकता है। प्रत्येक वस्तु का आप दुरुपयोग कर सकते हैं और स्वर्ग को नरक बना सकते हैं।

एक पादरी अर्थात् इङ्गलैंड के ईसाई पादरी की कहानी है। कुछ महापुरुषों, अर्थात् बड़े वैज्ञानिकों, डार्विन और हक्सले की मौतों का हाल उसने पढ़ा। वह अपने मन में विचारने लगा कि वे स्वर्ग गये या नरक। वह इस विचार में ख़ूब मग्न था। उसने अपने मन में कहा, "इन लोगों ने कोई पाप नहीं किये, परन्तु इन्हें बाइबिल पर वा ईसा मसीह पर विश्वास नहीं था, और यथार्थ में ये ईसाई नहीं थे। वे अवश्य नरक गये होंगे।" परन्तु इस विचार पर वह दृढ़ न हो सका। वह सोचता है, "वे अच्छे लोग थे, संसार में उन्होंने कुछ अच्छा काम किया था, वे नरक के पात्र नहीं थे। तो फिर वे गये कहाँ?" वह इसी प्रकार विचार करते करते सो गया और उसने एक अत्यन्त अद्भुत स्वप्न देखा। उसे स्वप्न हुआ कि, वह स्वयं मरा और श्रेष्ठ स्वर्ग में पहुँचाया गया। वहां उसे वे सभी दिखाई पड़े जिन्हें पाने की उसने आशा की थी; जो इसाई भाई उसके गिर्जे में आते थे वे सब उसे दिखाई पड़े। उनसे उसने इन वैज्ञानिकों, हक्सले और डार्विन के सम्बन्ध में पूछा। स्वर्ग के द्वारपाल या किसी अन्य कार्याधीश (steward) ने कहा, वे घोरतम नरक में हैं।

अब इस पादरी ने पूछा, केवल उन्हें देखने और पवित्र बाइबिल की शिक्षा देने तथा यह बताने के लिये कि बाइबिल

की आज्ञाओं पर विश्वास न करके उन्होंने घोर पाप किया था, क्या क्षण भर के लिये मुझे घोरतम नरक में जाने की अनुमति मिल सकती है ? कुछ वाद-विवाद के बाद कार्याधीश ढीला पड़ा और उक्त पादरी के लिये घोरतम नरक का प्रवेश-पत्र ला देना स्वीकार किया। आप को आश्चर्य होगा कि, स्वर्ग और नरक में भी आप अपनी रेलगाड़ियों में आते जाते हैं, पर बात ऐसी ही है। उस मनुष्य का पालन-पोषण ऐसे स्थान में हुआ था जहाँ रेल-व्यापार और तार की भरमार थी। अतएव, यदि उसके विचारों में, उसके स्वप्नों में नरक और स्वर्ग से रेलों का मेलजोल हो गया, तो कोई आश्चर्य नहीं।

अच्छा, इस पादरी को पहले दरजे का टिकट मिला। रेलगाड़ी चली ही जा रही है। बीच में कुछ स्टेशन थे, क्योंकि सर्वोच्च स्वर्ग से निम्नतम नरक को उसे जाना था। बीच के स्टेशनों पर वह ठहरा और देखा कि, ज्यों ज्यों नीचे उतर रहा हूं त्यों त्यों दशा बिगड़ती ही जाती है। जब वह उस नरक में पहुँचा जहाँ से सब से नीचा नरक सिर्फ दूसरा था, तो वह अचेत होगया। ऐसी घोर दुर्गन्ध आ रही थी कि, यद्यपि सारे रूमाल और अँगोछे उसने अपने नथुनों में लगा लिये फिर भी वह बेहोश हो ही गया, उसे मूर्छा आ गई। इस नरक में लोग इतना हाय हाय कर रहे थे, रो और चिल्ला रहे थे तथा दांत कटकटा रहे थे कि वह सह न सका। इन दृश्यों के कारण वह अपनी आँखें खुली न रख सका। सब से नीचे का नरक देखने निमित्त अपने आग्रह के लिये वह पछताने लगा।

कुछ ही मिनटों में यात्रियों के सुभीते के लिये रेल के चौतरे (प्लैटफार्म) पर लोग चिल्ला रहे थे, "सब से नीचा

नरक, घोरतम नरक"। स्टेशन की दीवालों पर खुदा हुआ था, "सब से नीचा नरक"। किन्तु पादरी विस्मित हुआ। उसने सब से पूछा, "यह घोरतम नरक कैसे हो सकता है? यह स्थान दिव्यतम स्वर्ग के लगभग होगा। नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता। यह सब से नीचा नरक नहीं है, यह सब से नीचा नरक नहीं है, यह तो स्वर्ग है"। रेल का रक्षक (गार्ड) या संचालक ने उससे कहा, "यही स्थान है," और एक आदमी ने आकर कहा, "महाशय, उतर पड़िये, आपका निर्दिष्ट स्थान यही है।"

वह बेचारा उतर तो पड़ा, परन्तु बड़ा चकित हुआ। उसने आशा की थी कि, यह सब से नीचे का नरक अपने पूर्ववाले से बुरा होगा। किन्तु यह तो उसके अपने सर्वोपरि स्वर्ग के प्रायः समान था। वह रेल के स्टेशन से बाहर निकला और वहाँ उसने सुन्दर बगीचे देखे, जिनमें सुगन्धित पुष्प खिले हुए थे; और शीतल मन्द-सुगन्ध पवन के झकोरे उसके मुख पर लगने लगे। उसे एक लम्बा भद्रपुरुष मिला। उसका नाम उसने पूछा, और सोचा कि इस आदमी को तो पहले भी मैं देख चुका हूं। वह आदमी उसके आगे जा रहा था और पादरी पीछे पीछे। जब वह मनुष्य बोला तो पादरी प्रसन्न हुआ। दोनों ने हाथ मिलाये और पादरी ने उसे पहचान लिया। यह कौन आदमी था? यह हक्सले था। उसने पूछा "यह कौन स्थान है, क्या यही निम्नतम नरक है?" हक्सले ने उत्तर दिया, "हाँ, यही है"। तब उसने कहा, "मैं तुम्हें उपदेश देने आया था, परन्तु पहले यह बताओ कि, यह बात क्या है जो ऐसा चमत्कार मैं देख रहा हूं"। हक्सले ने कहा, "महा भीषण अवस्था विषयक तुम्हारा अनुमान अनुचित

नहीं था। वास्तव में जब हम यहाँ आये थे तो यही विश्व-ब्रह्माण्ड का अति रौरव नरक था। इससे अधिक अवांछनीय की धारणा नहीं हो सकती थी"। और उसने कुछ स्थानों को दिखाकर कहा, "ये गन्दी खाइयां थीं"। दूसरे स्थल को दिखाकर उसने कहा, "वहाँ तपा हुआ लोहा था"। एक और स्थान को दिखलाकर कहा, "यहाँ गरम बालू थी, और वहाँ बहुत बदबूदार गोबर था"।

उसने कहा, "पहले हम अत्यन्त गन्दी खाइयों में डाल दिये गये, परन्तु वहाँ रहते हुये हम पास के जलते हुये लोहे पर पानी फेंकते रहे। और हम नालों के मैले पानी को किनारों पर पड़े जलते हुये लोहों पर उलचने का काम करते रहे। तब घोरतम नरक के कार्याध्यक्ष लाचार होकर हमें उस स्थान पर ले गये जहाँ जलता हुआ तरल लोहा था। किन्तु जब तक वे हमें वहाँ ले गये, तब तक बहुत सा लोहा बिलकुल ठण्डा हो गया था, बहुत सा लोहा हथियाया जा सकता था; परन्तु फिर भी बहुत सा लोहा तरल अर्थात् जलती हुई अग्निमय दशा में था। तब जो लोहा बुझकर ठण्डा हो गया था उसकी सहायता से और उसे आँच के सामने करके हम कुछ कलें और दूसरे औज़ार बनाने में समर्थ हुये"। इसके बाद हमें उस तीसरे स्थान पर जाना था जहाँ गोबर था। वहाँ हम पहुँचाये गये, और अपने औज़ारों, लोहे के फावड़ों और कलों से हमने खोदने का काम शुरू कर दिया। तदुपरान्त हम दूसरे प्रकार की ज़मीन पर पहुँचाये गये, और वहाँ अपने तैयार किये औज़ारों और कलों की सहायता से वहाँ की कुछ चीज़ें हमने उस भूमि में डालीं। इन्होंने खाद का काम

दिया और इस तरह धीरे धीरे हम इस नरक को सच्चा स्वर्ग बनाने में समर्थ हुये"।

बात यह है कि, घोरतम नरक में सब पदार्थ ऐसे वर्तमान थे, जो केवल अपने उचित स्थानों पर रख दिये जाने से ही दिव्य स्वर्ग बना सकते थे। वेदान्त कहता है, यही बात है, तुम में परमेश्वर वर्तमान है, और तुम में निरर्थक शरीर मौजूद है, परन्तु तुमने वस्तुओं को स्थान-भ्रष्ट कर दिया है। तुमने चीज़ों को ऊपर-नीचे कर दिया है, तुमने उन्हें उलटा-पुलटा रख दिया है। तुमने गाड़ी को घोड़ों के आगे रख दिया है। और इस तरह इस संसार को तुम अपने लिये नरक बनाते हो। तुम्हें न तो कोई वस्तु नष्ट करना है, और न कोई चीज़ खोदना है। अपनी इस आकांक्षामय भावना को अथवा इस स्वार्थ-परता को, या अपनी इस क्रोध-वृत्ति को, या अपने किसी दूसरे दूषण को, जो ठीक स्वर्ग या नरक के तुल्य है, तुम नष्ट नहीं कर सकते; परन्तु यथाक्रम स्थान पर उन्हें रख सकते हो। किसी शक्ति का विनाश नहीं किया जा सकता; परन्तु इस नरक को तुम फिर से सँवार सकते हो और इसे दिव्य स्वर्ग में बदल सकते हो।

वेदान्त कहता है, यही एक ऐसा जादू है जो कारागार के कपाट खोल सकता है, यही एक मात्र उपाय है संसार से सब संकट निकाल देने का। उतरे हुये चेहरों, मलिन और उदास तबीयतों से मामले नहीं सुधरते। सब पापों से बचने और किसी भी प्रलोभन में न फँसने का एक मात्र उपाय है सत्य आत्मा का अनुभव (प्राप्त) करना। जब तक आप इस बाह्य गौरव और महिमा का, जो आपको आकर्षित करती है, और आप पर जादू डालती है, त्याग न कर लेंगे,

तब तक आप पाशविक वृत्तियों को कदापि न रोक सकेंगे। जब आप को आत्मा का अनुभव हो जायगा, तब आप सब दुर्वृत्तियों से परे हो जाँयगे, और साथ ही साथ बिलकुल स्वतन्त्र वा नितान्त स्वाधीन तथा आनन्द से पूरी तरह परिपूर्ण हो जाँयगे। और यही है स्वर्ग।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

सम्पादकीय टिप्पणी

(२० दिसम्बर १९०२ को 'एकेडेमी आफ़ सांइसेज़' में इस व्याख्यान की दूसरी आवृत्ति की गई थी। दूसरी आवृत्ति के मार्के के वाक्य अगले पन्ने में "पाप के पूर्व लक्षण और निदान" शीर्षक एक प्रकार से इस व्याख्यान के सिलसिले में हैं।)

पूर्ववर्ती व्याख्यान के सिलसिले में।

पाप के पूर्व लक्षण और निदान।

[ता० २० दिसम्बर १९०२ को एकेडेमी ऑफ़ साइंसेज़–अमेरिका में दिया हुआ स्वामी राम का व्याख्यान।]

गँदली गढ़ैया में रहने वाली मुरग़ाबी के पंखों वा शरीर के छूने पर आपको मालूम होगा कि, वे सूखे हैं, पानी की रङ्गत या कीचड़ का उन पर नाम मात्र का भी असर नहीं पड़ा है, वे सूखे हैं। वे भीगते नहीं। वेदान्त कहता है, "ऐ मनुष्य! इसी तरह तुझ में भी ऐसी कोई वस्तु है, जो निर्मल है, जो शरीर के अपराधों, पापों, और दुर्बलताओं से दूषित नहीं होती"। इस दुष्टतामय (पाप मय) और आलस्यपूर्ण संसार में वह (वस्तु) विशुद्ध रहती है। ग़लती कहाँ होती है? निष्पाप अवस्था वास्तव में शुद्ध स्वरूप अर्थात् आत्मा का गुण है, परन्तु भूल से व्यवहार में यह गुण शरीर पर आरोपित किया जाता है। इस शरीर और चित्त को शुद्ध समझने के भाव की उत्पत्ति कहाँ से हुई? लोगों के दिलों में। इसे किसने जमाया? किसी दूसरे ने नहीं, वस्तुतः किसी दूसरे ने नहीं। न कोई शैतान, न कोई बाहरी पिशाच इसे आप के दिलों में जमाने आया। यह तुम्हारे भीतर है। कारण स्वयं कार्य में ही होना चाहिये। वे दिन बीत गये जब लोग अद्भुत घटना के कारण अपने से बाहर ढूँढ़ते थे। किसी मनुष्य के गिर पड़ने पर कारण प्रेत बताया जाता था;

गिरने का कोई कारण मनुष्य से बाहर बतलाया जाता था। वे दिन गुज़र गये। विज्ञान और तत्त्व-शास्त्र में ऐसी व्याख्यायें मान्य नहीं हैं। स्वयं घटना के अन्दर हमें व्याख्यान ढूँढ़नी चाहिये, अर्थात् स्वयं कार्य में हमें कारण ढूँढ़ना चाहिये। हम जानते हैं कि, शरीर पापमय है, सदा अपराधी है, फिर भी हम अपने को निष्पाप समझते हैं। लोग इस अद्भुत घटना की व्याख्या कैसे करते हैं? वेदान्त कहता है, "किसी बाहरी शैतान का आश्रय लेकर इसे मत समझाओ, बाहरी पिशाचों पर इसे आरोपित कर इसकी व्याख्या मत करो। नहीं, नहीं। कारण तुम्हारे भीतर है। तुम्हारे भीतर पवित्रों का भी पवित्र और निष्पाप स्वरूप आत्मा है, जो आप को अपने अस्तित्त्व का बोध कराता है, जो नष्ट नहीं किया जा सकता, त्यागा नहीं जा सकता और जिसके बिना रहना असम्भव है। शरीर कितना ही अपराधी अथवा कितना ही पापमय क्यों न हो, वास्तविक आत्मा और उस की निष्पापता तो वहाँ है ही। वह अपना बोध करावेगीही। वह वहाँ है, उसका विनाश नहीं किया जा सकता"।

अब हम भिन्न भिन्न पापों, अर्थात् पाप कहे जाने वाली विविध घटनाओं की ओर आते हैं।

ख़ुशामदः—इसे हम पहले लेते हैं। इसे घोर पाप तो नहीं समझा जाता, परन्तु है यह पाप सार्वभौम।

यह क्या बात है कि, तुच्छ से तुच्छ कीड़े से लगा कर ईश्वर तक को ख़ुशामद पसन्द है? यह क्या बात है कि, प्रत्येक प्राणी ख़ुशामद का ग़ुलाम है; स्तुति, लल्लो-चप्पो, और हाँजी-हाँजी चाहता है? प्रत्येक चाहता है कि, वह बहुत कुछ समझा जावे, ऐसा क्यों है?

कुत्ते भी जब तुम उन्हें पुचकारते और थपथपाते हो बड़े

ही प्रसन्न होते हैं। उन्हें भी .खुशामद पसन्द है । घोड़ों को चाटुकारिता (flattery) प्रिय है। घोड़े का मालिक आकर जब उसे चुमकारता तथा पीठ ठोंकता है, तो वह अपने कान खड़े कर लेता और उत्साह से भर उठता है।

भारत में कुछ राजा शिकार में कुत्तों के बदले चीतों से काम लेते हैं, और शिकार को तीन छलांगों में पकड़ना चीते का स्वभाव है। यदि उसने शिकार (तीन छलांगों में) पकड़ लिया तो बहुत अच्छा, नहीं तो चीता हताश होकर बैठ जाता है। ऐसे अवसरों पर राजा-महाराजा आकर चीते को थपथपाते और चुमकारते हैं और तब फिर उसमें शक्ति भर जाती है। हम देखते हैं कि, चीतों को भी .खुशामद पसन्द है। ऐसे आदमी को ले लीजिये जो किसी काम का नहीं अर्थात् व्यर्थ है। उसके पास जाइये और हाँ में हाँ मिला कर उसका दिल बढ़ाइये, उसकी .खुशामद कीजिये। ओः! उसका चेहरा प्रसन्नता से चमचमा उठता है । तुरन्त ही आपको उसके गालों पर लालिमा दिखाई पड़ेगी।

जिन देशों में लोग देवताओं की पूजा करते हैं, वहाँ हम देखते हैं कि वे (देवगण) भी चाटुकारिता से तुष्ट होते हैं। और कुछ एकेश्वरवादियों (monotheists) की प्रार्थनाओं का क्या अर्थ है? उनकी स्तुतियाँ व उनके आवाहन–मन्त्र क्या हैं? उनकी परीक्षा कीजिये। निःस्वार्थ भाव से तथा पक्षपात-बुद्धि को त्याग कर उनकी परीक्षा कीजिये, और आप देखेंगे कि .खुशामद के सिवाय वे कुछ नहीं हैं । यह क्या बात है कि, चाटुकारिता सार्वभौम है। प्रत्येक प्राणी .खुशामद को पसन्द करता है, परन्तु साथ ही एक भी मनुष्य उस तरह की .खुशामद का पात्र नहीं है, जो उसे .खुश करती है । एक भी

मनुष्य उन अनावश्यक प्रशंसाओं की योग्यता नहीं रखता जो उसके प्रशंसक लोग उसकी करते हैं। वेदान्त यह कह कर इसकी व्याख्या करता है कि, प्रत्येक व्यक्ति में, अर्थात् प्रत्येक मनुष्य में वास्तविक स्वरूप अर्थात् सत्य आत्मा है, जो वस्तुतः श्रेष्ठों में सर्व-श्रेष्ठ है और उच्चों में सर्वोच्च है। सचमुच तुम में कोई ऐसी वस्तु है, जो सब से उच्च है और जो अपने अस्तित्व का बोध कराती है। ख़ुशामदी व्यक्ति जब हमारी प्रशंसा और स्तुतियाँ करने लगता है, तब हम फ़ूल उठते हैं, वा प्रसन्न हो जाते हैं। क्यों? इसका कारण यह नहीं है कि ये कथन सच्चे हैं; परन्तु वेदान्त कहता है कि, वास्तविक कारण हमारे वास्तविक आत्मा में है। सब घटनाओं के पीछे कोई चीज़, कोई प्रबल शक्ति, अथवा कोई वस्तु कठिन, अजय, सर्वश्रेष्ठ, और सर्वोच्च ऐसी है, जो आपका वास्तविक आत्मा है और जो सब तरह की ख़ुशामद तथा प्रशंसाओं के योग्य है। और कोई भी ख़ुशा-मद, कोई भी स्तुति अथवा कोई भी उत्कर्ष ऐसा नहीं जो वास्त-विक आत्मा के योग्य न हो सके। किन्तु इससे कोई यह नतीजा न निकाले कि, राम ख़ुशामद को नीति-संगत बतला रहा है। नहीं। वास्तविक आत्मा की ख़ुशामद, प्रशंसा, और गौरव-गान होना चाहिये, न कि शरीर की। परिच्छिन्नात्मा को इनका अधिकारी न समझना चाहिये।

"Render unto Caesar, the thinigs that are Caesar's; and render unto God, the things that are God's."

(Bible)

"जो पदार्थ सीज़र के हैं, वे सीज़र को दे दो और जो ईश्वर की वस्तुएं हैं वे ईश्वर को।"

.ख़ुशामद में पाप यही है कि, सीज़र की चीज़ें ईश्वर को और ईश्वर के पदार्थ सीज़र को देने की भूल की जाती है। हमारे .ख़ुशामद के दास होने की पापात्मकता इसी उलट-पुलट दशा के कारण है। इसी में पापीपना है। नहीं, नहीं गाड़ी घोड़े के आगे रक्खी जाती है। यदि आप अपने स्वरूप का अनुभव कर सर्व-श्रेष्ठ और सर्वोच्च से अपनी एकता का बोध करें, और उसे अपनी आत्मा समझें, शरीर से वा चित्त से ऊपर उठें, तो वास्तव में आप श्रेष्ठों में सर्व श्रेष्ठ हैं, उच्चों में सर्वोच्च हैं, आपही अपने आदर्श हैं, नहीं नहीं, अपने ईश्वर आप ही हैं। इसका अनुभव कीजिये और आप स्वतंत्र हैं। किन्तु आत्मा, अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप का गौरव शरीर को देने में और शरीर के लिये उत्कर्ष तथा .ख़ुशामद चाहने में भूल की जाती है। यही भूल है। यह क्या बात है कि, इस संसार में हर एक मनुष्य और हर एक पशु भी दर्प वा ख़ुशामद से दूषित है ? यह क्या बात है कि अहंकार और अभिमान सर्वव्यापी हैं ?

एक सज्जन ने आकर राम से कहा, "देखिये, देखिये ! हमारा धर्म सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि उसके उपासकों की, उसे माननेवाले लोगों की संख्या सब से बड़ी है। मानव जाति का अधिकतम भाग हमारे धर्म का है, इसलिये अवश्य ही वह सब धर्मों से अच्छा है"। राम ने कहा, "भइया ! भइया !! समझ-बूझ कर बात कहो। तुम शैतान में विश्वास करते हो ?" उसने कहा, "हाँ"। तो कृपया बतलाइये कि, "शैतान के धर्म के अनुयायी अधिक हैं या आपके धर्म के ? यदि बहु-संख्या पर सत्य का निर्णय होना है, तो शैतान को सब पर श्रेष्ठता प्राप्त है"।

हम कहते हैं कि, अभिमान या अहंकार ने—आप इसे शैतान का एक पहलू कह सकते हैं—इस संसार के प्रत्येक प्राणी पर दृढ़ अधिकार जमा लिया है। यह क्या बात है? साथ ही हम यह भी जानते हैं कि शरीर किसी प्रकार के गर्व के योग्य नहीं है, शरीर को अभिमान करने का अथवा श्रेष्ठता का भाव दिखाने का कोई अधिकार नहीं है। हर एक जानता है कि शरीर किसी प्रकार के अहंकार वा अभिमान की पात्रता या योग्यता नहीं रखता, परन्तु हर एक में यह वर्तमान है। ऐसा क्यों है? यह सार्वभौम घटना कहाँ से आई? यह सार्वभौम विरोधाभास अर्थात् यह सार्वभौम-विरोध कहाँ से आया? यह अवश्य तुम्हारे भीतर से आया होगा। कारण ढूँढ़ने दूर नहीं जाना है। तुम्हारे भीतर श्रेष्ठों में जो सर्वश्रेष्ठ है, वह आपका वास्तविक आत्मा है। तुम्हें उसे जानना और अनुभव करना पड़ेगा, और जब तुम सच्चे स्वरूप अर्थात् वास्तविक आत्मा को जान और अनुभव कर लोगे, तब इस तुच्छ शरीर के लिये प्रशंसा पाने को तुम कभी न झुकोगे। तब फिर इस क्षुद्र शरीर के लिये अहंकार या गर्व प्राप्त करने को तुम कभी न झुकोगे। यदि तुम सच्चे आत्मा का अनुभव कर लो, यदि तुम स्वयं अपने हृदय का उद्धार करलो, तो तुम्हीं अपने उद्धारक हो जाते हो। यदि तुम अपने अन्दर ईश्वर का अनुभव करलो, तो इस तुच्छ शरीर के लिये प्रशंसायें सुनना, अपने शरीर की स्तुतियां सुनना तुम्हें अपने आपको तुच्छ और नीचे बनाने वाला कार्य समझ पड़ेगा। तब तुम शारीरिक अभिमान या स्वार्थपूर्ण अहंकार से ऊपर उठ जाओगे। शारीरिक अभिमान या स्वार्थमूलक अभिमान से ऊपर उठने का यही उपाय है।

भीतर का सच्चा आत्मा, सच्चा स्वरूप, श्रेष्ठों में श्रेष्ठ, उच्चों में उच्च तथा देवों में परम देव होता हुआ अपने स्वभाव को कैसे छोड़ सकता है? यह आत्मा अपने को पतित कैसे बना सकता है; अपने को दीन, भाग्यहीन, कीड़ा या मकोड़ा कैसे मान सकता है? इतनी गहरी अज्ञानता में वह अपने को कैसे गिरा सकता है? वह अपनी प्रकृति नहीं त्याग सकता? और अहंकार या अभिमान के सार्वभौम होने का यही कारण है, किन्तु इस व्याख्या से अहंकार या अभिमान नीतिसंगत नहीं सिद्ध होता। शरीर के लिये अभिमान अथवा अहंकार अयुक्त है।

हम जानते हैं कि पृथ्वी चलती है, और पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य स्थिर है। सब जानते हैं कि सूर्य नहीं चलता और पृथ्वी चक्कर लगाती है। किन्तु हम एक भूल करते हैं, अर्थात् भ्रम में पड़ जाते हैं। पृथ्वी की गति हम सूर्य को प्रदान करते हैं, और सूर्य की अचलता पृथ्वी को। इसी तरह की भूल वे लोग करते हैं, जो अभिमान के भूखे हैं वा जो अहंकार के अधीन है। यहाँ भी उसी तरह की भूल होती है। यहां आत्मा अर्थात् वास्तविक सूर्य प्रकाशों का प्रकाश है, जो अचल है, जो वास्तव में सम्पूर्ण गौरव का मूल है; और वहां शरीर पृथ्वी के तुल्य है, जो हर घड़ी बदलती रहती है, किसी तरह का प्रशंसा की पात्र नहीं, और किसी प्रकार के गौरव के योग्य नहीं है; परन्तु आत्मा का गौरव शरीर को प्रदान करने में और शरीर की निरर्थकता आत्मा को अर्थात् वास्तविक स्वरूप को प्रदान करने में हम भूल करते हैं। यह भूल अर्थात् अविद्या का यह रूप इस तुच्छ शरीर के लिये उत्कर्ष चाहने का कारण है। अच्छा, यदि यह अज्ञान शैतान कहा जा सके, यदि शैतान का अनुवाद अज्ञान किया

जा सके, तो हम कह सकते हैं कि, इस रीति से शैतान आकर चीज़ों को अस्तव्यस्त कर देता है, आत्मा का गौरव शरीर को और शरीर की असारता आत्मा को प्रदान कर देता है। इस अविद्या को दूर करो और तुम अभिमान या अहंकार को नष्ट कर दोगे।

यह क्या बात है कि, लोभ (greed), उत्कर्ष, या लालच सार्वभौम हैं? पशुओं में लोलुपता है, मनुष्यों में है, नारियों में है, प्रत्येक में है। यह क्या बात है कि, लोलुपता, लालच, या उत्कर्ष सार्वभौम हैं? हर एक चाहता है कि उसे सब तरह की वस्तुयें प्राप्त हो जाँय। हर एक अपने शरीर के इर्दगिर्द पदार्थों का संग्रह करना चाहता है, और इस लोलुपता की तृप्ति कभी नहीं होती। जितना ही अधिक तुम प्राप्त करते हो, उतना ही अधिक लोभ की लौ भभकती है, उतना ही अधिक वह लौ पुष्टि पाती है। तुम सम्राट बन जाते हो; परन्तु फिर भी लोभ वर्तमान है, और वह सम्राट तुल्य है। तुम ग़रीब आदमी हो और तुम्हारा लोभ भी ग़रीब है। यह सार्वभौम क्यों है? गिरजों में, देवालयों में, तथा मसजिदों में, सर्वत्र उपदेशक बड़े बड़े उपदेश देते और कहते हैं, "भाइयो! लोभ छोड़ो, लोभ छोड़ो, लोभ छोड़ो"। लोभ का गला घोटने में वे अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं, वे उसे हटाना व निर्मूल करना चाहते हैं; परन्तु उनके सम्पूर्ण निवारण–उपदेश व्यर्थ जाते हैं, और वह बना रहता है। यह क्यों? वह रोका नहीं जा सकता, उसका गला नहीं दबाया जा सकता, वह वर्तमान है। इस समस्या को समझाओ। लोभ के रोग को विनष्ट करने की इच्छा करने के पूर्व हमें उसका कारण जान लेना चाहिये। जब तक तुम रोग का कारण न बतलाओगे, तब तक उसे अच्छा करने की आशा तुमसे नहीं की जा सकती। हमें उसका कारण

जान लेना चाहिये। "शैतान तुम्हारे हृदय में उसे रखता है", यह कहना अवैज्ञानिक है, अतात्त्विक है। तर्कशास्त्र के सब नियमों के यह विरुद्ध है। इससे काम नहीं चलेगा। यदि तुम तथ्य की कोई वैज्ञानिक व्याख्या नहीं कर सकते, तो यह पौराणिक व्याख्या क्यों? यह सार्वभौम क्यों है? वेदान्त इसे यह कह कर समझाता है कि मनुष्य में सत्यता अर्थात् सत्यस्वरूप वा आत्मा है जो अपने को आप प्रतिपादन करता है। वह कुचला नहीं जा सकता। कहा जाता है कि, कोई भी शक्ति नष्ट नहीं की जा सकती, कोई भी बल छिन्न-भिन्न नहीं किया जा सकता। शक्ति के उत्कर्ष (consummation of energy), पदार्थ की अनश्वरता (indestructibility of matter), और बल के दृढ़ आग्रह (persistence of force) के नियम को हम सुनते हैं। ये सब बातें हमें सुनने को मिलती हैं, और यहां वेदान्त कहता है, "ऐ उपदेशको, ऐ पुजारियो, ऐ ईसाइयो, हिन्दुओ और मुसलमानो! तुम इस शक्ति को, इस बल को, जो लोभ के रूप में प्रकट होता है, कुचल नहीं सकते"। तुम इसका दमन नहीं कर सकते। अनादि काल से सब प्रकार के धर्म, लोभ, कृपणता, वा उत्कर्ष के विरुद्ध उपदेश देते चले आ रहे हैं; परन्तु तुम्हारे वेद, बाइबिल और कुरान संसार को कुछ भी न सुधार सके। लोभ वर्तमान है। शक्ति नष्ट नहीं की जा सकती; परन्तु तुम उसका सदुपयोग कर सकते हो। वेदान्त कहता है, "ऐ संसारी मनुष्य! तू एक गलती करता है"। सब से महान शब्द अर्थात् तीन अक्षरों का शब्द जीG–ओO–डीD (गॉड=ईश्वर) ले लीजिये, और उसे व्यतिक्रम से पढ़िये। वह क्या हो जाता है? डीD–ओO–जीG (डाग=कुत्ता)। इस प्रकार तुम शुद्धों में शुद्ध का अनर्थ कर रहे हो; तुममें जो शुद्ध ईश्वर है, उसे कुछ

और ही समझ रहे हो ; उसे तुम उलटी तरफ़ से पढ़ते हो ; और इस तरह अपने को सचमुच कुत्ता बनाते हो, यद्यपि वास्तव में तुम विशुद्धों में विशुद्ध अर्थात् विशुद्ध ईश्वर हो। भूल से आत्मा का गौरव शरीर पर और शरीर की तुच्छता आत्मा में आरोपित करने के अज्ञान के कारण अर्थात् इस भूल के कारण तुम लोभ के शिकार बनते हो। इस भूल को निर्मूल करदो, और बस तुम अमर परमात्मा हो ; अपने में निहित सच्चे स्वरूप का उद्धार करो ; सच्चे स्वरूप में दृढ़ता से जमो ; और अपने को देवों का परमदेव, विशुद्धों में विशुद्ध, विश्व का स्वामी तथा प्रभुओं का प्रभु अनुभव करो ; फिर इन बाहरी वस्तुओं को ढूंढ़ कर इस शरीर के इर्द-गिर्द जमा करना तुम्हारे लिये असम्भव हो जायगा।

अब हम मोह या शोक के विषय पर आते हैं। मोह का कारण क्या है ? इसका अर्थ यह है कि, इस से ग्रसित मनुष्य अपने आसपास की वस्तुओं में परिवर्त्तन नहीं चाहता। किसी अपने प्रिय की मृत्यु से मनुष्य चिन्ता और शोक से परिपूर्ण हो जाता है। उसके शोक और चिन्ता से क्या सूचित होता है ? इससे क्या सिद्ध होता है ? जब हम बुद्धि से जानते हैं कि, इस संसार में प्रत्येक वस्तु परिवर्त्तनशील है, बहाव की दशा में है, तो क्या हम ज्यों की त्यों दशा बनी रहने की आशा कर सकते हैं, क्या हम अपने प्यारों को सदा अपने पास रखने की आशा कर सकते हैं ? और फिर भी हम इच्छा यही करते हैं कि कोई परविर्त्तन न हो। यह क्यों ? वेदान्त कहता है, "ऐ मनुष्य ! तुममें कोई ऐसी वस्तु है जो वास्तव में निर्विकार है, जो कल, आज, और सदा एकसां है, परन्तु भूल (अज्ञान) से सच्चे स्वरूप वा आत्मा की नित्यता शरीर की अवस्थाओं को प्रदान की जाती है"। यही इसका

कारण है। अज्ञान को दूर करो और सांसारिक अनुरागों से तुम ऊपर उठ जाओगे।

आलस्य या प्रमाद का क्या कारण है ? वेदान्त के अनुसार प्रमाद या आलस्य के सर्वव्यापकता या सार्वभौमिकता का कारण यह है कि प्रत्येक और सकल प्राणी के अन्तर्गत सच्चा आत्मा पूर्ण विश्राम तथा शान्ति है, और अनन्त होने के कारण सच्चा आत्मा चल नहीं सकता। अनन्त चल नहीं सकता। केवल परिच्छिन्न वा सान्त ही में गति हो सकती है। यहाँ एक वृत्त है, और वहाँ दूसरा वृत्त है। जहाँ यह है, वहाँ वह नहीं है, और जहाँ वह है, वहाँ यह नहीं है। यदि एक दूसरे के अस्तित्त्व को सीमाबद्ध करता है, तो दोनों सान्त वा परिच्छिन्न हैं। यदि हम एक वृत्त को अनन्त बनाना चाहते हैं, तो वह समग्र स्थान को घेर लेगा। छोटे वृत्त के लिये तब स्थान न रह जायगा। जब तक छोटा वृत्त उस (बड़े वृत्त) को परिमित किये हुए था, तब तक आप उसे अनन्त नहीं कह सकते थे। पहले को असीम बनने के लिये एक अकेला होना पड़ेगा, उससे बाहर कुछ न होना चाहिये। और जब उससे बाहर कोई भी दूसरी चीज़ नहीं है, तो फिर ऐसी कोई चीज़ नहीं रह गई जो अनन्तता से परिपूर्ण नहीं है। और इस तरह स्थान के अभाव के कारण अनन्तता चल नहीं सकती। अनन्त में कोई परिवर्त्तन नहीं हो सकता। अन्तर्गत आत्मा अर्थात् सच्चा स्वरूप अनन्त है। वह सम्पूर्ण शान्ति वा सम्पूर्ण विश्राम है। उसमें कोई गति नहीं है। ऐसी बात होते हुए अनन्त स्वरूप अर्थात् अनन्त स्वरूप आत्मा की शान्ति अज्ञान से शरीर पर आरोपित की जाती है, जिससे उसमें आलस्य और प्रमाद पाया जाता है। आलस्य और प्रमाद के विश्वव्यापी होने का यही कारण है।

यह क्या बात है कि, इस संसार में कोई भी अपना रक़ीब (rival=प्रतियोगी) नहीं चाहता ? हरएक सर्वश्रेष्ठ शासक बनना चाहता है।

I am the monarch of all I survey.
My right there is none to dispute.
"जो कुछ मैं देखता हूं, उस सबका मैं सम्राट हूं,
मेरे अधिकार पर आपत्ति करनेवाला कोई नहीं है"।

हर एक मनुष्य यही भान करना चाहता है। इसकी विश्वव्यापकता का कारण क्या है ? इस तथ्य अर्थात् इस कठिन, वा उग्र सचाई को समझाइये; इसे अवश्य समझाइये। वेदान्त कहता है, कि इसका मूल कारण यह है, कि, मनुष्य में सत्य आत्मा है, जो एकमेवाद्वितीय है, जो प्रतियोगी वा प्रतिद्वंदी-रहित है, बेजोड़ है, और भूल से वा अज्ञान से आत्मा का गौरव और एकत्व शरीर पर आरोपित किया जाता है।

दूसरे पापों के विषय में हम कुछ न कहेंगे। उन्हें भी इसी तरह वेदान्त समझाता है। सब घोर से घोर पापों की व्याख्या हो गई, और इन पापों को दूर करने का सरल उपाय एक मात्र विश्वव्यापी अज्ञान का दूर करना है, जिसके कारण आप आत्मा के स्वभावों व लक्षणों को शरीर के स्वभाव और लक्षण मानने की भ्रान्ति में फँसते हैं।

एक मनुष्य दो रोगों से पीड़ित था। उसे एक नेत्र-व्याधि और एक उदर-रोग था। एक वैद्य के पास जाकर उसने चिकित्सा करने को कहा। वैद्य ने इस रोगी को दो प्रकार की औषधियां अर्थात् दो तरह के पौडर (powder) दिये। एक पौडर (सुरमा) नेत्रों में लगाये जाने के लिये था। इस में सुरमा अर्थात् गंधकी सुरमा (lead-sulphide) था, जो यदि पेट में चला

जाय तो यह विष था; यह आंखों में लगाया जा सकता था, और भारत में लोग इसे नेत्रों में लगाते हैं। इस लिये वैद्य ने उसे नेत्रों के लिये सुरमा दिया। दूसरा पौडर (चूर्ण) वैद्य ने खाने के लिये दिया था। इस चूर्ण में काली और लाल मिर्चें थीं। लाल मिर्च को अंग्रेज़ी में चिल्ली (chilly) कहते हैं, जिसका अर्थ उस भाषा में शीतल (cold) होता है, पर जो वास्तव में तीक्ष्ण बड़ी होती हैं। अर्थात् एक चूर्ण वैद्य ने उसे खाने के लिये दिया, जिसमें मिर्चें थीं। यह मनुष्य घबराहट की दशा में था, इस लिए इसने दोनों चूर्णों को आपस में बदल लिया। खानेवाला चूर्ण तो उसने आँखों में लगा लिया, और सुरमा तथा दूसरी चीज़ें, जो विष थीं, उसने खा लीं। अब तो आँखें फूट गईं, और पेट पहले से भी बिगड़ गया।

यही लोग कर रहे हैं, और इस संसार में समस्त कथितमात्र पाप का यही कारण है। एक ओर तो आत्मा, अर्थात् प्रकाशों का प्रकाश तुम्हारे भीतर है; और दूसरी ओर यह शरीर है, जिसे पेट कह लीजिये। शरीर के लिये जो कुछ होना चाहिये, वह आत्मा के निमित्त किया जा रहा है; और आत्मा की प्रतिष्ठा, मान तथा गौरव शरीर को दिया जा रहा है। हर एक चीज़ मिल गई है, हर एक चीज़ गड़बड़ हालत में कर दी गई है। इसके कारण संसार में यह घटना हो रही है जिसे पाप कहते हैं। चीज़ों को ठीक कर लो, तुम भी ठीक हो जाओगे, तुम्हारा सांसारिक अभ्युदय होगा, और परमार्थ दृष्टि से आप देवों के देव हो जाओगे।

इसी प्रकार हर एक वस्तु आप में है, किन्तु कुठौर रक्खे जाने से नीचे ऊपर हो गई है। ईश्वर को नीचे डाल दिया है और शरीर को उसके ऊपर धर दिया है, तथा सर्वोच्च स्वर्ग को घोर

नरक में बदल डाला है। उन्हें ठीक क्रम से रख दो, फिर तुम देखोगे कि, यह पापों की भयंकर और घृणित घटना भी आपको अच्छाई और विशुद्धता बखानेगा। अपनी दृष्टि ठीक करो और आप अभी परमेश्वर हो।

एक मनुष्य ने, जो नास्तिक था, अपने घर की दीवारों पर सब कहीं लिख रक्खा था (God is nowhere) "ईश्वर कहीं नहीं है"। वह अनीश्वरवादी था। वह वकील था। एक बार एक मुवक्किल ने उसे ५००) देने चाहे। उसने कहा, "नहीं, मैं १०००) लूँगा"। मुवक्किल ने कहा, बहुत अच्छा, यदि मुक़दमा जितादो तो मैं १०००) दूँगा ; परन्तु बाद को दूँगा। अभी यदि ५००) लेना मंज़ूर हो तो पहले ले लीजिये"। वकील साहब को सफलता का दृढ़ निश्चय था और उसने (वैसे ही) मुक़दमा ले लिया। वह न्यायालय में गया। उसे पूरा निश्चय था कि, मैंने सब कुछ ठीक किया है। उसने सावधानी से मुक़दमे का अध्ययन किया था। किन्तु मुक़दमा पेश होने पर प्रतिपक्षी के वकील ने एक ऐसी पुष्ट बात निकाल कर कह दी कि वह मुक़दमा हार गया, और मेहनताने के १०००) भी जाते रहे, जिनके पाने की उसे पूरी आशा थी। वह बहुत ही दुखी, हताश और उदास दशा में अपने घर लौटा। निराश अवस्था में जब वह अपनी मेज़ के ऊपर झुका हुआ था, तब उसका प्यारा बच्चा आया। बच्चा शब्दों के हिज्जे करना सीख रहा था। वह हिज्जे करने लगा, "जी-ओ-डी= गॉड, आई-एस=इज़ (God is —*इसके आगे का शब्द बड़ा

*"no where नो व्हेयर" बच्चे ने छोड़ दिया।

गाड इज़ नोव्हेयर (God is no where) का अर्थ हुआ "ईश्वर कहीं नहीं है" और "नोव्हेयर" को दो टुकड़े कर डालने पर दो शब्द बन गये "नाऊ" और "हीयर" और पूरा वाक्य हुआ "गाड इज़ नाऊ हीयर" अर्थात् "ईश्वर अब यहां है"।

था, उसमें अनेक अक्षर थे। बेचारा बच्चा इस शब्द के हिज्जे न कर सका। उसने इस शब्द को दो टुकड़ों में तोड़ डाला, एन० ओ० डब्लयू=नाऊ और एच० ई० आर० ई=हीयर (no where) और बच्चा प्रसन्नता से उछल पड़ा। सम्पूर्ण वाक्य के हिज्जे कर डालने की अपनी सफलता पर वह चकित हो उठा। "ईश्वर अब यहां है" (God is now here), "ईश्वर यहाँ है"। वही वाक्य (God is no where) "ईश्वर कहीं नहीं है" (God is now here) "ईश्वर अब यहां है" पढ़ा गया। यही सारा मामला है।

वेदान्त चाहता है कि आप चीज़ों के ठीक हिज्जे वा विन्यास करें। उनका अशुद्ध पाठ न करें, उनके ग़लत हिज्जे न कीजिये। इस वाक्य "गॉड इज़ नोव्हेयर=God is no where" (ईश्वर कहीं नहीं है), अर्थात् पाप और अपराध की घटना को "गाड इज़ नाउ हीयर=God is now here" (ईश्वर अब यहाँ हैं) करके पढ़िये।

तुम्हारे पापों में भी तुम्हारा ईश्वरत्व, अर्थात् तुम्हारी प्रकृति का ईश्वरत्व प्रमाणित होता है। इसका अनुभव करो, और समग्र संसार तुम्हारे लिये स्वर्गरूप में खिल उठेगा, अर्थात् वह स्वर्ग या नन्दन-कानन में बदल जायगा।

एक बार परीक्षा में विद्यार्थियों से "ईसा के पानी को मद्य में बदल देने के चमत्कार" पर निबन्ध लिखने को कहा गया था। कमरा छात्रों से भरा हुआ था, और वे लिख रहे थे। एक बेचारा विद्यार्थी (बाइरन=Byron) सीटी बजा रहा था, गा रहा था, तथा कभी इस कोने की ओर और कभी उस कोने की ओर देख रहा था। उसने एक भी शब्दांश (syllable) नहीं लिखा था। वह परीक्षाभवन में भी खेल ही करता रहा, वह मौज करता रहा।

ओह, उसका चित्त स्वाधीन था। समय बीतने पर जब प्रबन्धक उत्तर-पत्र जमा कर रहा था, तो उसने विद्यार्थी से हँसी में कहा, "मुझे बड़ा खेद है कि, इतना बड़ा निबन्ध लिखते लिखते तुम थक गये"। तब बाइरन ने अपना कलम उठाया और उत्तर-पत्र पर एक वाक्य लिख कर उत्तर-पत्र प्रबन्धक को दे दिया। जब परीक्षा का नतीजा निकला, तो उसे प्रथम पुरस्कार मिला; अर्थात् बाइरन को प्रथम पुरस्कार मिला। जिस परीक्षार्थी ने कुछ भी नहीं लिखा था, जिसने कलम उठा कर केवल एक वाक्य एक दफ़े में खींच दिया था, उसे प्रथम पुरस्कार मिला। परीक्षा का प्रबन्धक, जिसने बाइरन को खेलंदड़ा समझा था, बड़ा विस्मित हुआ, और अन्य परीक्षार्थियों ने परीक्षक महोदय से सम्पूर्ण श्रेणी के सामने अर्थात् विद्यार्थियों के पूरे समूह के सामने बाइरन का निबन्ध, जिसने उसे पुरस्कार दिलाया था, पढ़ने की प्रार्थना की। निबन्ध यों था:—"The water saw her master and blushed" "जल ने अपने स्वामी को देखा और लज्जा वा प्रफुल्लता से लाल हो गया"। यह निबन्ध ईसा-चमत्कार पर था, जिससे ईसाने जलको मद्यमें बदल दिया था। सम्पूर्ण लेख इतना ही था। क्या यह आश्चर्यमय नहीं है? लज्जा वा प्रफुल्लता में चेहरा लाल हो जाता है, जल लाल मद्य हो गया। जब कोई कामिनी अपने स्वामी, वा अपने प्रेमी की बातचीत सुनती है, तो वह विकसित होती है, जल ने भी अपना स्वामी देखा और वह खिल गया। बस इतना ही है। वाह, वाह! क्या खूब! क्या खूब कहा?

अपने अन्तर्गत सच्चे आत्मा का अनुभव करो। ईसामसीह की तरह अनुभव करो कि, "पिता और पुत्र एक हैं' (that the father & son are one)। "प्रारम्भ में शब्द था, शब्द ईश्वर

के साथ था" (In the beginning was the word ; the word was with God.) । इसे अनुभव करो, इसे ठीक अनुभव करो । "स्वर्गों का स्वर्ग तुम्हारे भीतर है" (the heaven of heaven is within you) । यह अनुभव करो ; फिर जहां कहीं तुम जाओगे, गंदले से गँदला जल तुम्हारे लिये चमचमाते मद्य में खिल उठेगा, हरएक कारागार, तुम्हारे लिये स्वर्गों के स्वर्ग में बदल जायगा । तुम्हारे लिये कोई भी कष्ट या कठिनता न होगी, सबके तुम स्वामी हो जाओगे ।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

What is wanting ?
Summer redundant
Blue abundant
......where is the blot ?
......the world, yet a blank all the same,
......frame work which waits for a picture to frame
What of the leafage
What of the flower ?
Roses embowering with naught they embower !
Come then, complete incompletion, oh come,
Come through the blueness, perfect the summer ;

Breathe but one breath
Rose beauty above
And all that was death
Grows life, grows love.

Om Om.

(नोट)—यह कविता कुछ अधूरी सी प्राप्त हुई है, जिससे कहीं कहीं पर भाव अस्पष्ट है, अतएव अनुवाद नहीं किया गया। किसी प्रेमी पाठक से पूर्ण कविता यदि प्राप्त हो गई, तो अनुवाद प्रकाशित कर दिया जायगा।

भाग पहला

उत्तरार्द्ध

स्वामी राम तीर्थ जी
के
हिन्दी-उर्दू के लेख व उपदेश

ओम्

राय बहादुर लाला बैजनाथ साहिब का पत्र पर्वतों में राम को पहुँचा कि वह वेद, वेदान्त, पुराणादि से संग्रह करके एक उपासना पुस्तक तैयार कर रहे हैं। रायबहादुर के एकत्र किये हुए सूक्त, श्रुति, भजन आदि के अति उत्तम होने में तो संदेह ही नहीं।

राम को उस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने की फ़रमायश आई। उसके जवाब में वह छोटे छोटे विचार और मन समझावे सीधी सादी भाषा में लिख दिये गये हैं, जिन्होंने लेखक के लिये अन्दर बाहर राम ही राम दिखा दिया। सारा संसार तरारे भरता हुआ हीरे की तरह चमकता दमकता राम सागर बन रहा है।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण

(मुण्डक उप० २, २, १०)

ओं

राम तीर्थ

Rama Tirtha

स्वामी रामतीर्थ

उपासना

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो । भूयिष्ठान्ते नमउक्तिं विधेम ॥

(शु० यजु० सं० ५, ३६)

(हे देव ! आप हम लोगों के पाप को हम से पृथक् करें । हम आपकी बहुत बहुत प्रकार स्तुति करते हुए नमस्कार करते हैं ।)

उड़ें टेढ़ी बाँकी ये चालाकियाँ सब ।
रहें ढाल तलवार इक आप ही अब ॥

मन को देव के 'पास बिठाना' उपासना है, अथवा उपासना उस अवस्था का नाम है जहाँ रोम रोम में राम रच जाय, मन अमृत में भीग जाय, दिल आनन्द में डूब जाय । इसके तीन दर्जे हैं, जैसे (१) पत्थर की शिला का गंगा में शीतल हो जाना, (२) कपड़े की गुड़िया का अन्दर बाहर जल में निचुड़ने लग जाना, (३) और मिसरी की डली का गंगा रूप हो जाना । कभी कभी भजन, ध्यान, आराधना, अनुसन्धान

आदि भी इसी को कहते हैं ; सीधी सादी बोल चाल में ईश्वर को याद (स्मरण) करना उपासना है।

ख़बरदार, भूलने न पाये !

पश्यन्शृण्वन्स्पृशन्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ।

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥ (गीता ५, ८—९)

(देखते, सुनते, छूते, सूंघते, खाते, चलते, सोते, श्वास लेते, बोलते, त्यागते, ग्रहण करते, नेत्र खोलते व मीचते हुए भी।)

अटल नियम—पाठक, बहुत बातों से क्या लाभ ? एक ही लिखते हैं, आचरण में लाकर परताल लो, ठीक न हो तो लेखक के हाथ काट देना और जिह्वा निकाल डालना। ज़रा कान खोल कर सुन लो और दिल की आँख खोल कर पढ़ लो। प्यारे ! कूप में कूद कर नीचे न गिरना तो कदाचित् हो भी सके, परन्तु जगत् के किसी पदार्थ की चाह में पड़ कर क्लेशसे बच जाना कभी नहीं हो सकता। सूर्य्य उदय हो और प्रकाश न फैले, यह तो कदाचित् हो भी जाय; परन्तु चित्त में पवित्र भाव और ब्रह्मानन्द होने पर भी शक्ति, श्री आदि मानों हमारी पानी भरनेवाली दासी न हो जायँ, कभी नहीं हो सकता, कभी नहीं। मीनार पर चढ़ कर नक्कारे की चोट से पुकार दोः—

'सत्यमेव जयते नानृतम्' ॥ (मुण्ड० उप० ३, १, ६)

(सत्य ही जीतता है, झूठ नहीं)

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' ॥ (तैत्ति० उप० २, १, १)

(सत्य, चित् और अनन्त ब्रह्म है)

वह सत्य क्या है ?

तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचोविमुञ्चथ ॥

(मुण्ड० उप० २, २, ५)

(उसी एक आत्मा को जानो और दूसरी सारी बातें छोड़ दो)

बस एक आत्मज्ञान है अमृत रस की खान।
और बात बक बक बचन झक झक मरना जान॥

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ (श्वेत० उप० ३, ८)

(मुक्ति के लिये और कोई मार्ग नहीं है)

ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये॥

(कैवल्य उप० ६)

(उसे जान कर मृत्यु को उलांघ जाता है। इससे इतर और मार्ग मुक्ति का नहीं है)

मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति॥

(कठ० उप० ४, ११)

(जो यहां नानत्व देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है)

असन्नेव स भवति। असद्ब्रह्मेति वेद चेत्।
अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेनं ततो विदुरिति॥

(तैत्ति० उप० २, ६, १)

('असत् ब्रह्म है', ऐसा जो ब्रह्म को जानता है, वह स्वयं असत होता है। 'ब्रह्म है', ऐसा जो ब्रह्म को जानता है, तो लोग उसे सन्त कहते वा मानते हैं।)

कभी न छूटे पीड़ दुःख से जिसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं॥
जै नर राम नाम लिव नाहीं। सो नर खर कुक्कुर सूकर सम।
वृथा जियें जग माहीं॥ (तुलसीदास)

सूर सुजान सपूत सुलत्तण गणियन गुण गरुआई।
बिन हरि भजन इंदारुण के फल तजत नहीं करुआई॥

सो संगति जल जाय कथा नहीं राम की।
बिन खेती के बाड़ भला किस काम की॥
जो नयन कि बेनीर हैं बेनूर भले हैं॥

लक्ष्य

आत्मानꣳरथिनं विद्धि शरीरꣳ रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ (कठ० उप० १,३,३)

(आत्मा को रथ का मालिक जान और शरीर को रथ । पर बुद्धि को सारथी समझ और मन को लगाम ।)

शरीर रूपी बग्गी में जीवात्मा ने बैठकर, बुद्धि रूपी साईस द्वारा मन की लगाम डोरी से इन्द्रियों के घोड़ों को हाँकते हाँकते आख़िर जाना कहां है ? "विष्णोः परमं पदम्"

लक्ष्य तो ब्रह्म-तत्त्व है, ब्रह्म-साक्षात्कार बग़ैर सरेगी नहीं, अनात्म-दृष्टि दुःखरूप है । ख़ुशी ख़ुशी (उत्साहपूर्वक) चित्त में स्नेह मोह आदि रखते हो ? भैय्या ! काले नाग को गोद में दूध पिला पिला कर मत पालो । सत्य स्वरूप एक परमात्मा को छोड़ और कोई विचार मन में रखते हो ? बन्दूक़ की गोली कलेजे में क्यों नहीं मार लेते, मार्ग में कहाँ तक डेरे डालोगे ? रास्ते में कहाँ तक मेहमानियाँ खाओगे ? यहाँ दुनिया-सराय में माँ तो नहीं बैठी हुई ? आराम अगर भालते हो, तो चलो राम के धाम में ।

उपासना की आवश्यकता

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥
(कठ० उप० १, ३, ५)

(पर जो विज्ञानवान् नहीं होता, और जिस का मन सदा अयुक्त होता है, उस की इन्द्रियाँ दुष्ट सारथी के घोड़ों के समान उसके वश में नहीं होती ।)

विज्ञान रहित, अयुक्त मन वाले की इन्द्रियाँ बेबस बिगड़े

घोड़ों की तरह मंज़िल तक पहुँचना तो कहाँ, रथ को और रथ में बैठे को, कुओं और गढ़ों में जा गिराती हैं, जहाँ रोना और दाँत पीसना होता है। यदि इसी जन्म के घोर रौरव से बचना इष्ट हो, तो घोड़ों को सिधाना और सीधी राह पर चलाना रूपी यम-नियम की आवश्यकता है । पर लाख यत्न कर देखो, जब तक तुम्हारा साईस (सारथी) धुंदली आँखों वाला काना सा है, तब तक कीचड़ में डूबोगे, रेत में धँसोगे, गढ़ों में गिरोगे, चोटें खाओगे और चिल्लाओगे। बाबा! सांसारिक बुद्धि को सारथी बनाना दुःख ही दुःख पाना है। अब बात सुनो, फ़तह (जय) इसी में है कि अपनी मन रूपी बागडोरी दे दो, दे दो उस कृष्ण के हाथ, बस फिर कोई ख़तरा नहीं, वह इस संसार रूपी कुरुक्षेत्र से जय के साथ ले ही निकलेगा। रथ हांकने में तो वह प्रसिद्ध उस्ताद है। आवश्यकता है हरि को, रथ, घोड़े और बागें सौंप कर पास बिठाने की, अर्थात् उपासना की।

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः" ॥

(गीता १८, ६६)

(सारे धर्मों को त्यागकर मुझ एक ही की तू शरण ले, मैं तुझे सारे पापों से छुड़ा लूंगा। इस लिए शोक मत कर)

"संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते"

(गीता २, ६२)

(विषय-संग से काम उत्पन्न होता है, काम से क्रोध उत्पन्न होता है)

पदार्थ-कामना और विषय-वासना से सर्व साधारण पुरुषों की वह गति होती है, जैसे जल में पड़े हुए तुम्बे की आँधी और अब्धि के अधीन होगी। ऐसे अनर्थ का हेतु विषय-संग तो

हर समय ही रहे, और इस रोग की निवारक औषधि (उपासना, आत्मानुसंधान) कभी न की जाय, तो ऐसी आत्म-हत्या के बदले अवश्य,

"असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः" ॥

(ईश० उप० ३)

(सूर्य रहित और गाढ़े अन्धकार वाले लोक, ऐसे)

नरक में दारुण दुःख सहने ही पड़ेंगे। यदि कांटों पर पड़ जाने से परमेश्वर याद आता हो, तो प्यारे! जब देखो कि संसार के काम-धंधों में उलझ कर राम भूलने लगा है, झटपट अपने तईं नुकीले कांटों पर गिरा दो; और कुछ नहीं तो पीड़ के बहाने याद आ ही जायगा; परदे में रोना, दिल को पीटना, छिप कर डाढ़ें मारना भी अवश्य फ़ायदा करेगा।

उपासना दो प्रकार की

प्रसिद्ध हैः–प्रतीक और अहंग्रह।

प्रतीक उपासना में बाहर के पदार्थों में पदार्थ दृष्टि हटा कर ब्रह्म को देखना होता है। अहंग्रह उपासना में अपने अन्दर जो अहंता ममता कल्प रक्खी है, उससे पल्ला छुड़ा कर ब्रह्म ही ब्रह्म देखना होता है। यदि बाहर के प्रतीक को सत्य जान कर ईश्वरकल्पना उसमें की जाय, तो वह ईश्वर उपासना नहीं तिमिरपूजा (बुतपरस्ती) है। इसी पर व्यासजी के ब्रह्ममीमाँसा दर्शन के अध्याय ४ पाद १ सूत्र ५ में यूं आज्ञा की है।

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् ॥ (ब्रह्म सूत्र)

अर्थात् प्रतीक में ब्रह्मदृष्टि हो, ब्रह्म में प्रतीक भावना मत करो। और अहंग्रह उपासना के सम्बन्ध में यूं लिखा है।

आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च ॥ (ब्रह्ममीमांसा ४-१,३)

अर्थात् ब्रह्म को अपना आत्मा (अपना आप) बारम्बार

चिन्तन करो। वेद का यही मत है और यही उपदेश। इन दोनों प्रकार की उपासना में अभिप्राय और लक्ष्य एक ही है, वह क्या?

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत॥

(छां० उप० ३, १४, १)

(शान्त होकर इस दृश्य जगत् पर यह ध्यान जमाना चाहिये कि यह सब ब्रह्म है, क्योंकि यह जगत् उस ब्रह्म से उत्पन्न हुआ उसी में लीन होता और उसी में जीता है)

ठंडी छाती से अन्दर बाहर ब्रह्मही ब्रह्म देखो।

अथ खलु क्रतुमयः पुरुषः॥ (छां० उप० ३, १४, १)

(यह पुरुष क्रतुमय अर्थात् अपनी इच्छाओं और निश्चयों का पुतला है)

जैसा भी पुरुष का विचार और चिन्तन रहता है, वैसा ही वह अवश्य हो जाता है। जब ऐसा हाल है, तो ब्रह्मचिन्तन ही क्यों न दृढ़ किया जाय, अर्थात् अपने आप को ब्रह्मरूप ही क्यों न देखते रहें? इसी पर श्रुति का वचन है :—

"ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति"॥ (मुण्ड० उप० ३, २)

(जो इस परम ब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है)

अहंग्रह और प्रतीक उपासना दोनों में नाम-रूप संसार (बुत) को ढाना इष्ट होता है, बनाना नहीं। जल ब्रह्म है, स्थल ब्रह्म है, पवन ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है, गंगा ब्रह्म है, इत्यादि प्रतीक उपासना के रूप-दर्शक वाक्यों में जल, स्थल, पवन, आदि के साथ ब्रह्म को कहीं जोड़ना (संकलन करना) नहीं है। जैसे यह सर्प काला है, इसमें सर्प भी रहे है और काला भी। किन्तु यहाँ तो बाध समानाधिकरण का है, जैसे किसी भ्रांति वाले को कहें यह सर्प रस्सी है, यहाँ रस्सी काले रंग की तरह सर्प के साथ समान सत्ता वाली नहीं है, किन्तु

रस्सी ही है, सर्प है नहीं। इसी तरह सच्ची उपासना वह है कि धारारूप जल दृष्टि में न रहे, ब्रह्म चित्त में समा जाय, स्पंदरूप पवन दृष्टि से गिर जाय, ब्रह्मसत्ता मात्र ही भान हो, प्रतिमा में प्रतिमापन उड़ जाय, चैतन्य स्वरूप भगवान् की झाँकी हो। जैसे किसी प्रेम के मतवाले घायल ने प्यारे का प्रेमपत्र पढ़ा, उसकी दृष्टि तो प्यारे के स्वरूप से भर गई, अब पत्र किस को दीख पड़े। (गोपियाँ उद्धव से कहती हैं, यह पाती अब कहाँ रक्खें? छाती से लगाती हैं तो जल जायगी, आँखों पर धरती हैं तो गल जायगी)। उपासना में मग्न के लिये इन्द्रियज्ञान तो एक छेड़ जैसी रह जायगी। प्यारे ने चुटकी भरी, चुटकी वस्तुतः कोई चीज़ नहीं है, प्यारा ही वस्तु रूप है। इसी तरह सब इन्द्रियों का ज्ञान एक ही एक प्यारे की छेड़छाड़ रूप प्रतीत होगी:—

आई पवन जब ठुम ठुमक, लाई बुलावा श्याम का॥

भाई! उपासना तो इसी का नाम है जिसमें ज़बान को तो क्यों हिलना है, शरीर की हड्डी और नाड़ी तक के परमाणु परमाणु हिल जाँय। यह नहीं तो, आँख मूँदो, नाक मूँदो, कान मूँदो, मुख मूँदो, गाओ चाहे चिल्लाओ, तुम्हारी उपासना बस एक चित्र-रूप है, जिसमें जान नहीं। बड़ा सुन्दर चित्र सही, रवि वर्म्मा का मान लो, पर ख़ाली तसवीर से क्या है?

पदार्थों में इस ब्रह्मदृष्टि को दृढ़ करना और विषय-भावना का मिटाना रूपी उपासना, कुछ वैसा अध्यारोप (कल्पना) शक्ति को बढ़ाना और बरतना न जान लेना, जैसा शतरंज में काठ के टुकड़ों को बादशाह, वज़ीर, हाथी, घोड़ा प्यादा मान लेना होता है। जल ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है, प्राण ब्रह्म है, अग्नि ब्रह्म है, मन ब्रह्म है, इत्यादि उपासना के रूप

तो अवस्तु को मिटाकर वस्तुभावना जमाते हैं। यदि यह खाली मान लेना और कल्पना मात्र भी हो, तो यह वैसी कल्पना है, जैसे बालक गुरुजी के कहने से गुणा करने और भाग देने की रीति को मान लेता है। भाग देने और गुणा करने की यह विधि क्यों ऐसी है और क्यों नहीं, और इस रीति द्वारा उत्तर के ठीक आ जाने में कारण क्या है, यह बातें तो पीछे आयँगी, जब बीजगणित (अलजेबरा) पढ़ेगा। परन्तु उस गुर (रीति) पर विश्वास करने से उदाहरण सब अभी ठीक निकलने लग पड़ेंगे। पर ख़बरदार ! गुरुजी के बताये हुये गुर (रीति) को ही और का और समझकर मत याद करो।

प्रतिमा क्या है ? जिससे मान निकाला जाय, मापा जाय, तोला जाय, (unit of measurement)। जब तोलने का बट्टा छोटा हो, तो तोल का मान बड़ा होता है। जैसे तोलने का बट्टा एक पाव होने पर यदि किसी चीज़ का मान चार हो, तो बट्टा एक छटाँक होने पर मान सोलह होगा। अब हिन्दू धर्म के यहाँ प्रतीक और प्रतिमा क्या थे ? ईश्वर को तोलने का बट्टा। हिन्दू धर्म में अति उच्च सूर्य, चन्द्रमा रूपी प्रतीक भी हैं। इससे उतर कर गुरू ब्राह्मण रूप हैं, गौ गरुड़ रूप भी, अश्वत्थ-वृन्दा रूप भी, कैलास-गंगा रूप भी, और ठिगने से गोलमोल काले पत्थर को भी प्रतिमा (प्रतीक) रूप स्थापित कर दिया है। यह छोटे से छोटा प्रतीक क्या परमेश्वर को तुच्छ बनाने के लिये था ? नहीं जी, प्रतीक का छोटा करना इसलिये था, कि ईश्वर भाव और ब्रह्मदृष्टि का समुद्र बह निकले ; जब उस नन्हे से पत्थर को भी ब्रह्म देखा, तो बाक़ी अखिल पदार्थ और समस्त जगत् तो अवश्यमेव ब्रह्मरूप भान हुआ चाहिये। परन्तु जिसने मूर्त्ति पूजा इस

समझ से की, कि यह ज़रा सा पत्थर ही ब्रह्म है, वह हो गया "पत्थर का कीड़ा"।

परा पूजा

पदार्थ के आकार, नाम रूप आदि से उठ कर उसके आनन्द और सत्ता अंश में चित्त जमाना, पद या शब्द से उठ कर उसके अर्थ में जुड़ने की तरह चर्मचक्षु से दृश्यमान सूरत को भूल कर ब्रह्म में मग्न होना रूपी जो उपासना है, क्या यह किसी न किसी नियत प्रतीक द्वारा ही करना चाहिये ? प्रतीक तो बच्चे की पाटी की तरह है, उस पर जब लिखने का हाथ पक गया, तो चाहे जहाँ लिख सके। ब्रह्मदर्शन की रीति आ गई, तो जहाँ दृष्टि पड़ी ब्रह्मानन्द लूटने लगे। प्रतीक उपासना तब सफल होती है जब वह हमें सर्वत्र ब्रह्म देखने के योग्य बना दे। सारा संसार मन्दिर बन जाय, हर पदार्थ राम की झांकी कराये, और हर क्रिया पूजा हो जाय।

जेता चलूँ तेती प्रदखना, जो कुछ करूँ सो पूजा।
गृह उद्यान एक सम जान्यो, भाव मिटाइयो दूजा॥

सच्ची और जीती उपासना जिनके अन्दर यौवन को प्राप्त होती है, उनकी अवस्था श्रुति (तैत्तिरीय शाखा) यूं प्रतिपादन करती है।

यावद्ध्रियते सा दीक्षा, यदश्नातितद्धविः, यत्पिबति तदस्य सोमपानं, यद्रमते तदुपसदो, यत्संचरत्युपविशत्युत्तिष्ठते च, प्रवर्ग्यो, यन्मुखं तदाहवनीयो, याव्याहृतिराहुतिर्यदस्य विज्ञानं तज्जुहोति॥ (महानारायणोपनिषद् खण्ड २५)

(जो इस प्रकार—यज्ञ पुरुष—का धैर्य्य धारण करता है, वही दीक्षा है, जो वह भोजन करता है, वही उसकी हवि है। जो वह पीता है,

वही उसका सोमपान है। जो क्रीड़ा करता है, वही उसका उपसद् (सेवा पूजा) है। जो उसका चलना, बैठना और खड़ा होना है, वही उसका प्रवर्ग्य है। जो उसका मुख है, वह हवन योग्य वह्नि है। जो व्याहृति है, वही उसकी आहुति है। जो इसका विज्ञान है, वही उसका हवन करना है॥

मुक्ति, शांति और सुख चाहो, तो भेद-भाव का मिटाना और ब्रह्मदृष्टि का जमाना ही एक मात्र साधन है।

यह दृष्टि क्यों आवश्यक है? क्योंकि वस्तुतः यही वार्ता है:—

"ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या।"

(ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है)

अगर गर्मी, भाप, बिजली आदि के क़ानूनों के अनुसार रेल, तार, बैलून आदि यन्त्र बनाओगे, तो चल निकलेंगे, और क़ानून को भुलाकर लाख यत्न करो, अँधेरी कोठरी से कहाँ निकल सकते हो? अब देखो, यह आध्यात्मिक क़ानून (अभेद भावना) तो तत्वविज्ञान (साइंस) के सब नियमों का नियम है, जो वेद में दिया है। इसे वर्त्ताव में लाते हुये क्योंकर सिद्धि हो सकती है? अमरीका के महात्मा अमरसेन Emerson) ने अपने निज के प्रति दिन की अनुभूत परीक्षा (रूहानी तजरबे) को पक्षपात रहित देख देख कर क्या सच कह दिया है "किसी वस्तु को दिल से चाहते रहना, अथवा दांत निकाल कर अधीन भिखारी की तरह दूसरे की प्रीति का भूखा रहना, यह पवित्र प्रेम नहीं है। यह तो अधम नीच मोह है। केवल जब तुम मुझे छोड़ दो और खो दो, और उस उच्च भाव में उड़ जाओ जहाँ न मैं रहूँ न तुम, तब तो मुझे खिंच कर तुम्हारे पास आना पड़ता है, और तुम मुझे अपने चरणों

में पाओगे। जब तुम अपनी आँखें किसी पर लगा दो, और प्रीति की इच्छा करो, तो उसका उत्तर तिरस्कार और अनादर बिना कभी और कुछ नहीं मिला, न मिलेगा, याद रक्खो"।

भाई! इसमें पन्थाई झगड़ों की क्या आवश्यकता है? हाथ कङ्गन को आरसी क्या है? अगर क्लेशरूपी मौत मंज़ूर नहीं, तो शान्तिपूर्वक अपने चित्त की अवस्था और उसके दुःख-सुखरूपी फल पर एकान्त में विचार करना आरम्भ कर दो, सच झूँठ आप निथर ही आयगा। अगर तुममें विचार-शक्ति रोगग्रस्त नहीं है, तो ख़ुद बख़ुद यह फ़ैसला करोगे कि चित्त में त्यागअवस्था और ब्रह्मानन्द हुए ऐश्वर्य्य, सौभाग्य इस तरह हमारे पास दौड़ते आते हैं, जैसे भूखे बालक माँ के पास—

यथेह क्षुधिता बाला मातारं पर्युपासते॥ [सामवेद]

जब हमारे अन्दर सच्चा गुण और शान्ति रूपी विष्णु होगा, तो लक्ष्मी अपने पति की सेवा निमित, हज़ारों में, हमारे दरवाज़े पर अपने आप पड़ी रहेगी। कई मनुष्य शिकायत करते हैं कि भक्ति और धर्म करते करते भी दुःख दरिद्र उन्हें सताते हैं, और अधर्मी लोग उन्नति करते जाते हैं। यह दुःखिया भूलेभाले कार्य-कारण के निर्णय करने में अन्वयव्यतिरेक को नहीं वर्त रहे। इन को यह मालूम ही नहीं कि धर्म क्या है और भक्ति क्या। स्वार्थ और ईर्षा (देहाभिमान) को तो उन्होंने छोड़ा ही नहीं, जिसका छोड़ना ही धर्म को आचरण में लाना था; अब उनका यह गिला कि, धर्म को वर्तते वर्तते दुःख में डूबे हैं, क्योंकर युक्त वा सत्य हो सकता है? अगर धर्म को वर्ता होता, तो यह शिकायत, जिसमें स्वार्थ और ईर्षा दोनों मौजूद हैं, कभी न करते। वह दान और भजन भी धर्म में शामिल नहीं हो सकते, जिनसे

अहङ्कार और अभिमान बढ़ जाँय। जहाँ पापी फलता—फूलता पाते हो, वहाँ सुखभोग का कारण ढूँढ़ो तो उस पुरुष का चित्त आत्माकार और एकान्त रहा था, जो तुमने देखा नहीं, और उसके पाप कर्म का परिणाम खोजो तो महा क्लेश होगा, जो अभी तुमने देखा नहीं।

तुम पर किसी ने व्यर्थ अत्याचार किया है, तो अहङ्कार-रहित हो कर पक्षपात छोड़ कर तुम अपना अगला पिछला हिसाब विचारो। तुमको चाबुक केवल इसलिये लगा कि तुमने कहीं अयुक्त रजोगुण में दिल दे दिया था, आत्म-सन्मुख नहीं रहे थे, राम के क़ानून को तोड़ बैठे थे। मन के ब्रह्माकार न रहने से यह सज़ा मिली, अब उस अनर्थकारी वैरी से जो बदला लेने और लड़ने लगे हो, ज़रा होश में आओ कि अपनी पहली भूल को और भी चौगुणा पाँचगुणा करके बढ़ा रहे हो, और प्रति क्रिया से उस अपराधीरूप जगत् के पदार्थ को सत्य बना रहे हो और ब्रह्म को मिथ्या।

बच्चा! याद रक्खो, ऐंठो तो सही उरद के आटे की तरह, मुक्के न खाओ और बार बार पटके न जाओगे तो कहना। प्रायः लोग औरों के क़सूर पर ज़ोर देते हैं और अपने तईं बेक़सूर ठहराते हैं। हाँ प्रत्यगात्मारूप जो तुम हो बिलकुल निष्कलङ्क ही हो। पर अपने तईं शुद्ध आत्मदेव ठाने भी रहो, चुपड़ी और दो दो क्योंकर बनें? अपने आप का शरीर मन बुद्धि से तादात्म्य करना, और बन कर दिखाना निष्पाप, यही तो घोर पाप है बाक़ी सब पापों की जड़। अब देखो जो रुद्ररूप क़ानून तुमको सत्य स्वरूप आत्मा से विमुख होने पर रुलाए बिना कभी नहीं छोड़ता, वह ईश्वर उस अत्याचारी तुम्हारे वैरी की बारी क्या मर गया है? कोई उस त्र्यम्बक की आँखों में

नहीं डाल सकता, पस तुम कौन हो ईश्वर के क़ानून को अपने हाथ में लेनेवाले ? तुम को पराई क्या पड़ी अपनी निबेड़ तू ! बदला लेने का ख़याल विश्वासशून्य नास्तिकपन है।

ओ प्यारे, मेरे अपना आप, द्वेषातुर मूर्ख ! जितना औरों को चने चबवाए चाहता है, उतना अपने तईं ब्रह्मध्यान की खाँड खीर खिला। वैरी का वैरीपन एकदम उड़ न जाय तो सही। ब्रह्म है और ब्रह्म को भूल जाना ही दुःख रूप झमेला है। जो तुम्हारे अन्दर है, वही सबके अन्दर है।

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ॥ (कठ० उप० १, ४, १०)

(जो यहाँ हैं वही वहाँ है, और जो वहाँ है वही फिर यहाँ है)

जब तुम अन्दरवाले से बिगड़ते हो, तो जगत तुमसे बिगड़ता है ; जब तुम अन्दर का अन्तर्यामी रूप बन बैठे, तो जगत् रूपी पुतलीघर में फ़साद फिर कैसा ? किस काठ के टुकड़े से चूं भी हो सकती है ?

"यो मनसि तिष्ठन्मनसोऽन्तरो, यं मनो न वेद, यस्य मनः शरीरं, यो मनोऽन्तरो यमयति, एष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः"।

(बृह० उप० ३, ७, २०)

(जो मन में रह कर मन से अलग है, जिस को मन नहीं जानता, जिसका मन शरीर है, जो मन के भीतर रह कर मन को नियम में रखता है, यह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है।)

जब तुम दिल के मक्कर छोड़ कर सीधे हो जाओ, तो तुम्हारे भूत, भविष्य, वर्त्तमान, तीनों काल उसी दम सीधे हो जायँगे।

प्यारे ! जैसे कोई मनुष्य मोटा ताज़ा बग्गी में जा रहा हो, तो तुम जानते हो कि उसकी मोटाई फ़िटन में के गद्दे तकियों से नहीं आई, उसकी पुष्टाई का कारण हिन्हिनाती हुई खच्चरें नहीं हैं, बल्कि अन्न को पचाने से शरीर बढ़ा व फैला है। इसी

तरह जहाँ कहीं ऐश्वर्य्य और सौभाग्य देखते हो, उसका कारण किसी की चालाकी, फन्द फ़रेब कभी नहीं हो सकते। क़समें दिला कर पूछ देखो। जिस हद्द तक चालाकी फन्दफ़रेब वर्ते गये, उस हद्द तक ज़रूर हानि (नाकामयाबी) हुई होगी। आनन्द, सुख का कारण और कुछ नहीं था सिवाय ज्ञातत: अथवा अज्ञातत: चित्त में ब्रह्मभाव समाने के। यह अन्न खाते तुमने उसको नहीं देखा तो क्या। और वह .खुद भी इस बात को भूल गया है तो क्या (बच्चे कई दफ़ा रात को दूध पीते हैं और दिन को भूल जाते हैं), पर भाई! तेल को तो तिलों ही से आना है। सुख, आनन्द, इक़बाल कभी नहीं, कभी नहीं आ सकता बग़ैर आत्माकारवृत्ति रहने के।

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥

(श्वेता० उप० ६, २०)

जब लोग चर्म की तरह आकाश को लपेट सकेंगे, तब देव को जाने विना दुःख का अन्त हो सकेगा।

दृष्टान्त, प्रमाण, दलील व अनुमान से तो यह सिद्ध है ही, पर मैं इस समय युक्ति, उक्ति आदि को अपील नहीं करता, मैं तो बहुत नेड़े (समीप) का पता देता हूं। यह तुम हो और यह तुम्हारी दुनिया है। अब देख लो, ख़ूब आँखें खोल लो। जब तुम्हारे चित्त में दुनिया के सम्बन्धों को तुलना ईश्वर—भाव से अधिक हो जाती है, जब 'मैं, मेरा' भाव चित्त में त्याग और शान्ति को नीचे दबाता है, तो जिस दर्जे तक "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" रूपी सत्य की आचरण से उपेक्षा करते हो, उसी दर्जे तक दुःख, खेद, क्लेश तुम्हें मिलता है, और अन्ध कूप में गिरते हो। वनस्पति (Botany) और रसायन विद्या

(Chemistry) की तरह निज के तजरुबा और मुशाहिदा अर्थात् परीक्षा और विचार (observation and experiment) से यह सिद्धान्त सिद्ध है।

जगत् में रोग एक ही है और इलाज (औषध) भी एक ही। चित्त से अथवा क्रिया से ब्रह्म को मिथ्या और जगत् को सत्य जानना। एक यही विपरीत वृत्ति कभी किसी दुःख में प्रकट होती है, कभी किसी में। और हर विपत्ति की औषधि शरीर आदि को "हैं नहीं" समझ कर ब्रह्माग्नि में ज्वाला रूप हो जाना है। लोग शायद डरते हैं कि दुनिया की चीज़ों से प्रेम किया जाय तो प्रेम का जवाब भी पाते हैं, परन्तु परमेश्वर से प्रेम तो हवा को पकड़ने जैसा है, कुछ हाथ नहीं आता। यह धोखे का ख़याल है, परमेश्वर के इश्क़ में अगर हमारी छाती ज़रा धड़के, तो उसकी एकदम बराबर धड़कती है, और हमें जवाब मिलता है, बल्कि दुनिया के प्यारों की तरफ़ से मुहब्बत का जवाब तब ही मिलता है, जब हम उनकी तरफ़ से निराश होकर ईश्वरभाव ही की ओर झुकते हैं।

किसी ने कहा लोग तुम्हें यह कहते हैं, कोई बोला लोग तुम्हें वह कहते हैं; कहीं हाकिम बिगड़ गया, कहीं मुक़द्दमा आ पड़ा, कहीं रोग आ खड़ा हुआ। ओ भोले महेश! तू इन बातों से अपने तकले में व्यंग मत पड़ने दे, भरें में मत आ, तू एक न मान, ब्रह्म बिना दृश्य कभी हुआ ही नहीं। चित्त में त्याग और ब्रह्मानन्द को भर तो देख, सब बलायें आँख खोलते खोलते सात समुद्रों पार न बह जायँ, तो मुझको समुद्र में डुबो देना।

एक बालक को देखा, दूसरे बालक को धमका रहा था, "आज पिता से तू ऐसा पिटेगा, ऐसा पिटेगा, कि सारी

उमर याद पड़ा करे," दूसरे बालक ने शान्ति से उत्तर दिया "अगर वह मुझे मारेंगे तो भले ही को मारेंगे न, तेरे हाथ क्या लगेगा ?" इस बालक के बराबर विश्वास तो हम लोगों में होना चाहिये, भयंकर भयानक भावि की भिनक पाकर बगुले की तरह गरदन उठा कर, घबरा कर, "क्या ? क्या ?" क्यों करने लगें ? आनन्द से बैठ मेरे यार ! वहाँ कोई और नहीं है, तेरा ही परम पिता, बल्कि आत्मदेव है, अगर मारेगा भी तो भले के लिये। और अगर तुम उसकी मर्ज़ी पर चलना शुरू कर दो, तो वह पागल थोड़ा है, कि यूंही पड़ा पीटे ?

एकाग्रता में विघ्न

विघ्न १; मिथ्या कारण-सत्ता में विश्वास।

अपने तईं पूरा पूरा और सारे का सारा परमात्मा के हवाले कर देने का मज़ा तब तक तो आ नहीं सकता, जब तक संसार के पदार्थों में कारणत्व सत्ता भान होती रहेगी, अथवा जब तक ईश्वर हर बात का एक मात्र कारण प्रतीत न होने लगेगा। अरबी, फ़ारसी, उर्दू में कारण को "सबब" कहते हैं, और अरबी में सबब का पहला अर्थ है "डोर-रस्सा"। रूम देश का स्वामी ज्वाल (जो उन लोगों की भाषा में 'मौलाना जलाल' इस नाम से प्रसिद्ध है) लिखता है, "यह कारणकार्यभाव रूपी रस्सा जो इस जगत् कूप में सब घटों के गले में बँधा पाते हो, यह क्यों फिरता है ? इस बे प्राण रज्जु ने तो क्या फिरना था, कूप के सिर पर देव चर्ख़ी घुमा रहा है, पर हमें रस्सा ही सब घटियन्त्र को चलाता भान होता है, 'कारणं कारणानां' तो देव ही है।"

स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न वाह्यांछब्दांछक्नुयाद् ग्रह-

णाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः॥ स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न वाह्यांछब्दांछक्नुयाद् ग्रहणाय शङ्खस्य तु ग्रहणेन शङ्खध्मस्य वा शब्दो गृहीतः॥ स यथा वीणायै वाद्यमानायै बाह्यांछब्दांछक्नुयाद् ग्रहणायवीणायै तु ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृहीतः॥

(बृह० उप० ४, ५, ८-१०)

(जैसे नगारा वा धौंसा जब पीटा जाता है तो उसके वाह्य शब्द पकड़े नहीं जा सकते, पर नगारे को अथवा नगारे के पीटने वाले को पकड़ लेने से नगारे के शब्द पकड़े जाते हैं। जैसे शंख जब पूरा जाता है तो उसके बाहर के शब्द नहीं पकड़े जा सकते। पर शंख वा शंख बजाने वाले को पकड़ने से शंख के शब्द पकड़े जाते हैं और जैसे बीणा जब बजाई जा रही है, तो बीणा के वाह्य शब्द पकड़े नहीं जा सकते, पर बीणा अथवा बीणा बजाने वाले को पकड़ने से बीणा के शब्द पकड़े जाते हैं।)

जैसे ढोल, मृदंग, शङ्ख, वीणा, हारमोनियम आदि के आवाज़ सब अपने आप ही पकड़े जाते हैं, जब हम इन बाजों वा यन्त्रों को अथवा इनके बजाने वालों को क़ाबू में करते हैं। इसी प्रकार संसार की 'कार्यकारणशक्ति' एकदम हमारे अधीन हो जायगी, जब हम एक परमात्मदेव को पक्की तरह पकड़ लेंगे। किसी बड़े आदमी की सिफ़ारिश, विद्या, बल, धन-माल, मकान आदि को जो अपनी आशापूर्ण में कारण और हेतु ठान बैठते हो, और आत्मदृष्टि का आश्रय नहीं लेते, धोखे में गिरते हो, दुःख पाओगे।

कहते हैं, कृष्ण जब गोपिकाओं का दूध, माखन आदि खाता था, तो कुछ दधि आदि घर में बँधे हुए बछड़ों की थोथनी पर लगा देता था। घर वाले लोग अपने ही बछड़ों को चोर समझ कर उन गरीबों को बड़े मारते पीटते और अपनाही

नुक़सान करते थे। प्यारे! कारण तो हर बात का एक मात्र भगवान् है, बाक़ी कारण तो केवल चिट्टी थोथनीवाले बेचारे बछड़े हैं। कंगले दीवालियों के नाम हज़ारीलाल, लखपतराय, करोड़ीमल आदि रक्खे हुए हैं। क्यों चक्कर में मारे मारे फिरते हो? ऊपर के सांसारिक मिथ्या लिंग, हेतु, आदि पर मत भूलो, यह असली कारण नहीं। जब तक लड़की विवाही नहीं जाती, तो गुड़ियों से जी बहलाती है। कारणों का कारण रूप परब्रह्म जब मिल सकता है, तो मिथ्या कारणों से जी बहलावा क्यों करना?

भानमती का तमाशा हुआ, पुतलियाँ नाचती हैं। "एक ने दूसरी को बुलाया, इसलिये वह आ गई। एक ने दूसरी को पोटा, इसलिये वह मर गई" इस प्रकार के कार्य्यकारण भाव पर प्रायः मनुष्य भूल रहे हैं, असली कारण तो एक पुतलीगर (अन्तर्यामी सूत्रधारी) है।

गीत या बाँसुरी सुनने लगे, एक स्वर के बाद दूसरा स्वर आया, एक शब्द दूसरे शब्द को अवश्य लाया, इन शब्दों और स्वरों का आपस में आवश्यक लगाव, इस प्रकार के कार्यकारण भाव पर लोग भूल बैठते हैं, असली कारण तो गाने वाला (वंसीधर) है।

एक ऊंचा मकान था, "शिखर की मंज़िल का आश्रय क्या है, उससे निचली मंज़िल, और उसका आश्रय उससे नीचे की मंज़िल, फ़र्श की मंज़िल बाक़ी सब का आश्रय और कारण।" इस प्रकार के कार्यकारण सम्बन्ध पर लोग भूल बैठते हैं। असली सजीवित कारण तो इन सब मंज़िलों का मकान बनाने वाला (कर्त्ता, हर्त्ता) है।

संसार के कारणों को आशा की आँख से तकना तो खारी

समुद्र में डूबते को तिनके का सहारा है। जब गोलचन्द्र (कृष्ण) को वहाँ सुदर्शन तो जुड़ा नहीं, रथ का चक्र उठा कर ही अपनी प्रतिज्ञा तोड़ ली, तो (भीष्म) बुड्ढे को भी यह लड़कपन देख बड़ी हँसी आई। अब फिर वही काम न होने पाय। यह चर्मचक्षु से नज़र आने वाले कारण, आश्रय, सहारे, इनको तकना तो अनुचित रथ के चक्र को उठाना है। इनसे क्या बनेगा? तुम अपने असली स्वरूप को तो याद करो, आँखें खोलो, किस चक्कर में पड़े हो? किस झगड़े में अड़े हो? किस कलकल में फँसे हो? तुम तो वही हो, वही। ज़रा देखो अपने असली सुदर्शन की तरफ़, तुम्हारे भय से सूर्य काँपता है, तुम्हारे भय से पवन चलती है, तुम्हारे ख़ौफ़ से समुद्र उछलता है, तुम्हारे चाबुक से मौत मारी मारी फिरती है।

भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः।
भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चम इति॥

(तैत्ति० उप० २, ८, १)

(इस ब्रह्म के भय से वायु चलती है, इसके भय से सूर्य उदय होता है, और इसी के भय से अग्नि, इन्द्र और पाँचवा मृत्यु भागता फिरता है।)

यह डर से मेहर* आ चमका, अहाहाहा, अहाहाहा।
उधर मह† बीम‡ से लपका, अहाहाहा, अहाहाहा॥
हवा अठखेलियाँ करती है, मेरे इक इशारे से।
है कोड़ा मौत पर मेरा, अहाहाहा, अहाहाहा॥

अरे प्यारे! विषयों के वश में रहना तो पराधीनता में मरना है, इस बेबसी का जीना तो शरीर को क़बर बना कर मुर्दे

*सूर्य। †चन्द्र। ‡डर।

की तरह सड़ना है। "निर्ममो निरहंकारः" हुए आत्म-ज्योति शरीर में से इस प्रकार फैलती है, जैसे फ़ानूस में से प्रकाश। जिस कार्य में ऊपर के लक्षण देख कर अनुमान के आश्रय आशा की पाश में दिल फँसा दिया जाय, वह कार्य कभी नहीं होगा। जिनको अनुमान और लक्षण मान रक्खा है, मनुष्य को मिथ्या संसार में इस प्रकार फँसाते हैं, जैसे मछली को मांस की बोटी जाल में (कुंडी में)। जब ऊपरी कारणों को दिल में न जमा कर, स्वार्थांश को त्याग कर, कोई भी कार्य इस भावना से किया जाय, "हे राम ! यह तुम्हारा ही काम है, तुम्हारा है इसलिये मैं अपना समझता हूँ, जो तुम्हारी मर्ज़ी सो मेरी मर्ज़ी, कार्य के होने न होने में मुझे हानि नहीं, लाभ नहीं, मेरा आनन्द तो केवल तुम्हारे साथ अभेद रहने में है, काम को यदि सँवार दो तो वाह वाह ! बिगाड़ दो तो वाह वाह !" जब सच्चे दिल से यह भावना और यह दृष्टि हो, तो क्या दुनिया और दुनिया के क़ानूनों की शामत आई है कि चाकरों की तरह तत्काल सब काम न करते जाँय ? भला राम के काम में भी अटकाव हो सकता है ? भगवद्गीता के मध्य में जो श्लोक कि गीता को आधा इधर और आधा उधर गुरुत्वकेन्द्र (centre of gravity) की तरह तोल देता है, यह है:—

अनन्याश्चिन्तयंतो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ (गी० ९, २२)

(अनन्य चित्त से चिन्तते हुए जो लोग मेरी उपासना करते हैं, उन नित्य युक्त पुरुषों का योग क्षेम मैं अपने ऊपर लेता हूँ।)

भगवान् का यह तमस्सुक (इक़रारनामा) तब भी झूठ नहीं होगा जब अग्नि की ज्वाला नीचे को बहने लगे, और सूर्य पश्चिम से उदय होना आरम्भ कर दे और पूर्व में अस्त।

यार ! मनुष्य जन्म पाकर भी हैरान और शोकातुर रहना बड़ी शर्म (लज्जा) की बात है। शोक चिन्ता में वे डूबें जिनके मा बाप मर जाते हैं, तुम्हारा राम तो सदा जीता है, क्या ग़म ? ज़रा तमाशा तो देखो, छोड़ दो शरीर की चिन्ता को, मत रक्खो किसी की आस, परे फेंको वासना कामना, एक आत्म-दृष्टि को दृढ़ रक्खो, तुम्हारी ख़ातिर सब के सब देवता लोहे के चने भी चाब लेंगे।

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे॥

(शु० यजु० अ० ३१ मं० २१)

(देवतागण प्रकाशस्वरूप ब्रह्मज्योति आदित्य को प्रकट करते हुये पहिले यह बोले कि हे आदित्य ! जो ब्राह्मण आपको इस प्रकार प्रकट-जानेगा, उसके देवता वश में होंगे। अर्थात् ब्रह्म की यथायोग्य उपासना से हृदय में प्रकाश प्रकट होता है। ब्रह्मज्योति प्रकट होने से उसका ब्रह्म में अधिष्ठान हो जाता है, तब सब देवता उसके वशीभूत हो जाते हैं।)

सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति॥ (बृ० उप० ४, १, ३)
(सब पदार्थ उसकी ओर झुकते हैं।)
सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति॥ (तैत्ति० उप० १, ५, ३)
(सारे देवता इसके लिये बलि लाते हैं।)
न पश्योमृत्युं पश्यति, न रोगं, नोत दुःखतां।
सर्वं ह पश्यः पश्यति, सर्वमाप्नोति सर्वशः इति॥

(छां० उप० ७, २६, २)

(जो यह देखता है कि "यह सब कुछ आत्मा ही है" वह न मृत्यु को देखता है, न रोग को और न ही दुःख को। ऐसा देखने वाला सब वस्तुओं को देखता है और सर्व प्रकार से सब वस्तुओं को प्राप्त होता है।)

कोई सन्दिग्ध शब्दों में तो वेद ने कहा ही नहीं, "जब सर्वात्म दृष्टि हुई तब रोग, दुःख, और मौत पास नहीं फड़क सकते, आत्मा को जाने क्या नहीं जाना जाता, और हर प्रकार से हर पदार्थ मिल जाता है।

विघ्न २; द्वेष दृष्टि।

आनन्द धाम को चित्त चला तो वैरी विरोधी का ख़याल डाकू रूप होकर चित्त को ले उड़ा। यूरप में एक दिन एक तत्वविज्ञान का लायक़ डाक्टर (आचार्य) अपने पास आने वालों की कुछ निन्दा सी करने लगा। उससे पूछा कि "आप शिकायत करते हो?" तो बोला "नहीं, मैं उनके चित्त की अध्यात्म-दशा पर विचार करता हूँ" (I study the psychology of their minds)। दुनिया में हम लोग बराबर यही तो करते हैं। द्वेष-दृष्टि (और दुष्ट भाव) को कोई श्रेष्ठ सा नाम देकर आँखों पर परदा डाल लिया, और इस सर्पनी को बराबर छाती से लगाये फिरे। फिर जब कहा गया "प्यारे डाक्टर! सम्बन्धवालों की अध्यात्म-दशा अकेली विचार के योग्य नहीं होती। अपनी आभ्यन्तर दशा भी उसके साथ साथ विचारणीय है। साथी जो बिगड़े चित्तवाले मिले हैं, तो क्या आज कल आप की आभ्यन्तर अवस्था बिलकुल दूषण-रहित थी?" डाक्टर आदमी था सच्चा, कुछ देर चुप रहकर विचार करके बोला, "स्वामिन्! कहते तो बिलकुल सच हो" वास्तव में जैसा मेरा चित्त होता है, वैसे चित्त और स्वभाव मेरे पास आकर्षित हो जाते हैं, औरों की अवस्था पर भला बुरा चिन्तवन करते रहने से कभी झगड़ा निपटता भी नहीं, उन लोगों को क्या पकड़ूं, सब मनों का मन मैं हूँ, सब चित्तों का चित्त मैं हूँ। अन्दर से ऐसी एकता है कि अपने तईं शुद्ध करते ही सब

शुद्ध ही शुद्ध पाता हूँ। समीप का इलाज (अपने तईं ब्रह्ममय कर देना) तो हम करते नहीं, दूर के बन्दोबस्त (औरों के सुधार) को दौड़ते हैं। न यह होता है न वह। ईश्वर-दर्शन तो तब मिलेगा जब सांसारिक दृष्टि से प्रतीयमान वैरी विरोधी निन्दक लोगों को क्षमा करते हम इतनी देर भी न लगायँ जितना श्री गंगा जी तिनकों को बहा ले जाने में लगाती है, या जितनी आलोक किरणें अन्धकार के उड़ाने में लगाती हैं।

जब तक सर्व पदार्थों में *सम धी नहीं होती, तब तक समाधि कैसी? विषम दृष्टि रहते, योग समाधि और ध्यान तो कहाँ, धारणा भी होनी असम्भव है। सम दृष्टि तब होगी जब लोगों में भलाई बुराई की भावना उठ जाय। और यह क्योंकर उठे? जब लोगों में भेद-भावना उठ जाय, और पुरुषों को ब्रह्म से भिन्न मान कर जो अच्छा बुरा कल्पना कर रक्खा है, न करें। समुद्र में जैसे तरंगें होती हैं, कोई छोटो कोई बड़ी, कोई ऊँची कोई नीची, कोई तिर्छी कोई सूधी, उनकी सत्ता समुद्र से अलग नहीं मानी जाती, उनका जीवन भिन्न नहीं जाना जाता। इसी तरह अच्छे बुरे आदमी, और अमीर ग़रीब लोग तो तरंगें हैं, जिनमें एक ही ब्रह्म-समुद्र ढाढ़ें मार रहा है, अहाहाहा! अच्छे बुरे पुरुषों में जब हमारी जीव-दृष्टि उठ जाय और उनको ब्रह्मरूपी समुद्र की लहरें जान लें, तो राग-द्वेष की अग्नि बुझ जायगी और छाती में ठंढक पड़ जायगी। जो लहर ऊँची चढ़ गई है, वह अवश्य नीचे गिरनी है, इसी तरह जिस पुरुष में खोटापन समा गया है, उसे अवश्य दुःख पाना ही है। परन्तु लहरों के ऊँच और नीच भाव को प्राप्त

*समान बुद्धि अर्थात् सम दृष्टि।

होते रहने पर भी समुद्र की (पृष्ठ) को क्षितिज धरातल (horizontal) ही माना है। इसी तरह बीज रूप लोगों के कर्म और कर्म फल को प्राप्त होते रहने पर भी ब्रह्मरूपी समुद्र की समता में फ़र्क़ नहीं पड़ता। लहरों का तमाशा भी क्या सुखदायी और आनन्दवर्द्धक होता है, पर हाँ जो पुरुष उनसे भीग जाय या डूबने लगे, उसके लिये तो उपद्रव-रूप है। समुद्र-दृष्टि होने से सम धी और समाधि होगी।

उपासना की जान समर्पण और आत्मदान है, यदि यह नहीं तो उपासना निष्फल और प्राण रहित है। भाई! सच पूछो तो हर कोई लेने का यार है। जब तक तुम अपनी ख़ुदी और अहङ्कार को परमेश्वर के हवाले न करोगे, तब तक तुम्हारे पास बैठना तो कैसा, तुमसे कोसों भागता फिरेगा, जैसे कृष्ण भगवान् कालयवन से। उस आँखों वाले प्रज्वलित हृदय सूरदास ने बिलबिलाते बच्चे की तरह क्या ज़ोर से सच कहा है।

विघ्न ३ ;
स्वार्थ, कपट।

किन तेरो गोविन्द नाम धरयो ॥

लेन देन के तुम हितकारी मो ते कछु न सरयो।
विप्र सुदामा कियो अजाची तंदुल भेंट धरयो ॥
द्रुपदसुता की तुम पति राखी अम्बर दान करयो ॥
गज के फन्द छुड़ाये आकर पुष्प जो हाथ पड़यो ॥
सूर की बिरियाँ निठुर ह्वै बैठे कानन मूँद धरयो ॥

यदि चाहो, परीक्षा तो करें, भजन (उपासना) से फल मिलता है कि नहीं, तो प्यारे! याद रहे 'परीक्षा का भजन' असंगत है और असंभव है, क्योंकि निष्कपट भजन तो होगा वह, जिसमें फल और फल की इच्छा वाले अपने आप को इस तरह परमेश्वर के भेंट कर दें जैसे अग्नि में आहुति।

यह बिनती रघुबीर गुसांई।
और आश विश्वास भरोसो हरो जीव जड़ताई।
चाहौं न सुगति सुमति सम्पति कछु ऋद्धि सिद्धि विपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग राम पद बढ़े अनुदिन अधिकाई।

यदि कोई कहे, आहुति हो जाने में क्या स्वाद रहा? तो ऐसा पूछने वाले को स्वाद (आनन्द) का स्वरूप ही विदित नहीं। ख़ुद (अहंभाव) के लीन हो जाने का ही नाम है स्वाद, आनन्द। बच्चे ने जब अपना नन्हा सा तन, और भोला भाला मन, माता की गोद में डाल दिया, तो सारे जहान में उसके लिये कौन सा आराम शेष रहा और कौन सी चिन्ता बाक़ी रही। आँधी हो, वर्षा हो, भूकम्प हो, कुछ हो, उस का बाल बीका नहीं होगा, कैसा निर्भय है, क्या मीठी नींद सोता है और सलोनी जाग्रत उठता है।

विघ्न ४; प्रकृति नियम-भङ्ग।

जब तक तुम्हारी शारीरिक क्रिया उपासना रूप न हो, तुम्हारा ऊपर से उपासना करना व्यर्थ दिखलावा है। निष्फल मन परचावा है। क्रियारूप उपासना का यह अर्थ है कि खाने, पीने, सोने, व्यायाम आदि में जो प्रकृति के नियम हैं उन को रञ्चक मात्र भी न तोड़ा जाय। विषय-विकार, स्वादों में पड़ना आचरण से ईश्वर की आज्ञा भङ्ग करना है, जिसका दण्ड रोग, व्यथा आदि अवश्य मिलना है। और जब पीड़ा रूपी कारागार में बेंत पड़ रहे हों, उपासना कहाँ हो सकती है। जिस पुरुष का स्वभाव वैसी ही क्रिया आदि की तरफ़ ले जाय, जैसा ईश्वरीय नियम चाहते हैं; जिस पुरुष की इच्छा वही उठे जो मानों ईश्वर की इच्छा है; जिसकी आदत, (nature) प्रकृति की

आवृत हो, वह आचरण से 'शिवोऽहम्' गा रहा है, उसे दुःख कहां से लग सकता है।

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।" (मुण्ड उ० ३, ४)

(बल-हीन पुरुष से आत्मा प्राप्त नहीं होता)

मुण्डक उपनिषद् में यहां बल से तात्पर्य शरीर की आरोग्यता है, और अध्यात्मबल भी है, जिसको अध्यवसाय भी कहते हैं। गीता की *"प्रज्ञा प्रतिष्ठिता" भी बल रूप है।

निद्रा क्यों आवश्यक है:—प्रति दिन काम काज करते मनुष्य प्रायः संसार और शरीर आदि को सत्य मानने लग पड़ते हैं। परन्तु काम काज के लिये शक्ति, बल तो आनन्द-स्वरूप आत्मदेव से ही आना है, जिसकी सत्ता के आगे संसार की नाम रूप सत्ता वा भेद भावना रह नहीं सकती। जगत् के धन्धों में फँसे हुए को नित्य प्रति निद्रा घेर कर पृथ्वी पर फेंक कर यह सन्था पढ़ाती है कि यह जगत् है नहीं, आत्मा ही आत्मा है, क्योंकि निद्रा में संसार मिथ्या हो जाता है और अज्ञाततः एक आत्मा ही आत्मा शेष रह जाता है।

पोल निकाल्यो जगत् का, सुषुपत्यवस्था मांहि।
नाम रूप संसार की, जहां गन्ध भी नांहि॥

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत, एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते।

[छांदो० उप० ६, ८, २]

[जैसे (शिकारी के) तागे से दृढ़ बँधा हुआ पक्षी दिशा दिशा में उड़ कर और कहीं आश्रय न पाकर उसी जगह का आश्रय लेता है।

---

* देखो गीता अ० २ श्लो० ५७, ५८, ६१, ६८,

जहाँ वह बँधा हुआ है ; ठीक इसी प्रकार हे सोम्य ! यह मन दिशा दिशा में घूम कर और कहीं आश्रय न पाकर प्राण का ही सहारा लेता है, क्योंकि यह मन हे सोम्य ! प्राण से बँधा हुआ है (अथवा प्राण के आश्रय है) ।]

सुषुप्ति द्वारा अज्ञाततः परम तत्व में लीन हुये इस क़दर शक्ति-बल आ जाता है, तो उपासना-ध्यान आदि द्वारा ज्ञाततः परम तत्व में लीन हुए शक्ति बल, आनन्द क्यों न बढ़ेंगे ? जब देखो कि चिन्ता, क्रोध, काम, (तमोगुण) घेरने लगे हैं, तो चुपके उठ कर जल के पास चले जाओ, आचमन करो, हाथ मुँह धोवो, या स्नान ही करलो, अवश्य शान्ति आ जायगी और हरिध्यान रूपी क्षीरसागर में डुबकी लगाओ, क्रोध के धूएँ और भाप को ज्ञान–अग्नि में बदल दो ।

उपासना में आवश्यक उदारता

उपासना की चेटक यज्ञ, कर्म और दान से लगनी आरम्भ होती है । जब कुछ चीज़ यज्ञ में या और समय पर दी गई, तो चित्त में ठंडक और शान्ति व्यापी, यह रस फिर लेने को जी करने लगा । बाहर के स्थूल पदार्थ कभी कभी देते दिलाते, अति कठिन और सूक्ष्म दान अर्थात् चित्त वृति का हरि चरणों में खोया जाना भी शनैः शनैः आ जाता है । उपासना, ध्यान का रङ्ग जमने लगता है । अब यहाँ पर इतना विस्मयजनक है कि जिसे एक दृष्टि से हमने खो देना (दान) कहा है, वह दूसरी ओर से देखें तो लूट लेना है । भक्ति (उपासना) चित्त की उस दर्जे की उदारता का नाम है, जिसमें अपने आप तक को उछाल कर हरिनाम पर वार कर फेंक दिया जाय । उपासना-नन्द को तङ्ग दिल वाला कभी नहीं पा सकता, जिस का

दिल बादशाह नहीं, वह क्या जाने भक्ति रस को? और बाद-शाह वह है जिसका अपने दिल के भीतर से एक लँगोटी (कौपीन) के साथ भी दावा न हो।

धन चुराया गया, रोता क्यों है? क्या चोर ले गए? रो इस समझ पर। प्यारे! और कोई नहीं है लेने लेजाने वाला, एकही एक, शुक्र की आँख, यार प्यारा अनेक बहानों से तेरा दिल लिया चाहता है। गोपिकाओं के इससे बढ़ कर और क्या सुकर्म होंगे कि कृष्ण मक्खन चुरायें। धन्य हैं वह जिनका सब कुछ चुराया जाय, मन और चित्त तक भी बाक़ी न रहे।

ककुभाय स्तेनानां पतते नमः,
नमो निचेरवे परिचराय॥
तस्कराणां पतये नमः॥ (शु० यजु० सं० १६, २०)

(प्रसिद्ध चोरों के पति को नमस्कार, गुप्तचरों के पालक को नमस्कार। प्रकट में चोरी करने वाले—डाकुओं व लुटेरों—के पति को नमस्कार।)

ऋग्वेद और यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में दिखाया है कि जब ऋषि, देवता लोगों ने विराट् पुरुष की हवि दे दी, तो उनके सब काम स्वयं ही सिद्ध होने लग पड़े। यज्ञ से जगत् की उत्पत्ति हुई। बृहदारण्यकोपनिषद् के आदि में समस्त संसार रूपी अश्व का मेध किस मनोहर रीति से वर्णन किया है। वाह वा! जब तक नामरूप समस्त संसार, और विराट् रूप समग्र जगत् सम्यक् प्रकार से दान न कर दिया जाय, और यज्ञबलि में आहुति न कर दिया जाय, तब तक अमृत चखने का मुँह कहां?

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" रूपी ज्ञान की अग्नि में जगत् के

पदार्थ और उनकी कामना का विषद्कार (पूर्ण नाश) हो जाय, तो साम्राज्य (स्वराज्य) की प्राप्ति में देर ही क्या है ?

राजा बलि ने जल का करवा हाथ में लेकर तीनों लोक भगवान् को दान कर दिये, तुम से एक असुर के बराबर भी नहीं सरती। अपना शिर रूपी चमस व खप्पर को हथेली पर ले सारे संसार में सत्तादृष्टि करदो ब्रह्म के हवाले। बला टली, बोझ हटा, और फिर ईश्वर को भी ईश्वरत्व देने वाले तुम हो, सूर्य चंद्रमा भी तुम्हारे भिखारी हैं।

लोग कहते हैं जी भजन में मन नहीं ठहरता, एकाग्रता नहीं होती। एकाग्रता भला हो कैसे ? कृपणता के कारण बन्दर की तरह मुट्ठी से पदार्थों को तो छोड़ते नहीं और मुट्ठी में लिया चाहते हैं राम को। आख़िर ऐसा अनजान (भोला) तो वह भी नहीं, कि अपने आप ही हत्थे चढ़ जाय।

जहां काम तहां राम नहिं, जहां राम नहिं काम।

राम तो उसको मिलता है जो हनुमान् की तरह हीरों, जवाहिरों को फोड़ कर फेंक दे, "यदि उनमें राम नहीं हैं तो इस इनाम को कहां धरूँ ? क्या करूँ ?"

कुन्दकुञ्जममुं पश्य सरसिरुह लोचने।
अमुना कुन्द कुञ्जेन सखि मे किं प्रयोजनम् ॥ (सभा तरङ्ग)

'मु' रहित 'कुन्द' कुञ्ज को मैं क्या देखूं, अर्थात् मुकुन्द नहीं तो कुन्द कुञ्ज को आग लगाऊं ?

भजन करते समय निर्लज्ज चित्त में मकान के, खानपान के, अपने मान, अपनी जान के ध्यान आजाते हैं। मूर्ख को इतनी समझ नहीं कि यह चीज़ें चिन्तन योग्य नहीं, चिन्तन योग्य तो एक राम है।

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चदपि चिन्तयेत् ॥ [गीता० ६,२५]

(मनको आत्मा में स्थिर करके कुछ भी चिन्तन न करे)

प्रभु का डेरा हमारे चित्त में लगे, तो फिर कौन सी आशा है जो अपने आप पूरी न पड़ी होगी ? जब तक पदार्थ में सत्ता-दृष्टि है, या उसमें चित्त लगाये हुए हो, सिर पटक मारो, वह पदार्थ कभी नहीं मिलेगा, या सुखदायी होगा। जब यत्नतः अथवा स्वाभाविक उस पदार्थ से दिल उठता है, अर्थात् आत्मारूपी अग्निकुण्ड में वह चीज़ पड़ती है, मन में यज्ञ हो जाता है, तो स्वयंम् इष्ट पदार्थ हाज़िर हो जाता है। हिमालय पवन की ठोकर से गेंद की तरह शायद कभी उछलने भी लग पड़े, परन्तु यह क़ानून बाल के बराबर कभी इतर नहीं हो सकता।

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद,
क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद,
लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान्वेद,
देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद,
वेदास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो वेदान्वेद,
भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद,
सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद।
इदं ब्रह्मं, इदं क्षत्रम्, इमे लोकाः, इमे देवाः, इमे वेदाः,
इमानि सर्वाणि भूतानि, इदं सर्वं यदयमात्मा।

[बृह० उप० २, ४, ६]

(ब्राह्मणत्व उसको परे हटा देता है, जो आत्मा से इतर ब्राह्मणत्व जानता है। क्षत्रियत्व उसको परे हटा देता है, जो आत्मा से अन्यत्र क्षत्रियत्व को जानता है। लोक उसे परे हटा देते हैं, जो आत्मा से इतर लोकों को जानता है। देवता उसको परे हटा देते हैं जो आत्मा से अन्यत्र देवताओं को जानता है। वेद उसको परे हटा देते हैं, जो आत्मा से

अन्यत्र वेदों को जानता है। प्राणी लोग उसे परे हटा देते अर्थात् दुतकार देते हैं जो प्राणियों को आत्मा से अन्यत्र जानता है। प्रत्येक वस्तु उसे परे हटा देती है जो प्रत्येक वस्तु को आत्मा से अन्यत्र जानता है। यह ब्राह्मणत्व, यह क्षत्रियत्व, ये लोक, ये देव, ये वेद, ये सब प्राणी, यह सब वस्तु वही है, जो कि यह आत्मा है।)

बात बात में राम दिखाता है कि "मैं ही हूँ, जगत् है नहीं"। अगर जगत् की चीज़ें हैं, तो केवल मेरा कटाक्ष मात्र है।

भाई! समाधि और मन की एकाग्रता तो तब होगी, जब तुम्हारी तरफ़ से माल, धन, बंगले, मकान पर मानो हल फिर जाय; स्त्री, पुत्र, वैरी, मित्र पर सुहागा चल जाय, सब साफ़ हो जाय; राम ही राम का तूफ़ान (अब्धि) आ जाय, कोठे दालान बहा ले जाय।

अत्र पिताऽपिता भवति, माताऽमाता, लोका अलोकाः देवा अदेवाः, वेदा अवेदाः। अत्रस्तेनोऽस्तेनो भवति, भ्रूणहाः ऽभ्रूणहा, चाण्डालोऽचाण्डालः, पौल्कसोऽपौल्कसः श्रमणोऽश्रमणः, तापसोऽतापसः। [बृह० उप० ४, ३, २२]

(यहां पिता पिता नहीं, माता माता नहीं, लोक लोक नहीं, देव देव नहीं, वेद वेद नहीं रहता। यहां चोर चोर नहीं, हत्यारा हत्यारा नहीं, चाण्डाल चाण्डाल नहीं, पौल्कस पौल्कस नहीं, भिक्षु भिक्षु नहीं, और तपस्वी तपस्वी नहीं रहता है।)

जाने की कोई ठौर ही न रही तो फिर भँडुवे मन ने कहां जाना है? सहज समाधि है।

जैसे काग जहाज़ को सूझत और न ठौर॥
मोहिं तो सावन के अन्धहि ज्यों सूझत रंग हरो॥

क्या मांगना भी उपासना का अंग है?

मांगना दो प्रकार का है, एक तो तुच्छ "मैं" (अहंता,

ममता) को मुख्य रख कर अपनी वृद्धि और भोग कामना के लिये प्रार्थना करना ; और दूसरा ज्ञान प्राप्ति, तत्व-दर्शन, हरि-सेवा को परम प्रयोजन ठान कर आत्मोन्नति मांगना। प्रथम प्रकार की प्रार्थना तो मानो ईश्वर को तुच्छ नामरूप (जीव) का अनुचर बनाना है। अपनी सेवा की ख़ातिर ईश्वर को बुलाना है, उलटी गंगा बहाना है ; द्वितीय प्रकार की प्रार्थना सीधी बाट पर जाना है।

आत्मा में चित्त के लीन होते समय जो भी संकल्प होगा, सत्य तो अवश्य हो ही जायगा, परन्तु यदि वह संकल्प अज्ञान, अधर्म और स्वार्थमय है, तो कांटेदार विषभरे अंकुर की नाईं उग कर दारुण परिणाम का हेतु होगा। अहंता, ममता और भोग कामना सम्बन्धी ईश्वर से प्रार्थना करना मैले तांबे (ताम्र) के बर्तन में पवित्र दूध को भरना है। दुःख पाकर जो सीखोगे तो पहले ही अपवित्र वासना को क्यों नहीं त्याग देते ? अशुभ भावना में औरों का भी बुरा होता है, और अपनी भी ख़राबी। शुभ भावना, पवित्र-भाव, ज्ञान–विज्ञान की प्राप्ति में न केवल अपना ही कल्याण होता है, वरञ्च परोपकार भी। मन में सत्त्व-गुण, शान्ति, आनन्द और शुद्धि हो तो हमारे काम स्वयं ईश्वर के काम होते हैं, पूरे होते देर लग ही नहीं सकती। भागवत् पुराण में एक जगह यह श्लोक दिया है:—

देवासुर मनुष्येषु ये भजन्त्य शिवं शिवं।
प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥

अर्थात् प्रायः जो भी कोई त्यागी शिवकी उपासना करते हैं, वे धनवान् हो जाते हैं, और लक्ष्मीपति विष्णु के उपासक निर्धन रह जाते हैं। इस श्लोक में शिव और विष्णु की छुटाई

बड़ाई दिखाने का तात्पर्य्य नहीं है, शिव और विष्णु तो वस्तुतः एक ही चीज़ हैं। किन्तु अभिप्राय यह है कि जिन लोगों के हृदय में शिवरूप त्याग और वैराग्य बसा है, ऐश्वर्य, धन, सौभाग्य उनके पास स्वयं आते हैं, और जिन लोगों के अंतः-करण लक्ष्मी, धन, दौलत की लाग में मोहित हैं, वे दारिद्र्य के पात्र रहते हैं। जैसे जो कोई सूर्य की तरफ़ पीठ मोड़ कर अपनी छाया को पकड़ने दौड़ता है, छाया उससे आगे बढ़ती जाती है, कभी क़ाबू में नहीं आती। और जो कोई छाया से मुँह फेर कर सूर्य की ओर दौड़े, तो छाया अपने आप ही पीछे भागती आती है, साथ छोड़ती ही नहीं।

कौन प्रार्थना अवश्य सुनी जाती है:–जिसमें हमारा स्वार्थांश इतना कम हो, कि मानो वह सत्य–स्वभाव ईश्वर का अपना ही काम है, और यदि उपासना के समय मारे आनन्द के चित्त की यह दशा हो रही होः—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह॥ (तैत्ति० उप० २-८)

(जहां से सकल वाणियाँ बिना पहुँचे सहित मनके वापिस लौट आती हैं।)

तो यही अवस्था ब्रह्मावस्था है और इस कारण सत्य-कामता और सत्य-संकल्पता तो स्वभावतः आजाती हैं।

यह तो रही अति उत्कृष्ट उपासना। उपासना की ज़रा न्यून स्थिति बच्चे की सी श्रद्धा और विश्वास है, और यह निष्ठा भी क्या प्यारी प्यारी और प्रबल है। बच्चा अपने माता पिता को अनन्त शक्तिमान मानता है, और उनके बल को अपना बल समझ कर माता की गोद में बैठा हुआ शाहनशाही करता है। रेल को भी धमका लेता है, पवन और पक्षियों पर भी हुकुम चलाता है, दरिया को भी कोसने लगता है, और

कोई चीज़ असम्भव जानता ही नहीं। चंद्र सूर्य को भी हाथ में लिया चाहता है:—

चाँद खिलोना ले दे री मैय्या, चाँद खिलोना ले दे ॥

धन्य हैं वे पुरुष उच्च भाग्य वाले, जिनका इस ज़ोर का विश्वास सचमुच सर्वशक्तिमान पिता में जम जाय, जो कुछ भी दरकार हुआ, झट देव का पल्ला पकड़ा और करवा लिया। दूध मांगना हो, तो देव से; भोजन, वस्त्र मांगना हो तो देव से। क्या अच्छा कहा है:—

जग जाच्ये कोउ न जाचये जे जिया जाचये जानकी जान हिरे।
जहिं जाचत जाचकता जर जाहि, जहिं जारे जोर जहानहिरे ॥

दुःखी दुष्ट में, और रंगीले मतवाले मस्त में फ़रक़ सिर्फ़ इतना है कि एक के चित्त में कामना अंश ऊपर है, भक्ति अंश नीचे। दूसरे के चित्त में राम ऊपर है, और काम नीचे। एक यदि साक्षर है तो उलट पलट से दूसरा राक्षस है।

जब प्रेम और त्याग का अंश उपासना में याचना अंश से अधिक हो, तो वह मांगना भी एक तरह देने ही के तुल्य है। पर भाई! सच बात तो है यं, कि मांगना सच्ची उपसना का कोई अंग नहीं, हाँ देना (उदारता) तो उपासना रूप है। जब अपने मतलब के लिये मैं तुम्हारी सेवा करूँ, तो इसमें तुम्हारी भक्ति काहे की? वह तो दुकानदारी है, या ठग बाज़ी। मंगते भिखारी को कोई पास नहीं छूने देता, परमेश्वर तो बादशाह है। भिखमंगे कंगाल बन कर उसके पास जाओगे तो दूर ही से दुर दुर पड़ी होगी। बादशाह से मिलने चले हो? परे फेंको मैले कुचैले, फटे पुराने इच्छा रूपी चीथड़े। "ख़ानों के ख़ान महिमान" जब तक तुम बादशाह न बनोगे, बादशाह के पास नहीं बैठ सकते। इच्छा कामना की गंध तक उड़ा दो, जम कर

बैठो त्याग के तख़्त पर, धारण करो वैराग्य के मोती, पहन लो ज्ञान का मुकुट, और वह तुम्हारे पास से कभी हिल जाय तो मुझे बाँध लेना।

टूने कामन करके नी ! मैं प्यारा यार मनावांगी।
इस टूने नूँ पढ़ फूकांगी सूरज अग्न जलावांगी॥
सात समुन्दर दिग दे अन्दर दिल से लहर उठावांगी।
बदली होकर चमक डरावां बन बादल घर घर जावांगी॥ टूने०
टूने कामन करके नी ! मैं प्यारा यार मनावांगी।
इश्क अंगीठी अस्पंद तारे सूरज अग्न चढ़ावांगी।
ला सवां शौह नूँ गल अपने तद मैं नार कहावांगी॥
टूने कामन करके नी ! मैं प्यारा यार मनावांगी।
ना मैं ब्याही, ना मैं क्वारी, बेटा गोद खिलावांगी।
बुल्हा लामकां दी पौड़ी उत्ते, बहके नाद बजावांगी॥ टूने०

[पंजाबी काफ़ी, बुल्हा शाह]

उपासना और ज्ञान

उपासना ऐसे है जैसे गुणन के उदाहरण सिद्ध करना, और ज्ञान यह है कि बीज गणित तक पहुँच कर उस गुणन की विधि का कारण आदि भी जान जाना। उपासना साधन है, ज्ञान सिद्ध अवस्था। उपासना में यत्न के साथ अन्दर बाहर ब्रह्म देखा जाता है। ज्ञान वह है जहां यत्नरहित स्वाभाविक अन्दर तो रोम रोम से "अहं ब्रह्मास्मि" के ढोल अन्य सब वृत्तियों को दबा दें, और बाहर हरत्रिसरेणु "तत्त्वमसि" का दर्पण दिखाता हुआ भेद-भावना को भगा दे। यह ज्ञान ही असली त्याग है:—

त्यागः प्रपञ्चरूपस्य चिदात्मत्वावलोकनात्।

त्यागो हि महतां पूज्यः सद्यो मोक्षमयो यतः ॥

(आत्म-साक्षात्कार से प्रपञ्च का छोड़ना ही त्याग है। तुरन्त ही मोक्षमय होने के कारण त्याग बड़े लोगों से पूज्य है।)

जहां श्रुति ने त्याग का उपदेश वर्णन किया है "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" वहां त्याग का लक्षण इतना ही किया है ॥

ईशावस्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ॥ (ईश० उप० १)

जो कुछ दीखे जगत में सब ईश्वर में ढाँप।
कर हो चैन इस त्याग से धन लालच से काँप ॥

ऊपर ऊपर के त्याग इस असली त्याग के साधन हैं, यह त्याग रूपी ब्रह्मदृष्टि यत्नतः करना उपासना है। "अब यह त्याग रूपी उपासना भी और त्यागों या दानों की तरह होगी, करें वा न करें, किसी को पैसा दें या न दें, हमारी इच्छा पर है" जो ऐसा समझे हैं धोके में हैं। यह त्याग रूपी उपासना आवश्यक है। आवश्यक क्यों? इसलिये कि और कहीं ठंड पड़ने की नहीं।

वृत्ति तब तक एकान्त नहीं हो सकती, जब तक मन में कभी यह आशा रहे और कभी वह इच्छा। शान्त वह हो सकता है जिसे कोई कर्त्तव्य और आवश्यकता खींच घसीट न रही हो। अपने आप तो इन वासनाओं ने पीछा छोड़ना ही नहीं। जब भी पल्ला छुटेगा, आप छुड़ाना पड़ेगा। इसलिये जीने तक की आशा को भी त्याग कर मन को ब्रह्मानन्द में डाल दो। एक दिन तो शरीर ने जाना ही है, सदा के लिये पट्टा तो लिखवा कर लाये ही नहीं थे। आज ही से समझ लो कि यह है नहीं, और ब्रह्मानन्द के सागर में शङ्का रहित होकर कूद पड़ो। आश्चर्य यह है कि जब हम इन कामनाओं को छोड़ ही बैठते हैं, वह अपने आप पूरी होने लग पड़ती हैं।

गङ्गातीरे हिमगिरिशिला बद्धपद्मासनस्य।
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य॥
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंकाः।
कण्डूयन्ते जरठ हरिणाःश्रृंङ्गमङ्गे मदीये॥ [भर्तृहरि]

(गङ्गा किनारे, हिमालय की शिला पर, बद्ध पद्मासन लगाये हुये, ब्रह्मध्यान का अभ्यास करते, योगनिद्रा को प्राप्त, मेरे शरीर में बुड्ढे हिरन निःशंक हुए अपने शरीरों को खुजलावें, क्या ऐसे मेरे सुदिन कभी होंगे ?

(वैराग्यशतक ९८)

जब दिल में त्याग और ज्ञान भरता है, और शान्त साक्षी बन कर विचार (observation) शक्ति आती है, तो वही दुनिया जो माया का परदा हो रही थी, राम की झांकियों का लगातार प्रवाह बन जाती है। 'दर्शन धारा' कहला सकती है, एक रस अभिव्यञ्जक हो जाती है। वह लोग जो भेद-वाद और अभेद-वाद के शास्त्रार्थ में लीन हैं उनको झगड़ने दो, उस अवस्था के लिये यह बुद्धि की छानबीन भी अयुक्त नहीं, परन्तु जब बुद्धि (अर्थात् सूक्ष्म शरीर) के तल से उतर कर कारण शरीर (subjective mind, ganglionic conciousness) में ज्ञान भाव का दीवा जलता है, तो यह झगड़े तै होते हैं; और जब तक मनुष्य के आन्तर-हृदय (मानो सातवें परदे) में राम का डंका नहीं बजता, तब तक उसे न उपासना ही रस देगी न ज्ञान, न वेद की संहिता का अर्थ आयगा, न उपनिषद् का।

जैसे भूके भूक अनाज, तृषावन्त जल सेती काज।
जैसे कामी कामिनी प्यारी, वैसे नामे नाम मुरारि॥

टेलीफ़ोन द्वारा प्यारे ने बातें की, टेलीफ़ोन प्यारी लगने लगी। जब तक मोहन दूसरी जगह है, टेलीफ़ोन की बड़ी क़दर

है। जब मोहन अपने घर आगया, तो अब टेलीफ़ोन से क्या ? ये मित्र, सम्बन्धी, राजे, धन, दौलत सब टेलीफ़ोन हैं, जिन द्वारा राम हमसे बोलता था। जब तक राम नहीं मिला था, दिल कांपता था कि हाय! इन बिना कैसे सरेगी ? वह प्यारा घर आ गया, आ मिला, अब तो हे मित्र गण! मुझको भले छोड़ दो, सम्बन्धी जनो! त्याग जाओ, धन दौलत! लुट जाओ, भाग जाओ, इज़्ज़त सन्मान! बेशक़ पीछा दिखाओ, यहां बैठे क्या करते हो, राजाजी! निकाल दो अपने देश से, घर रक्खो अपनी दुनिया।

राजा रूठे नगरी राखे अपनी, मैं हर रूठे कहां जाना ?
अब दिलबर घर आया है, नैनों का फ़र्श बिछाऊँगी।
गुण औगुण पर धर चिन्गारी, यह मैं धूप धुकाऊँगी।
प्राणों की मैं सेज करूँगी, हरि को गले लगाऊँगी।

शिवोऽहम् भाव (अद्वैत-दृष्टि) विना सम्यक् शुद्धि नहीं होगी।

"शिवोऽहम्" तो सभी कहते हैं, क्या भेदवादी क्या अभेदवादी, क्या भक्त, क्या कर्मकाण्डी, क्या हिन्दू क्या और कोई, सबही अपने दिल के भीतर से अपने आप को बड़े से बड़ा मानते हैं और साबित करते हैं। वह भेदवादी भक्त जो अभी मन्दिर में देव के सामने अपने तईं 'नीच पापी, अधम मूर्ख' कहते कहते थकता नहीं था, जब बाहर बाज़ार में निकला, तो उसे कोई "अरे ओ नीच" कहकर पुकारे तो सही, फिर देखो तमाशा, कचहरियों में क्या क्या गति होती है। अन्दर का 'शिवोऽहम्' कभी मर ही नहीं सकता। मरे क्योंकर ? साँच को आँच कहां ? पर हां! अपने तईं देहादि रख कर जो

शिवोऽहम् का मुलम्मा ऊपर चढ़ाना है, यह तो पौंड्रक की नाईं झूँठा विष्णु बनना है। इस प्रकार से 'वासुदेवोऽहम्' सब दुनिया अहंकार की बोली द्वारा बोल रही है। यह तो मैले ताम्र के पात्र में पायस पकाना है और ज़हर से मर जाना है। वेदान्त का उपदेश यह है कि क्षीर तो पिया जाय, पर मैले ताम्र पात्र में नहीं। देहाभिमान अन्दर और शिवोऽहम् का ऊपर ऊपर से मुलम्मा तो हो नहीं, बल्कि शिवोऽहम् अन्दर हो, और अन्दर से अग्नि की तरह भड़क भड़क कर देहाभिमान को जला दे। यह हो गया तो देहाभिमान, कृपणता, भय, शोक की ठौर कहां? इस भेद को (नहीं अभेद को) जिसने जाना, निधड़क हो गया, उदारता मूर्त्तिमान बन गया; बल, शक्ति और तेज का दरिया (नद) हो निकला। कोई भी बल हो, कहां से आता है? उस उदारता से जिसमें शरीर और प्राण की बलि देने को हम तय्यार हों, शिर को हथेली पर लिये चलें। देखो यारो! जब "ज्योतिषां ज्योतिः" अपने आप को पाया, तो शिर से गुज़र जाना रूपी सूरमापन स्वतः कैसे न आजायगा?

अब ज़रा ध्यान देकर सुनना; मैं तुमसे कुछ मांगता तो नहीं?

पूत कहे, अवधूत कहे, रजपूत कहे, जुलहा कहे कोऊ।
काहू की बेटी से बेटा न ब्याहूँ, काहुकी जात बिगाड़ न सोऊ।
मांग के खाऊँ, मशान में सोऊँ, लेने की एक न देने की दोऊ।

किसी के टके देने नहीं, किसी से कौड़ी लेनी नहीं, लाग लपेट से क्या? कड़ुवा मानो, मीठा मानो, सच ही कहूंगा, पर्वत के शिखर के शिखर से राम पुकार कर सुनाता है:—संसार को सत्य मान कर उसमें कूदते हो, फूस की आग में पच पच कर मरते हो, यह उग्र तपस्या क्यों? इससे कुछ भी

सिद्धि नहीं होगी। देहाभिमान के कीचड़ में, अपने शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप को भूल कर फंसते हो, दल दल में धसते हो, गल जाओगे। ब्रह्म को विसार कर दुःखों को बुलाते हो, शिर पर गोले बरसाते हो, ओ गुल (पुष्प)! जल जाओगे। सत्य को जवाब देकर मिथ्या नामरूप में क्यों धक्के खाते हो? जिनको श्वेत माखन का पेड़ा समझे हो, यह तो चूने (क़लई) के गोले हैं। खाओ तो सही, फट जाँयगी अंतड़ियाँ, झूठ बोलने वाले का बेड़ा ग़रक़। मैं सच कहता हूँ, दुनियाँ की चीज़ें धोका हैं। होश में आओ, ब्रह्म ही ब्रह्म सत्य है। ज्येष्ठ आषाढ़ की दोपहर के वक़्त भाड़ की तरह तपे हुए मरुस्थल में मंकि मुनि जब अति व्याकुल हो रहा था, और उसने पास के एक ग्राम में जाकर आराम करना चाहा, उस समय वसिष्ठ भगवान् के दर्शन हुए। वसिष्ठजी कहते हैं:—"बेशक इस गरमी में हज़ार बार जल मर; पर वहां मत जा, जहां तनु के तनूर में पड़ेगा। यहां पर तो शरीर ही जलता है, वहाँ अविद्या के ताप से सारे का सारा सड़ेगा।"

वरमंध गुहा हित्वं शिलान्तः कीटता वरम्।
वरं मरौ पंगु मृगो न ग्राम्य जन संगमः॥ [योगवासिष्ठ]

(अन्धेरी गुफ़ा का साँप होना वा शिला के अन्दर का कीड़ा होना अथवा मरु–निर्जल भूमि–में लंगड़ा हिरन होना कुछ अच्छा है, परन्तु गंवारों के साथ मिलना अच्छा नहीं है।)

आप बीती कहूँ कि जग बीतीः—जब कभी भूले से किसी साँसारिक वस्तु में इष्टता वा अनिष्टता का भाव जमाता हूँ, हानि लाभ, छुटाई बड़ाई में दिल टिकाता हूं, तन्दुरुस्ती (देह की अरोग्यता) आदि को बड़ी बात गरदानता हूँ, किसी पुरुष को अपना वा पराया ठानता हूँ, कोई चीज़, भावी व वर्त्तमान

सत्य मानता हूं, अपने आप को परिच्छिन्नदेहादि जानता हूं, अर्थात् शुद्ध स्वरूप को भूल कर शरीर में जम कर भेददृष्टि से देखता और विचार करता हूँ, तो अवश्यमेव तीन तापों में कोई न कोई आन घेरता है। मेरी दृष्टि थोड़ी गिरे तो ताप भी थोड़ा होता है, बहुत गिरे, तो ताप भी बहुत। इस क्षुद्र-दृष्टि और तुच्छ भावना का फल खेद-दुःख मिले बिना कभी नहीं रहता। और जब देहादि स्वप्न को परे मार, भेदभावना को उड़ाकर आत्मदृष्टि खोलता हूं, तो संसार के तत्त्व ऐसे हो जाते हैं, जैसे किसी के अपने हाथ पैर, जिस तरह चाहे हिला ले। प्रकृति की चाल मेरी आँखों की कटाक्ष हो जाती है। यही क़ानून और सब लोगों के दुःख सुख लाने में भी राज करता है, इसको न जान कर लोग मरते हैं। यह क़ानून कहीं कच्चा सूत न समझ लेना, अनाड़ी का काता हुआ। यह वह लोहे का रस्सा है, जिससे इन्द्र और सूर्य भी बांधे पड़े हैं। संसार समुद्र में यह वह एक पत्थर की चट्टान है जिसको न देखकर महाराजे, पण्डित, देव और दानव अपने जहाज़ों (पोतों) को तोड़ बैठते हैं। वंशों के वंश, क़ौमों की क़ौमें, मुल्कों के मुल्क इस क़ानून को भुला कर मट्टी में मिल चुके हैं।

अजगर ने समझा कि कृष्ण को खा ही लूँगा और पचा जाऊँगा। लो खा गया, पर पेट के अन्दर चली कटारियां। खंड भंड होकर आतशबाज़ी के अनार की तरह अजगर उड़ गया, और कृष्ण वैसे का वैसा शेष रहा। क्या तुम इस सत्य रूपी क़ानून को खा सकते हो? दबा सकते हो? छिपा सकते हो? इस सत्य को किसी का लिहाज़ नहीं। और तो और, ख़ुद कृष्ण के कुल वाले जब सत्य को मख़ौल में उड़ाने लगे, और अपनी तरफ़ से मानो इसे रगड़ रगड़ कर रेत में मिला

भी गये, तबभी यह सत्य मटिया मेल होकर फिर उगा, और क्या कृष्ण और क्या यादव सबके सबको हड़प कर गया, द्वारका पर पानी फिर गया। भाई! मुरदे को उठा कर जो चिल्लाया करते हो "राम राम सत्य है", आज पहले ही समझ जाओ, अभी समझ लो तो मरोगे ही नहीं, मरने के वक्त गीता तुम्हारे किस काम आयगी? अपनी ज़िन्दगी को ही भगवत् का गीत बना दो। मरते वक्त दीवा (दीपक) तुम्हें क्या उजाला करेगा? हृदय में हरिज्ञानप्रदीप अभी जला दो।

कृष्ण त्वदीय पद पंकज पञ्जरान्ते।
अद्यैव मे विशतु मानस राजहंसः॥
प्राण प्रयाण समये कफ़ वात पित्तैः।
कण्ठावरोधन विधौ स्मरणं कुतस्ते॥ [पाण्डव गीता]

पतितः पशुरपि कूपेनिःसर्तु चरणचालनं कुरुते।
धिक्त्वा चित्त भवाब्धेरिच्छामपि नोबिभर्षिनिः सर्तुम्॥

(हे कृष्ण भगवान्! आपके चरण कमल रूपी पिंजड़े में मेरा हंस रूपी मन आजही बैठ जावे, क्योंकि प्राणान्त समय में कफ़ वात पित्त से कण्ठ रुक जाने के कारण मन के स्वस्थ न होने पर आपका स्मरण कैसे हो सकेगा। कुँए में गिरा हुआ पशु भी निकलने के लिये पैरों को चलाता है। लेकिन हे चित्त! संसार रूपी समुद्र में पड़े हुये तुम उससे निकलने की इच्छा तक नहीं करते हो। इससे तुम्हें धिक्कार है।)

एक जुलाहा भूखों मर गया, उसकी मां मुरदे के मुंह और गुदा को पैसे का घी लगा कर सबको दिखाती थी, "देखलो!" मेरा पुत्र भूखा नहीं मरा, घी खाता और घी त्यागता गया है। प्यारे! उधारी मुक्ति तो जुलाहे का घी है। रोकड़ मुक्ति (नक़द निजात) अर्थात् जीवन मुक्ति जब मिल सकती है तो क्यों न लेनी?

सच्चा उपासक।

भाई! सच्ची कहें? उपासक और भक्त होने की पदवी हमको तो नसीब नहीं। हमने तो सच्चा उपासक सारी दुनिया में एक ही देखा है। बाक़ी भक्तों, ऋषियों, मुनियों, पीरों पैग़म्बरों का "प्रेममय उपासक" कहलाना एक कहने ही की बात है। वह सच्चा आशिक़ और उपासक कौन है, जिसको लोग उपास्य देव कहते हैं, क्योंकर? प्रेमी, जार (यार) की तरह छिप छिप कर छेड़ता है। शनैः शनैः वृत्ति की कन्नी (चित्त का आँचल) खींचता है। अनेक प्रकार के भेष बदल कर, रंग रूप धारण करके स्वाँग भरके परदों की ओट में नयनों की चोट मार जाता है। जब मन अनात्म पदार्थों में कहीं लग जाता है तो हा! फिर उसके मान करने (रूठने) की क्या कहना? भृकुटी कुटिल किये कैसा कैसा कोप दिखाता है। जब वृत्ति मार्ग में कहीं रुक जाय, तो चुटकियाँ भरता है। दम तो लेने नहीं देता, आराम तो नाम को भी और कहीं नहीं मिलने पाता, सिवाय एक मात्र उस राम की निष्काम शय्या के।

हे प्यारे! अब आशिक़ होकर रूठना (मचलना) कैसा? अब रस चखा कर नटते हो? हे प्राणनाथ! इधर देखो! वह दुष्ट शिशुपाल आ पड़ा, छीन कर ले चला तुम्हारी हक़्क़ानी (ईश्वरत्त्व) को। कुछ रीस, शर्म भी है? यह तो वक्त मान करने का नहीं, आओ!

त्वमसि ममभूषणं, त्वमसि ममजीवनं, त्वमसि ममजलधिरत्नं।
भवतु भवतीह मयि सतत मनुरोधिनस्तत्र ममहृदयमतियत्नं॥

[जयदेव]

(आप ही मेरे भूषण हैं, आप ही मेरे जीवन हैं, आप ही मेरे समुद्रो-

त्पन्न रत्न हैं। निरन्तर मेरे ऊपर कृपा करने वाले आप में मेरा हृदय बड़े यत्न के साथ लग जावे।)

सूर्य को बारह महीने तेज (प्रकाश) दे दिया मुफ़्त में। हमको आठों पहर निजानन्द देते कङ्गाल तो नहीं हो चले ?

हे प्रभो ! अब तो मुझ से दो दो बातें नहीं निभ सकतीं। खाने पीने कपड़े कुटिया का भी ख़याल रक्खूं और दुलारे का भी मुख देखूं। चूल्हे में पड़े पहनना, खाना, जीना, मरना। क्या इनसे मेरा निर्वाह होता है ? मेरी तो मधूकरी हो तो तुम, कामली हो तो तुम, कुटि हो तो तुम, औषधि हो तो तुम, शरीर हो तो तुम, आत्मा हो तो तुम। शरीरादि को रखना चाहते हो तो पड़े रक्खो। अकर्त्ता बन रहे हो, निकम्मे बैठे क्या करते हो ? करो सेवा।

आँखें लगा के तुझसे न पलकें हिलाएंगे।
देखेंगे खेल हम, तुम्हें आगे नचाएंगे॥

वयꣳसोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः॥ (यजुर्वेद)

तुम्हारी ख़ातिर हे प्रभो ! यह मन था तन ही बीच॥

ले लो अपनी चीज़। वार कर फैंक दो अपने "बेनाम" पर। थाली भर भर कर हीरे, जवाहिरात, तुझ पर वार वार कर फैंके गये। जिनको लोग तारे, नक्षत्र, ग्रह, चन्द्र, सूर्य और पृथिवियाँ कहते हैं, लूट लो ज्योतिषियो ! लूट लो तत्वविज्ञानियो ! लूट लो सौदागरो ! राजाओ लूट लो ! पर हाय ! मार डालो, तो भी मैं तो यह माल नहीं लूँगा। डोली पर वार कर फैंका हुआ टका रूपया लूटना कोई और लोगों का काम है। मैं तो वही लूँगा, वही, परदे वाला, दुलारा, प्यारा।

उपासना के मंत्र।

तासीर उस उपासना की होती है, जो दिल से निकले।

गले के ऊपर ऊपर से निकले हुए उपासना के वाक्य तो मानो मख़ौलबाज़ी है और परमेश्वर को झुटलाना है। जैसी चित्त की अवस्था होगी, सच्ची उपासना की वैसी सूरत होगी।

(१) विद्यार्थी (मुमुक्षु) की प्रार्थनाः—

(क) ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषातन्वो अद्यदधातु मे॥
पुनरेहिवाचस्पते देवेनमनसासह।
वसोष्पतेनिरमय मय्येवास्तु मयिश्रुतम्॥
इहै वाभिवतनूभे आर्त्नीइवज्यया।
वाचस्पतिर्नियच्छतु मय्येवास्तु मयिश्रुतम्॥
उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम्।
संश्रुतेन गमेमहिमाश्रुतेनविराधिषि॥ (अथर्व वेद)

[वेद स्वरूप वाणी का पालक (आज) मेधादि उत्पन्न करने के समय, सम्पूर्ण चेतनाचेतनात्मक वस्तु को अभिमत फल देने से पोषण करते हुये, प्रतिदिन, प्रति वर्ष, प्रतिकल्प, प्रति शरीर यथोचित घूमने वाले तीन और सात संख्या वाले देवताओं के असाधारण सामर्थ्य अर्थात् श्रुत धारणादि सामर्थ्य को, मेधा इत्यादि को चाहते हुए मेरे शरीर में धारण करे। तीन से पृथिव्यादि तीनों लोक उनके अधिष्ठाता (अग्नि वायु आदित्य) सत्व रजस् तमोगुण, ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर इत्यादि, जो जो तीन संख्या युक्त हैं, लिये जाते हैं, सात से सप्तर्षि, सप्तग्रह। सातों मरुद्गण, सातों लोक इत्यादि सात संख्या वाले लिये जाते हैं।)

हे वाचस्पते! वेद स्वरूप वाणी के पालक! ब्रह्म अभिमत फल प्रदान के लिये अनुग्रह बुद्धि से युक्त हो, बारम्बार मेरे पास आइये। (हे वसोष्पते) ग्राम-पश्वादि रूप धन के स्वामिन्! आप में ग्रामादि अनेक फल देने की शक्ति है, इसीलिये हम से इच्छित नाना प्रकार के फलों के सम्पूर्ण दान से निरन्तर हम लोगों को सुख दीजिये। आपके

दिया हुआ ग्रामादि मेरे ही पास रहे और गुरु से पढ़ा हुआ वेद शास्त्रादि विस्मरण न हो, इसलिये उसके धारण करने के लिये मेधा भी दीजिये।

हे वाचस्पते! इसी साधक जन में दोनों अर्थात् सुनी बात को धारण करने वाली मेधा और नाना प्रकार के भोगों के कारण ग्रामादि सम्पत्ति को विस्तीर्ण कीजिये, अर्थात् सब लोगों से मुझ ही में अधिक कीजिये। जिस प्रकार धनुष की प्रत्यञ्चा धनुष की कोटियों (कोनों) को खींचती हैं, उसी प्रकार मुझे दोनों वस्तुओं को दीजिये, अर्थात् वे न आना चाहें तो भी बल पूर्वक मेरे पास पहुँचाइये। और हे विधाता! दिये हुये समस्त फल को मेरे में दृढ़ कीजिये। और मुझको श्रुत अर्थात् मेधादि को मेरे में सबसे अधिक कीजिये।

समीप में आह्वान किया गया (बुलाया गया वाचस्पति) वेद शास्त्रादि का पालक, मेधा इत्यादि चाहने वाले हम लोगों को चाहे हुवे फल देने की अनुज्ञा करे। और उसकी अनुज्ञा से प्राप्त मेधा से हम वेद शास्त्रादि को प्राप्त होवें और उस वेद शास्त्रादि से हमारा कभी वियोग न होवे। अर्थात् वेद शास्त्रादि से हम सर्वदा युक्त रहें।]

इसमें वाच् (वाणी) के पति (वाचस्पति) रूप ब्रह्म का ध्यान है। जब लोहा अग्नि में पड़ा रहे, अग्नि के गुण उसमें आजाते है, इस तरह जब बुद्धि वाच् (वा मन) के पति सर्व-व्यापी चैतन्य में कुछ काल अभेद रहे, तो उसमें विचित्र शक्ति कैसे न आजायगी?

कोई भी मन्त्र हो, उनको खाली पढ़ या गा ही नहीं छोड़ना, किन्तु पढ़कर उनके भावार्थ में मनको लीन और शान्त होने देना चाहिये।

(ख) यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवेति।

दूरंगमंज्योतिषां ज्योतिरेकंतन्मेमनः शिव संकल्पमस्तु॥

(यजुर्वेद)

भावार्थः—क्या जाग्रत, क्या स्वप्न, क्या सुषुप्ति, तीनों दशा में मेरा मन किसी और विचार की तरफ़ न जाने पाये, सिवाय शिवरूप आत्मचिन्तन के। चलते, फिरते, बैठे, खड़े मेरा मन शिवरूप सत्यस्वरूप आत्मा के सिवाय और कोई चिन्तन न करने पाये। इसी प्रकार शु० यजु० अ० ३४ के अगले पाँच मंत्र भी यही भाव प्रकट करते हैं।

(ग) ॐ भूर्भुवःस्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् (गायत्री मंत्र)

यहाँ पर पहले तो यह देखना है, कि 'धीमहि' और 'नः' दोनो बहुवचन हैं। एकान्त में अकेले तो इस ब्रह्मगायत्री का ध्यान है और "हम ध्यान करते हैं" "हमारी बुद्धियाँ" ऐसा क्यों? "मैं ध्यान करता हूं" और "मेरी बुद्धि" क्यों नहीं लिखा? इसमें वेद की आज्ञा यूं है, कि प्रथम तो देहाभिमान रूप स्वार्थदृष्टि और परिच्छिन्नता का परित्याग करना है। सब देश के लोगों को अपना स्वरूप जान कर, सब शरीरों को अपना शरीर मान कर, सब के साथ एक होकर अभेद बुद्धि के साथ यह ध्यान करना है:—

"वह सविता देव जो हमारी बुद्धियों को चलाता है, उसके प्रिय (पूज्य) तेज (स्वरूप) का हम ध्यान करते हैं।" "प्रचोदयात्" में महीधर और सायणाचार्य ने व्यत्यय माना है और यह ठीक भी है। सूर्य रूप सविता देव को हमारी बुद्धियों का प्रेरक माना है। वही जो सूर्य को प्रकाश करता है वही बुद्धियों को प्रकाशता है, वही आत्मा है।

"योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्" ॥" (यजुर्वेद)

(वह जो सूर्य में पुरुष है वह ही मैं हूँ)

उसका ध्यान करने से क्या लाभः—बड़ी आपदा आन

पड़ो और संध्या करते समय परमेश्वर को झुठलाया नहीं, किन्तु सचमुच बार बार देहदृष्टि को छोड़ कर जो यह ध्यान किया कि "मैं तो सूर्य के प्रिय तेज वाला हूं, मेरा तो वही धाम है," तो कहिये, चिन्ता जल न जायगी ? प्रतिदिन तीन वक्त, या दो वक्त, या एक काल ही सही, सच्चे भाव के साथ जो इस तत्त्व में लीन हुए कि "इन बुद्धियों का प्रेरक आत्मदेव हूँ, मैं तो वही हूँ जिसका तेज सूर्य चन्द्रमा में चमक रहा है," तो कहिये कौन सा अन्धेरा खड़ा रह सकता है ? विद्या पढ़ रहे हैं, या कोई बड़ा कार्य हाथ में है, और हर दिन एकान्त में बैठ बैठ और सब तरफ़ से वृत्ति को खैंच, तेज के पुञ्ज में अभेद भावना करते हैं, तो यारो ! दुहाई है अगर यश और कीर्ति खिंच कर तुम्हारे आगे नृत्य न पड़ी करें। क्या "खलु क्रतु मयः पुरुषः।" (यह पुरुष सङ्कल्पमय है) श्रुति ने क्या झूठ ही कह दिया था ?

(२) जब चित्त संसार में डूब जाय, क़ानून रुहानी टूट जाय, पाप कर्म हो जाय, आत्मदेव भूल जाय, तब आँसू भरे नयन, जोड़े हुए हाथ, रगड़ते हुए घुटने, माटी में घिसता हुआ माथा, जलता हुआ दिल, यदि इस प्रकार की उपासना करें, तो वह कौन सा पाप है जो धुल न जायगा :—

मोषु वरुणमृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम्। मृडा सुक्षत्र मृडय ॥
यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्नध्मातो अद्रिवः। मृडा सुक्षत्र मृडय ॥
क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमाशुचे। मृडासुक्षत्र मृडय ॥
अपांमध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम्। मृडा सुक्षत्र मृडय ॥
यत्किंचेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्या ३ श्चरामसि।
अचित्तीयत्तव धर्मायुयोपिममानस्तस्मादेनसो देवरीरिषः ॥

(ऋ० मं० ७ सू० ८९)

हे राजन् वरुण ! आपके मिट्टी इत्यादि से बने हुये गृह में मैं न जाऊँ किन्तु सुन्दर सुवर्ण से बने हुये आपके गृह को जाऊँ। ऐसा आप मुझे सुख देवें। हे शोभन धन वाले वरुण आप मेरे ऊपर दया भी करें।

हे सधन और स्वभाव से निर्मल वरुण ! मैं अशक्तता के कारण कर्त्तव्य कर्म अर्थात् श्रुति स्मृति विहित कर्म के विरुद्ध अनुष्ठान करता रहा, अर्थात् श्रुति-स्मृति विहित कर्म न कर सका। इसी लिये आपसे बांधा गया हूँ। इस दशा में स्थित मुझको सुख दीजिये।

समुद्र के जल के मध्य में स्थित हुये भी आपकी स्तुति करने वाले मुझको प्यास लग रही है। खारी जल होने से समुद्र का जल पिया नहीं जा सकता। इस प्रकार प्यासे मुझको सुख दीजिये।

हे वरुण ! देव समूहरूप जन में जो कुछ अपकार हम मनुष्य लोग कर रहे हैं और आपके धर्म धारक कर्म को हम लोग अज्ञान से भूल गये हैं। हे देव इस पाप से हम लोगों को न मारिये।

सोने का गढ़ छोड़ कर धसूँ न कांटों बीच।
हीरे मोती फेंक कर लेऊँ न माटी कीच॥

अब दया ! हे राम ! अब दया ! मैं भूला, मैं उड़ा, मैं पड़ा, मैं गिरा, मैं मरा। अब दया ! हे राम ! अब दया !

(३) जब तक देह में प्रीति और किसी प्रकार की कामना बनी रहती है, तब तक तो भेद-उपासना ही दिल से निकलेगी। प्रेम, अनुराग जब बहुत बढ़ेगा, तो उपासना की यह शकल हो जायगी :—

तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा। स मा भग प्रविश स्वाहा॥
तस्मिन्त्सहस्र शाखे। निभगाहं त्वयिमृजे स्वाहा॥ (तैत्ति० उप०)

(हे सबकी योनिरूप ब्रह्म ! मैं तुझ में प्रवेश करता हूँ। स्वाहा। हे सबके कारण रूप ओं वा ब्रह्म तू मुझमें प्रवेश कर, स्वाहा। तेरी जो

सहस्र शाखें (हज़ारों रूप) हैं मैं उनमें वा तुझमें हे भग ! अपने को नहलाता वा शोधन करता हूँ । स्वाहा)

यह भेद-उपासना उच्चतम श्रेणी को पहुँच जाय तो इसका ढंग कुछ यूं होगा :—

ॐ गणानांत्वा गणपतिँ हवामहे । प्रियाणांत्वा प्रियपतिँ हवामहे । निधीनांत्वा निधिपतिँ हवामहे । वसो मम, आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ (शु० यजु० संहिता २३ । १९)

(हे गणपते ! गणों के मध्य में गणों के पालक हम आपका आह्वान करते हैं प्रियों के मध्य में प्रियों के पालक आपका हम आह्वान करते हैं । सुख निधियों के मध्य में सुख निधियों के पालक आपका हम आह्वान कर रहे हैं । हे वसो ! हे प्रजा पते ! व्यापक होकर सम्पूर्ण संसार में निवास करने के कारण आप मेरे पालक हूजिये । गर्भ के तुल्य सब संसार की धारक प्रीति के धारणकरने वाले वा अपनी शक्ति से जगत् के अनादि कारण रूप गर्भ के धारण करने वाले, वा सम्पूर्ण मूर्त्तिमान पदार्थों की रचना करने वाले आप को सब प्रकार से सम्मुख करता हूँ । हे सब जगत् के तत्त्वों में गर्भ रूप बीज के धारण करने वाले ! आप सब प्रकार जानते वा सम्मुख होते हैं ।

है रोकर यह तकरारे-उलफ़त तो तुझ से ।
कि इतनी यह हो मेरी क़िस्मत तो तुझसे ॥
मेरे जिस्मो-जां में हो हरकत तो तुझ से ।
उड़े मा, मनी की वह शिरकत तो तुझ से ॥
मिले सदक़ा होने की इज्ज़त तो तुझ से ।
सदा एक रहने की लज़्ज़त तो तुझ से ॥

रफ़ीक़ों में गर है मुरव्वत तो तुझ से ।
अज़ीज़ों में गर है मुहब्बत तो तुझ से ॥
ख़ज़ानों में जो कुछ है दौलत तो तुझ से ।

अमीरों में है जाहो-सौलत तो तुझ से ॥
हकीमों में है इल्मो-हिकमत तो तुझ से।
है रौनक़ जहां या है बर्कत तो तुझ से ॥

महेचन त्वाद्रिवः परा शुल्काय देयाम्।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥
(सामवेद ऐन्द्र पर्व, अ० ३ ख० ६ मं० ६)

हे वज्रवाले इन्द्र! बहुत बड़े मूल्य के लिये मैं आपको नहीं बेचता हूँ। हे वज्रहस्त इन्द्र! न सहस्र संख्यक धन के लिये और न दस सहस्र धन के लिये मैं तुझे बेंचता हूँ। हे बहुत धन वाले इन्द्र अपरिमित धन के लिये भी मैं तुझे नहीं बेचता। अर्थात् कितना ही धन मिल जाय, परन्तु मैं हविओं द्वारा आपका पूजन त्यागना नहीं चाहता।

(४) पर हाँ, जो लोग सदा के लिये निचले दर्जे की उपासना का पेशा बना लेते हैं वह अनर्थ करते हैं, क्योंकि अगर कोई प्रार्थना एक दफ़ा भी सच्चे दिल से निकली थी तो कोई वज़ह नहीं कि चित्त की अवस्था बदल न गई होती और दिल का दरजा बढ़ न गया होता। यदि मन दूसरी क्लास (दरजे) में चढ़ गया, तो फिर पहली क्लास में रोना क्यों? यदि नहीं चढ़ा, तो वह प्रार्थना झूठ बकवास थी, अब झूठी बक बक को पेशा बनाया चाहता है। उपासना का परम प्रयोजन यह था कि शरीर के स्नेह से चित्त मुड़े और आत्मा संग जुड़े। सच्चे उपासक को जब शरीर से हुआ अपराध याद आता है, तो वह 'सांसारिक अपने आप' से भागना चाहता है। हरि की शरण में आता है और आत्मा से तदाकारता पाता है। ऐसा ध्यान एक दफ़ा नहीं, दो दफ़ा भी हो जाय तो फ़ायदा है, कोई डर नहीं। परन्तु जो लोग "पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः" को प्रतिदिन पड़े ही रटते हैं,

उनको इस प्रकार की आवृत्ति न केवल देह से सम्बन्ध पक्का देती है, बल्कि पाप-संस्कार मन में दृढ़ जमा देती है। शुद्ध अन्तःकरण और सच्चे हृदय वालों से भेद-उपासना कभी हो ही नहीं सकेगी, जैसे एम० ए० क्लास के विद्यार्थी का जी मिडल क्लास वालों की पुस्तकों में कभी लग ही नहीं सकता।

ज्ञानी।

अब ज़रा चौकन्ने होकर सुनने का समय है। लो अब फिर फोड़ते हैं भांडा। निर्भयता, जीवन मुक्ति, साम्राज्य, स्वराज्य, और किसी को कभी भी नहीं नसीब होते सिवाय उस पुरुष के, जो अपने आप को संशय रहित होकर पूर्ण ब्रह्म, शुद्ध सच्चिदानन्द नित्य मुक्त जानता है, जो सर्वत्र अपने ही स्वरूप को देखता है। क्यों हिलेगा उसका दिल जो एक आत्मदेव बिना कुछ और देखता ही नहीं? बड़ा भयानक घोर शब्द हुआ, पर सिंह क्यों डरे? वह तो सिंह की अपनी ही गर्ज थी। लोहा तलवार के जौहरों से क्या भय माने? वह तो उसी के तेज़ चमत्कार हैं। अग्नि अपनी ज्वाला से आप क्या संतप्त हो? तारे टूट पड़ें, समुद्र जल उठे, हिमालय उड़ता फिरे, सूर्य मारे ठंड के बर्फ़ का गोला बन जाय, आत्मदर्शी ज्ञानवान् को क्या हैरानी हो सकेगी, जिसकी आज्ञा से कुछ भी बाहर नहीं हो सकता?

तत्र को मोहः, कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ [ईश० उप० ७]

(जब एक ही एक देखा गया, अर्थात् सर्वत्र ऐक्य का अनुभव हुआ, तो ऐसे ऐक्य देखने वाले को फिर शोक और मोह कहाँ?)

अपि शीत रुचा वर्के सुतीक्ष्णे चेन्दु मण्डले।
अप्यधः प्रसरत्यग्नौ जीवन्मुक्तो न विस्मयी॥
प्रलयस्यापि हुँकारैर्महाचल विचालकैः।
विक्षोभं नैति यस्यात्मा स महात्मेति कथ्यते॥

सूर्य चाहे ठंढा हो जाय, चन्द्र मण्डल चाहे अत्यन्त गर्म हो जाय। अग्नि चाहे अधोमुख जलने लगे, परन्तु जीवनमुक्त को विस्मय नहीं होता। बड़े बड़े पर्वतों को अपने स्थान से डिगाने वाले प्रलय-हुँकारों से भी जिसका चित्त क्षोभ को नहीं प्राप्त होता, वह महात्मा कहा जाता है।

भेद-भावना दिल से छोड़। निर्भय बैठा मूछ मरोड़ ॥

सूर्य उसी के हुकुम से जलता है, इन्द्र उसी का पानी भरता है, पवन उसी का दूत है, उसी के आगे दरिय। . माथा रगड़ते हैं, राजे महाराजे, देवी देवता, वेद किताब जो कुछ भी है, एक आत्मदर्शी का संकल्प मात्र है। तीनों भुवन और चारों खानि जङ्गल हैं, जिनमें रौनक केवल एक चैतन्य पुरुष रूप ज्ञानवान् की है। त्रिलोकी लालटेन है, जिसमें ज्योतिरूप ज्ञानवान् है। चौदह लोक एक शरीर हैं, प्राण जिसके ज्ञानवान् है। बस वही सत् है, और कुछ भी नहीं। पृथ्वी अन्न पैदा करती है कि कभी ब्रह्मनिष्ठ के चरण पड़ें। ऋतु बदलते हैं कि कभी आत्म-स्वरूप महात्मा के दर्शन नसीब हों। "सुर तिय, नर तिय, नाग तिय" इन सब को उदर में बोझ उठाने पड़े, वेदना सहनी पड़ी, उस एक अज, अमर रूप ज्ञानी को प्रकट देखने के लिये। दुनिया के राज-काज उसके लिये थे, वह आया तो राज-काजों की ड्यूटी (कर्तव्य) पूरी हुई। घर बनते रहे थे, कपड़े बुने और पहने जा रहे थे, ब्रह्मनिष्ठ की पधरावनी के लिये। वह आया, सब परिश्रम सफल हो गये। रेलें चलती थीं, पोतें बहती थीं, कभी ब्रह्मनिष्ठ तक पहुँचने के लिये। युद्ध होते थे, लोग मरते थे, कभी जीवनमुक्त की झांकी के लिये। नाना विधि विकास (evolution) एक ज्ञानवान् रूप फल की ख़ातिर था। उपासना, प्रार्थना, भक्ति, नाक रगड़ना, आठ आठ आँसू रोना,

प्रेम की ज़रदी (पीत) कब तक थी, जब तक ज्ञान की लाली नहीं आई।

ब्रह्म विद इव सोम्य ते मुखं भाति ॥ (छांदो० उप०)

(हे प्यारे ! तेरा मुख ब्रह्मवित् के समान दीखता है)

प्रसंख्यान ।

अभेद उपासना की विधि : मनन, निदिध्यासन:—शास्त्र में से उन वाक्यों को चुन लिया, जो मन में खुबते, चित्त में चुभते हैं और उनको एकांत में बैठ कर नीचे दिखाई विधि से वर्त्ता। जैसे शङ्कर के आत्मपंचक स्तोत्र को ले लियाः—

नाहं देहोनेंद्रियाण्यं तरङ्गम् ।
नाहंकारः प्राणवर्गो न बुद्धिः ॥
दारापत्य क्षेत्रवित्तादि दूरः ।
साक्षीनित्यः प्रत्यगात्मा शिवोऽहं ॥

भावार्थः—

नहीं देह इन्द्रिय न अन्तः करण ।
नहीं बुद्ध्यहंकार वा प्राण मन ॥
नहीं क्षेत्र, घर बार, नारी न धन ।
मैं शिव हूं, मैं शिव हूं, चिदानन्दघन ॥

चौथे पाद को दिल में बारम्बार दुहराया, और नीचे दिखाए विचार पूर्वक दोहराते गये, यहां तक कि मन शिथिल हो जाय। निस्सन्देह, ऐसी तहक़ीक़ात (मीमांसा) से जिसमें विकल्प कभी स्वप्न में भी युक्त नहीं, मैं देह आदि नहीं, फिर देह-भ्रम को अपने में क्यों आने दूँगा ? देह-अभिमान करना, युक्ति दलील को उल्लंघन करना है, महा मूर्खता, बेअक़्ली है।

मैं शिव हूं, मैं शिव हूं चिदानन्द घन ॥

निस्संदेह वेद, वेदान्त का अन्तिम निष्कर्ष और कुछ नहीं। वेद और सत् शास्त्र मुझको देह आदि से भिन्न बताते हैं, मेरा अपने तईं देह आदि ठानना घोर नास्तिक बनना है, यह अपराध मैं क्यों करूँ?

मैं शिव हूं, मैं शिव हूं चिदानन्द घन॥

गुरू जी ने मुझे अपने साक्षात्कार के बल से कहा "मैं देह आदि नहीं।" फिर मेरा देहाभिमान रखना पूज्यपाद गुरू जी के मुँह और ज़बान पर जूते मारना है। हाय! यह उपद्रव मैं क्यों करूँ?

मैं शिव हूं, मैं शिव हूं चिदानन्द घन॥

शरीर आदि की पीड़ा, सम्बन्ध, लोगों की ईर्षा, द्वेष, सेवा, सन्मान से मुझे क्या? कोई बुरा कहे, कोई भला कहे, मैं एक नहीं मानूँगा। जो आप भूले हुए हैं, उनका क्या भरोसा? केवल शास्त्र और प्रमाण ही माननीय हैं, मुझ में कोई पीड़ा नहीं, कोई शोक नहीं, ईर्षा नहीं, राग नहीं, जन्म नहीं, मरण नही, देह नहीं, मन नहीं।

मैं शिव हूं, मैं शिव हूं चिदानन्द घन॥
मैं शिव हूं, मैं शिव हूं चिदानन्द घन॥
मैं शिव हूं, मैं शिव हूं चिदानन्द घन॥

मां छोटे बच्चे को आम्रफल खेलने को देता है। बच्चा दस्तूर के मुवाफ़िक़ हाथ से पकड़ कर मुँह के पास ले जाता है, और लगता है चूसने। चूसते चूसते आख़िर वह फल फूट पड़ा, और बच्चे के हाथ पर, मुँह पर, कपड़ों पर रस ही रस फैल गया। अब तो न कपड़े याद हैं, न माँ याद है, न हाथ मुँह का ही होश है, रसरूप हो रहा है। इसी तरह श्रुति माता का दिया

हुआ यह पका हुआ महावाक्य रूपी अमर फल एकान्त अन्तःकरण के साथ दुहराते दुहराते आखिर फूट पड़ता है, और परमानन्द समाधि आ जाती है।

आवृत्तिरसकृदुपदेशात्॥ [ब्रह्म सूत्र ४-१-२]

जब सर्व देश अपने आत्मा में पाने लगे, तो परोऽक्ष क्या रहा? और स्थान सम्बन्धी चिन्ता क्योंकर उठे? जब सर्व काल में अपने तई देखा, तो कल परसों आदि की फ़िकर कहाँ रही? जब सर्व मनुष्य और पदार्थ सचमुच अपना ही रूप जाने गये, तो यह धड़का कैसे हो कि, हा! जाने अमुक पुरुष मुझे क्या कहता होगा? जब कार्यकारण सत्ता आप हुए, तो चित्तवृत्तियों का बेड़ा कैसे न डूबे? मन पारा खाये हुए चूहे की तरह हिलने झुलने से रह जायगा। मानों चित्त के बच्चे ही मर गये। सहज समाधि तो स्वयं होनी ही होगी।

क्या सोचे क्या समझे राम, तीन काल का यां क्या काम?
क्या सोचे क्या समझे राम, तीन लोक नहिं उपजा धाम।
नित्य तृप्त सुखसागर नाम, क्या सोचे क्या समझे राम?

इस सिर से गुज़र जाने में जो स्वाद, शांति और शक्ति आते हैं, वही जानता है जो इस रस को चखता है। राजा जनक ने यह अमृत पीकर अपना अनुभव यूँ वर्णन किया है:—

नाहमात्मार्थ मिच्छामि गन्धान् घ्राण गतानपि।
तस्मान्मे निर्जिता भूमिर्वशे तिष्ठति नित्यदा॥
नाहमात्मार्थ मिच्छामि रसानास्येऽपि वर्त्ततः।
आपो मे निर्जितास्तस्माद्वशे तिष्ठन्ति नित्यदा॥
नाहमात्मार्थ मिच्छामि रूपं ज्योतिश्च चक्षुषः।
तस्मान्मे निर्जितं ज्योतिर्वशे तिष्ठति नित्यदा॥
नाहमात्मार्थं मिच्छामि स्पर्शान् त्वचि गताश्चये।

तस्मान्मे निर्जितो वायुर्वशे तिष्ठति नित्यदा ॥
नाहमात्मार्थ मिच्छामि शब्दान् श्रोत्र गतानपि ।
तस्मान्मे निर्जिता शब्दावशे तिष्ठन्ति नित्यदा ॥
नाहमात्मार्थ मिच्छामि मनो नित्यं मनोऽन्तरे ।
मनोमे निर्जितं तस्माद् वशे तिष्ठति सर्वदा ॥ [महाभारत]

भावार्थ उर्दू पद्य में

अपने मज़े की ख़ातिर गुल छोड़ ही दिये जब ।
रुप-ज़मीं के गुलशन मेरे ही बन गये सब ॥
जितने ज़बां के रस थे कुल तर्क कर दिये जब ।
बस ज़ायक़े जहां के मेरे ही बन गये सब ॥
ख़ुद के लिये जो मुझसे दीदों की दीद छूटी ।
ख़ुद हुस्न के तमाशे मेरे ही बन गये सब ॥
अपने लिये जो छोड़ी ख़्वाहिश हवा ख़ुरी की ।
बादे-सबा के झोंके मेरे ही बन गये सब ॥
निज की ग़रज़ से छोड़ा सुनने की आरज़ू को ।
अब राग और बाजे मेरे ही बन गये सब ॥
जब बेहतरी के अपनी फ़िक्रो-ख़याल छूटे ।
फ़िक्रो-ख़याल-रंगी मेरे ही बन गये सब ॥
आहा ! अजब तमाशा ! मेरा नहीं है कुछ भी ।
दावा नहीं ज़रा भी इस जिस्मो-इस्म पर ही ॥
ये दस्तो-पा हैं सबके, आँखें ये हैं तो सबकी ।
दुनिया के जिस्म लेकिन मेरे ही बन गये सब ॥

एक छोटे से बालक (वामदेव) का यह अनुभव है:—

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवां ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयन्युञ्जेहं कविरुशना पश्यतामा ॥
अहं भूमिमददामार्या याहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।

अहमपो अनयं नावशान्त मम देवासो अनुकेत मायन् ॥

[ऋग्वेद, ४, ३, २६]

(गर्भस्थित वामदेव ऋषि ने ज्ञान उत्पन्न होने पर अपने आत्म-अनुभव को इस प्रकार दर्शाया है:—"मैं ही मधु हूँ, मैं ही सूर्य हूँ, मेधावी दीर्घतमा का पुत्र कक्षीवान् नाम वाला ऋषि मैं ही हूँ। अर्जुनी के पुत्र कुत्स को भी मैं ही जनता हूँ। कवि अशना मैं ही हूँ। मैं ने ही मनु को पृथिवी दी है। मैं ही हवि देने वाले यजमान को धान्यवृद्धि निमित्त वृष्टि देता हूँ। मैं ही गरजते हुए वादलों (जलों) को सर्वत्र पहुँचाता हूँ। सभी देवता गण मेरे ही संकल्पानुसार कार्य करते हैं।)

प्रणव (ॐ) में इन मंत्रों के अर्थ का रंग भर कर, अर्थात् 'ॐ' को महावाक्य (ब्रह्मास्मि) का अर्थ देकर जपना, गाना, श्वास में भरना, चलते फिरते चिंतवन में रखना, ब्रह्मसाक्षात्कार में बहुत बड़ा साधन है।

एक स्त्री (वाक्) अपने स्वरूप को जानकर यूँ गाती है:-

१—अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणाभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥
२—अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये३यजमानाय सुन्वते ॥
३—अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्या वेशयन्तीम् ॥
४—मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति, यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति, श्रुधिश्रुतः श्रद्धिवं ते वदामि ॥
५—अहमेव स्वयमिदं वदामि, जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि, तं ब्रह्माणं तमृषिं सुमेधाम् ॥
६—अहं रुद्राय धनुरा तनोमि, ब्रह्म द्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश ॥

७–अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्व १ न्तः समुद्रे ।
ततो वितिष्ठे भुवनानु विश्वो तामूद्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥
८–अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथि, व्यैतावती महिना संबभूव ॥

[ऋ० वे० ८–७–११ सूक्त १२५]

[इस सूक्त में परमात्मा से तादात्म्य का अनुभव करती हुई अंभृण महर्षि की कन्या ब्रह्म विदुषी वाक् नाम वाली ने अपने को सर्व जगद्रूप और सर्वाधिष्ठान मैं ही हूँ ऐसा मानते हुए इस प्रकार से अपनी स्तुति की है ।

१–मैं ही रुद्र रूप से और मैं ही वसुरूप से घूम रही हूँ । मैं ही आदित्य रूप से तथा विश्वेदेवा रूप से घूम रही हूँ । मैं ही (ब्रह्म रूप रूप होने से) मित्र और वरुण को धारण करती हूँ । इन्द्र और अग्नि को तथा दोनों अश्विनीकुमारों को मैं ही धारण करती हूँ । मेरे ही में सम्पूर्ण जगत् (शुक्ति में रजत के समान) अध्यस्त है ।

२–सोम को मैं ही धारण करती हूँ । इसी प्रकार त्वष्टा, पूषा तथा भग को मैं ही धारण करती हूँ । तथा हवि से युक्त और सुन्दर हवि से देवताओं को तृप्त करने वाले, सोमवल्ली के रस को निकालने वाले, यजमान के लिये यज्ञ फल रूप (धन) को मैं ही धारण करती हूँ ।

३–सम्पूर्ण जगत् की ईश्वरी मैं ही हूँ । उपासकों को धन देनेवाली अर्थात् उपासना का फल देने वाली मैं ही हूँ । यज्ञ करने वालों में मैं प्रधान हूँ । इस प्रकार गुणों से युक्त, जगत्प्रपञ्च से स्थित, सम्पूर्ण भूतों को जीव भाव से अपने में प्रवेश करती हुई मुझे ही देवता लोग बहुत स्थानों में (आवाहन) करते हैं, अर्थात् जो करते हैं वह मुझको ही करते हैं ।

४–जो अन्न खाता है वह अन्न मुझ से ही खाया जाता है । जो देखता व श्वास लेता है वह मुझसे ही देखा जाता व श्वास लिया जाता है ।

और जो कहा हुआ सुना जाता है वह भी मुझ से ही कहा तथा सुना जाता है। जो इस प्रकार अन्तर्यामी रूप से स्थित मुझे नहीं जानते, वह मेरा ज्ञान न होने से संसार में ही क्षीण हो जाते है। हे विद्युत ! श्रद्धा और यत्न से मिलने योग्य ब्रह्म रूप वस्तु का मैं उपदेश करती हूँ, उसको सुनो।

५–मैं ही स्वयं इस (ब्रह्म रूप) वस्तु को कह रही हूँ। देवताओं से सेवित तथा मनुष्यों से सेवित मैं जिस-जिस पुरुष की रक्षा करना चाहती हूँ। उस उसको सबसे अधिक कर देती हूँ। उसी को जगत् का पैदा करने वाला ब्रह्मा बनाती हूँ। उसीको (ऋषि) अर्थात् अतीन्द्रिय पदार्थों का देखने वाला बनाती हूँ। उसी को अच्छी बुद्धि वाला बनाती हूँ।

६–ब्राह्मण द्वेषी और हिंसक त्रिपुरासुर के मारने के लिये मैं ही महादेवजी के धनुष को प्रत्यञ्चा से युक्त करती हूँ। तथा मैं ही भक्तों की रक्षा के लिये शत्रुओं के साथ संग्राम करती हूँ। तथा मैं ही पृथ्वी और आकाश में अन्तर्यामी स्वरूप से प्रविष्ट हूँ।

७–इस भूलोक के ऊपर पितृरूप आकाश को मैं ही पैदा करती हूँ। (आत्मा से आकाश और आकाश से सृष्टि पैदा होने के कारण आकाश को पिता कहा है)। नीचे समुद्र में जल प्रदान मुझ कारण रूप से ही होता है। और भी सम्पूर्ण स्वर्गादि विकारों का कारणभूत मायात्मक अपने देह से स्पर्श करती हूँ। मैं इस प्रकार की हूँ। इसी कारण से कारण रूप होकर मैं सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त होकर स्थित हूँ।

८–वायु के समान दूसरे की प्रेरणा के बिना ही कार्य रूप सम्पूर्ण भुवनों को कारण रूप से उत्पन्न करती हुई मैं प्रवृत्त हूँ। पृथ्वी आकाशादि सम्पूर्ण विकारों से परे, संग रहित उदासीन कूटस्थ ब्रह्म चैतन्यरूप मैं अपनी महिमा से सम्पूर्ण जगत् के रूप से पैदा होती हूँ।]

गुल खिलते हैं, गाते हैं रो रो बुलबुल।
क्या हंसते हैं नाले नदियां॥
रंगे-शफ़क़ घुलता है, बादे-सबा चलती है।
गिरता है छम छम बारां। मुझमें! मुझमें! मुझमें!

करते हैं अंजम जग मग, जलता है सूरज धक धक।
सजते हैं बागो-ब्यावां * ॥
बसते हैं लन्दन पैरिस, पुजते हैं काशी मक्का।
बनते हैं जिन्नत-उ-रिज़वां। मुझमें! मुझमें! मुझमें!

उड़ती हैं रेलें फर फर, बहती हैं बोटें झर झर।
आती है आंधी सर सर।
लड़ती हैं फौजें मर मर, फिरते हैं योगी दर दर।
होती है पूजा हर हर। मुझमें! मुझमें! मुझमें!
चरख का रंग रसीला, नीला नीला। हर तरफ़ दमकता है
कैलास झलकता है, बहर ढलकता है।
चाँद चमकता है। मुझमें! मुझमें! मुझमें!

सब वेद और दर्शन सब मज़हब।
कुरान† अञ्जील और त्रिपिटका।
बुद्ध, शंकर, ईसा और अहमद।
था रहना सहना इन सबका। मुझमें! मुझमें! मुझमें!

थे कपिल, कणाद और अफ़लातूँ,
इस्पन्सर, कैन्ट और हैमिल्टन।

---

* बियाबां, † कुरआन

श्री राम, युधिष्ठिर, इसकन्दर,
विक्रम, कैसर, लिज़बथ, अकबर।
मुझमें ! मुझमें मुझमें ! मुझमें !
हूँ आगे पीछे, ऊपर नीचे, ज़ाहर बातन मैं ही मैं।
माशूक़ और आशक़ शाइर मजनूं बुलबुल गुलशन, मैं ही मैं

इन्द्र (राजा) के आनन्द का समुद्र यूँ गरजता है:-

१–इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति।
कुवित्सोमस्यापामिति॥

२–प्रवाता इवदोधत उन्मापीता अयंसत। कुवि०
३–उन्मा पीता अयंसत रथमश्वा इवाशवः। कुवि०
४–उपमा मतिरस्थित वाश्रापुत्रमिव प्रियम कुवि०
५–अहं तष्टेव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम्। कुवि०
६–नहि ने अक्षिपच्चनाच्छांत्सुः पञ्च कृष्टयः। कुवि०
७–नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति। कुवि०
८–अभिद्यां महिना, भुवमभी३ मां पृथिवींमहीम्। कुवि०
९–हन्ताहं पृथिवीमिमानि दधानीह वेहवा। कुवि०
१०–ओषमित्पृथिवामहं जंघनानीह वेहवा। कुवि०
११–दिवि मे अन्यः पक्षो ३ धो अन्यमचीकृपम्। कुवि०
१२–अहमस्मि महा महोऽभिनभ्य मुदीषितः। कुवि०
१३–गृहो याम्यरंकृतो देवेभ्यो हव्य वाहनः। कुवि०
(ऋ० वे० ८–६–२१ सू० ११९)

[इन्द्र इस सूक्त से अपनी स्तुति कर रहा है।]

१–मैं स्तुति करने वालों को गायें और घोड़े देता हूँ। इस प्रकार का मेरा मन है, इसी लिये कि मैंने बहुतवार सोमपान किया है।

२–अत्यन्त कम्पित वायु जिस प्रकार वृक्षादि को (जल) पहुँचा देता

है, उसी प्रकार पान किये गये सोम मुझे अत्यन्त शीघ्र पहुँचा देते हैं। इसी कारण से कि मैंने बहुत बार-सोमपान किया है।

३–जिस प्रकार शीघ्रगामी घोड़े रथ को पहुँचा देते हैं, उसी प्रकार पिये गये सोम मुझे पहुँचा देते हैं, इसी कारण से कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

४–जिस प्रकार शब्द करती हुई धेनु प्रिय बछड़े से जा मिलती है, उसी प्रकार स्तुति करने वाले से की गई स्तुति मुझे उन लोगों से युक्त करती है। इसीलिये कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

५–बढ़ई जिस प्रकार रथ को ठीक करता है, उसी प्रकार मैं भी मन से स्तुमि को (ठीक) सफल करने को जाता हूँ। इसी कारण से कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

६–देवता और मनुष्यादिक भरी दृष्टि से वस्तु को छिपा नहीं सकते। इसी लिये कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

७–पृथ्वी और द्युलोक दोनों मेरे पक्ष (पर) की भी समानता नहीं कर सकते। इसी लिये की मैंने बहुत बार सोमपान किया।

८–ऊपर कही बात का इस मन्त्र से समर्थन करते हैं। मैं अपनी महिमा से द्युलोक को नीचा दिखलाता हूँ और इसी प्रकार इस बहुत बड़ी पृथ्वी को भी नीची दिखलाता हूँ। इसी कारण से कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

९–मैं इस बात की सम्भावना करता हूँ कि मैं इस पृथ्वी को उठाकर अन्तरिक्ष या द्युलोक में रख दूँ। इसी लिये कि मैंने बहुत बार सोम-पान किया है।

१०–पृथ्वी के सामने अपने तेज से सन्ताप देनेवाले आदित्य को मैं अन्तरिक्ष या द्युलोक में बहुतायत से पहुँचा दूँ। इसी लिये कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है।

११–मेरा एक पक्ष (पर) द्युलोक में स्थापित है। नीचे पृथ्वी पर मैंने

दूसरा पक्ष स्थापित किया है । इसी लिये कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है ।

१२–अन्तरिक्ष में उदय को प्राप्त हुआ सूर्य स्वरूप मैं ही अत्यन्त तेजस्वी हूँ । इसीलिये कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है ।

१३–मैं हविओं का ग्रहण करनेवाला, यजमानों से अलंकृत, इंद्रादि देवताओं को हवि पहुँचाने वाला अग्नि स्वरूप होकर हविओं को प्राप्त करता हूँ । इसी लिये कि मैंने बहुत बार सोमपान किया है, इसी लिये मैंने सोमपान किया । इस प्रकार इन्द्र ने अपनी स्तुति की ।]

पीता हूँ नूर हरदम, जामे-सरूर पै हम ।
है आसमां पियाला, वह शराबे-नूर वाला ॥

है जी में अपने आता, दूँ जो है जिसको भाता ।
हाथी ग़ुलाम घोड़े, ज़ेवर ज़मीन जोड़े ।
ले जो है जिसको भाता, मांगे बग़ैर दाता ॥ पीता०

हर क़ौम की दुआयें, हर मत की इलतजायें ।
आती हैं पास मेरे, क्या देर, क्या सवेरे ।
जैसे अड़ाती गायें, जंगल से घर को आयें ॥ पीता०

सब ख़्वाहिशें, नमाज़े, गुण, कर्म, और मुरादें ।
हाथों में हूं फिराता, "मेमार जैसे ईंटें ।
हाथों में है घुमाता", दुनिया हूं यूँ बनाता ॥ पीता०

दुनिया के सब बखेड़े, झगड़े फ़साद झेड़े ।
दिल में नहीं रड़कते, न निगह को बदल सकते ।
गोया गुलाल हैं यह, सुर्मा मिसाल हैं यह ॥ पीता०

नेचर के लाज़* सारे, अहकाम हैं हमारे।
क्या मेहर क्या सितारे, हैं मानते इशारे।
हैं दस्तो-पा हर इक के, मरज़ी पै जैसे चलते ॥ पीता०

कशिशे-सिक़ल की .कुदरत, मेरी है मेहरो-उलफ़त।
है निगाहे-तेज़ मेरी, इक नूर की अन्धेरी।
बिजली, शफ़क़, अंगारे, सीने के हैं शरारे ॥ पीता०

मैं खेलता हूं होली, दुनिया है गेंद गोली।
ख़्वाह इस तरफ़ को फेंकूं, ख़्वाह उस तरफ़ चला दूं।
पीता हूं जाम हरदम, नाचूं मुदाम धम धम।
दिन रात है तरन्नम, हूं शाहे-राम बेग़म ॥ पीता०

किंकरोमिक्वगच्छामि किं गृह्णामित्यजामिकिम्।
आत्मना पूरितं विश्वं महाकल्पाम्बुना यथा ॥
सबाह्याभ्यन्तरे देहे ह्यध ऊर्ध्वं च दिक्षु च।
इत आत्मा ततश्चात्मा नास्त्यनात्ममयं जगत् ॥
न तदस्ति न यत्राहं न तदस्ति न यन्मयि।
किमन्यदभिवाञ्छामि सर्वं संविन्मयं ततम् ॥
स्फार ब्रह्मामलाम्भोधि फेनाः सर्वे कुलाचलाः।
चिदादित्य महा तेजो मृगतृष्णा जगच्छ्रियः ॥

भावार्थ :—

कहां जाऊँ? किसे छोडूं? किसे ले लूं? करूँ क्या मैं?
मैं इक तूफ़ां क़यामत का हूं? पुर हैरत तमाशा मैं ॥
नहीं कुछ जो नहीं मैं हूं, इधर मैं हूं उधर मैं हूं।
मैं चाहूं क्या? किसे ढूंढूं, सभों में ताना बाना मैं ॥

* Laws of Nature=प्रकृति के नियम।

मैं बातिन, मैं अयां, ज़ेरो-ज़बर, चपरास्त, पशो-पस ।
जहाँ मैं, हर मकां मैं, हर ज़मां, हूंगा, सदा था मैं ॥

अस्मे सूर्या चन्द्रमसाभि चक्षे ।
श्रद्धेकमिन्द्रचरतोवितर्तुरम् ॥

The sun and the moon revolve in regular succession that we may have faith, O India! For *this* the universe did roll.

हे इन्द्र! 'हमारे हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो' इस कारण ही सूर्य और चन्द्र नियमानुसार पारी पारी से नित्य भ्रमण करते रहते हैं। इसी हेतु ब्रह्माण्ड भी ढुलका।

ॐ ॐ ॐ

ईश्वर-भक्ति ।

न कभी थे बादा-परस्त हम, न हमें ये कैफ़े-शराब है,
लबे-यार चूमे थे ख़्वाब में, वही जोशे-मस्तीए-ख़्वाब है।

(न हम कभी सुरा-प्रेमी थे और न हमें मदिरा का उन्माद ही है ; (हमने तो) स्वप्न में (अपने) प्यारे के अधरों का चुंबन किया था, उसी स्वप्न की मस्ती की गर्मी है ।

कहते हैं सूर्य तेरी छाया है, मनुष्य तेरे नमूने पर बनाया गया है, मनुष्य में तेरा श्वास फुँका हुआ है। तू फूलों में हँस रहा है, वर्षा में तार-तार आँसू बहाता है। हवा तेरी ही साँस है। रातों को मानो तू सोता है। दिन चढ़ना मानो तेरी जागृत अवस्था है। नदियों में तू गाता फिरता है। इन्द्र-धनुष तेरा झूला है। प्रकाश की बहिया में तू 'क्विक-मार्च' (quick march—तेज़ गति) करता चला जाता है। हाँ, यह सच है कि यह रङ्ग-बिरङ्ग जामा, यह इन्द्र-धनुष, ये बादल, ये नदियाँ, ये वृक्ष, ये तरह तरह के कपड़े तेरे से अन्य नहीं। तू ही इन सब सारियों में झलक रहा है। ये सम्पूर्ण नाम-रूपात्मक कपड़े मल-मल या जाली के कपड़े हैं, जो तेरे शरीर को—तेरे तेजोमय स्वरूप को—आधा दिखाते और आधा छिपाते हैं। ऐ प्यारे! ये चादरें और कपड़े क्यों? यह अपने आप को पर्दों और जामों में छिपाना कैसा? यह घूँघट की ओट में चोटें करने के क्या अर्थ? क्या पर्दों को उठा कर बाहर आने में तुझे लाज आती है? क्या तेरा शरीर, तेरा स्वरूप सुन्दर नहीं है जो तू नङ्गा होने में झिझकता है? क्या तेरे सिवा कोई और है

जिससे तू शरमाता है ? अगर यह बात नहीं है, तो प्यारे ! फिर ये कपड़े, यह जामा, यह बुर्क़ा, यह पर्दा उतार। आज तो हम तुझे नंगा देखेंगे—उघारा देखेंगे। देखेंगे, और अवश्य देखेंगे। प्यारे ! ओ प्यारे !! उतार दे कपड़े। आ मेरे प्यारे !!!

क्यों ओहले बैह बैह झाकीदा ?
कहो पर्दा कस तों राखीदा ?

अर्थात् ओट में बैठ बैठ कर ऐ प्यारे ! तू क्यों झाँकता है ? और कहो यह पर्दा किससे तू रख रहा है ?

उसने इसका जो उत्तर दिया वह बिजली की तरह मेरे हृदय में चमक गया। वह उत्तर यह था—"न तो शरम है मुझे नंगा होने में, न डर है, और न कुरूप हूँ जो कपड़े उतारने में झिझकता हूँ। लेकिन क्या तू सचमुच मुझसे प्रेम रखता है ? क्या तुझको मुझसे सच्ची प्रीति है ? मैं भी मुद्दत से तेरे प्रेम के मारे बादलों में रो-रोकर और बिजली में आँखें फाड़-फाड़कर तेरी खोज में था। क्या तू मेरा प्रेमी है ? अगर है तो जल्दी कर। कपड़े उतार। तू अपने उतार, मैं अपने उतारूँ। ले, अभी मिलाप होता है। देर न कर ; गले मिल। चिकें और पर्दे फाड़ डाल। दीवारें ढाह दे, नंगा तो हो। नंगा ख़ुदा से चंगा। यह दर्जा, यह अहंकार, यह शरीर और नाम की पाबंदी (क़ैद), यह मेरा तेरा, ये दावे, ये तरह तरह के मंसूबे, ये तरह तरह की हुकूमत-बाज़ियाँ, यह तरह तरह की हीलासाज़ियाँ (बहाने बाज़ियाँ) उतार दे यह कपड़े ! अरे उतार दे यह कपड़े !" ।

कपड़े उतारे तो क्या था ? उसकी रज़ाइयां, दुलाइयाँ उसके लिहाफ़ और तोशक (यह बादल, यह वर्षा, यह रात और दिन) मेरे लिहाफ़ और तोशक हो गए। दोनों एक ही बिस्तर में पड़ गए। अब क्या था।

मन तो शुदम, तो मन शुदी; मन तन शुदम, तो जाँ शुदी।
ता कस न गोयद बाद ज़ीं, मन दीगरम तो दीगरी॥

अर्थात् मैं तू हुआ, तू मैं हुआ; मैं तन हुआ, तू प्राण हुआ। जिससे कोई पीछे यह न कहे कि मैं और हूँ, तू और है।

इस मस्ती के जोश में रज़ाइयां और दुलाइयां भी उतर गईं। न कपड़े रहे न रंग-रूप; न दुनिया रही न दीन; नाम और रूप का चिन्ह ही न रहा। आप ही आप अकेला रह गया।

आप ही आप हूँ याँ, ग़ैर* का कुछ काम नहीं।
ज़ाते‡—मुतलक़ में मिरी शक्ल नहीं, नाम नहीं॥

वास्तव में लेक्चर तो बस इतना ही होना चाहिये था—

दिया अपनी .खुदी को जो हमने मिटा,
वह जो पर्दा सा बीच में था न रहा।
रहे पर्दे में अब न वह पर्दानिशीं,
कोई दूसरा उसके सिवा न रहा॥

अब सुनिये कि .खुदी क्योंकर मिटती है। क्या .खुदी का मिटना और है और .खुदा का पाना और?—नहीं, एक ही बात है। बहुतों का यह ख़याल है कि .खुदी को निकालने से .खुदा मिलता है।—

हरदम अज़ ना.खुन ख़राशम सीनह–ए–अफ़गार रा।
ता ज़ि दिल बेरूँ कुनम ग़ैरे–ख़याले–यार रा॥

अर्थात् मैं (अपने) हृदय–तल को इस लिये हरदम नखों से खुर्चा करता हूँ कि (मेरे) दिल से प्यारे से भिन्न का ख़याल दूर हो जाय।

लेकिन अपना तो यह अनुभव है कि .खुदा के पाने से .खुदी निकलती है। जब यार ही यार रह गया तब .खुदी निकल गई।

* दूसरा, अन्य। ‡ तत्व स्वरूप या वास्तविक स्वरूप।

चुनाँ पुरशुद फिज़ाए-सीनह अज़ दोस्त।
ख़याले-ख़्वेश गुमशुद अज़ ज़मीरम॥

अर्थात् मित्र के ख़याल से मेरा हृदयाकाश ऐसा भर गया कि मेरे मन से अपने आप का ख़याल ही खो गया।

एक प्याले में पानी या तेल भरा था। उसमें पारा डाल दिया, तो पानी या तेल आप ही निकल गया। बुल्लहे शाह नाम का पंजाब में एक साधु हुआ है। वह सैय्यद (मुसलमान) कुल का था, जाति का नहीं। (जाति का तो प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर ही है।) उसैका गुरु माली कुल का था। वह अपने गुरु के पास गया और रो-रोकर कहा कि "भगवन्! कृपा कीजिये, दया कीजिये, कोई ऐसा उपाय बताइये कि ख़ुदी (अहंकार) दूर हो और ख़ुदा को पाऊँ।" उस समय उसका गुरु माली प्याज़ की कयारी से एक गाँठ एक तरफ़ से उखाड़कर दूसरी तरफ लगा रहा था। उसने कहा—"ख़ुदा का है क्या पाना, इधर से उखाड़ना उधर लगाना।" तुम कहते हो ख़ुदा आसमान पर है। अरे! आसमान पर बैठे बैठे-बादलों में रहते रहते-तेरे ख़ुदा को ज़ुक़ाम हो जायगा। उखाड़ उसको वहाँ से और जमा दे अपनी छाती में, यहाँ वह गर्म रहेगा, और ख़ुदी के ख़याल (मैं) को उखाड़ अपनी छाती से और बो दे सब देहों में। ऐसा प्रेम पैदा कर कि सब शरीरों की "मैं" को अपनी "मैं" समझने लगे। ख़ुदी का निकालना और ख़ुदा का पाना एक ही बात है, दोनों एक समानार्थ हैं। मगर ख़ुदी का यह पर्दा किस तरह मिटता है? दो रीतियों से, और दोनों रीतियों पर चलना आवश्यक है। देखो, यह रुमाल का एक पर्दा है, जो मेरी आँख पर रक्खा हुआ है। इस पर्दे के उठाने का एक उपाय तो यह है कि आँख पर

से उठा लिया, या यों सरका दिया या गिरा दिया. अर्थ एक ही है ; मगर सब दशाओं में पर्दे को सिर्फ़ सरकाया गया, फाड़ा नहीं गया ; हटाया गया, पतला नहीं किया गया। लेकिन अगर पर्दे को सिर्फ हटाते ही रहें, तो यह पर्दा ऐसा है, जैसे झील या तालाब पर काई। जब हम इस काई को सरका देते हैं, तो साफ़ पानी झलकने लगता है। थोड़ी देर के बाद वह काई फिर अपनी जगह पर आ जाती है, और स्वच्छ पानी छिप जाता है। यही संसारी लोगों का हाल है। वे .खुदी के पर्दे को हटा कर .खुदा के दर्शन करते हैं, मगर सिर्फ़ थोड़ी देर के लिये। स्थायी एकता प्राप्त करने के लिये एक और क्रिया की आवश्यकता है।

काई को थोड़ा-थोड़ा तालाब के बाहर फेंकते जायँ, तो वह पतली होती चली जायगी, और धीरे-धीरे तालाब नितान्त साफ़ हो जायगा। इसी तरह उस पर्दे को, जो मनुष्य और ईश्वर के बीच में पड़ा है, अगर सदैव के लिये उठाना है तो उसका उपाय और है। राम हिमालय में रहा है, जहाँ उसने अमरनाथ, बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री आदि की पैदल यात्रा की है। इसने कई बार रास्ते में साँप देखे, जो देखने में मुर्दा दीखते थे, मगर वास्तव में वे सर्दी में जकड़े हुए कुण्डली मारे इस तरह पड़े हुए थे, मानो उनमें जान ही नहीं है। राम ने उनमें से एकाध को पकड़ कर हिलाया तो मालूम हुआ कि जीते हैं। एक आदमी एक साँप को, जो देखने में मुर्दा था, पकड़ लाया। बच्चों ने ले जाकर उसको धूप में रख दिया। गर्मी पाकर वह जी उठा। अब तो लगा फुंकारने। एकाध लड़के को उसने डस भी लिया। इसी तरह आप के मन रूपी साँप से आप की .खुदी थोड़ी देर के लिये जब दूर हो जाती है, तो मन चेष्टा रहित हो जाता है।

उस समय तुम योग की अवस्था में होते हो। मन के इस तरह से मर जाने का नाम ईश्वर-दर्शन व आत्मसाक्षात्कार है। ख़ुदी (अहङ्कार) के मिट जाने का नाम ईश्वर से अभेद है। किन्तु स्थायी एकता (अभेद) के लिये मन रूपी साँप को मुर्दा सा कर देना काफ़ी नहीं है। साँप के दाँत तोड़ डालिये, फिर चाहे साँप जागता हो या सोता। मुर्दा दीखता हो या ज़िन्दा, होश में हो या न हो—कोई परवा नहीं, कोई डर नहीं। जब उस में विष ही न रहा तो फिर उसका चलना फिरना उसके न चलने-फिरने के समान है। वेदान्त तो बे-दाँत है।

एक यत्न तो यह था कि थोड़ी देर के लिये इस मन को मुर्दा बना लो ; जैसे किसी सत्संग में बैठिये, मन ने प्रेम की ठण्डक पाई और मुर्दा हो गया। मगर जब घर में आये और गृहिणी ने गर्म-गर्म चूल्हा दिखा दिया, तो गर्मी पाकर ज़हर फिर वैसा ही हो गया।

एक मनुष्य ने शराब पीकर घर बेंच डाला। जब होश में आया तो अर्ज़ी दी कि "मैंने शराब पीकर घर बेंच डाला था, मेरे होश-हवास ठीक न थे। अब मैं अपने इक़रारनामे से इनकार करता हूँ।" इसी तरह मनुष्य एक ओर तो कहता है कि 'हे ईश्वर! सब तेरे अर्पण, मैं तेरा, माल तेरा, जान तेरी, घर-बार तेरा, तेरा, तेरा आदि—।' जब घर में गया और स्त्री ने बांह दिखा कर कहा कि मेरा चूड़ा (ज़ेवर) पुराना हो गया, लड़के का विवाह है, और इसी तरह के खट्टे अचार खिलाये गये, तो सब नशे उतर गये। सब तन-मन-धन ईश्वर से छीन लिया। ख़ुदी की क़ैद में आ फँसे। प्रेम-सुराही पीकर थोड़ी देर के लिये सब कुछ ब्रह्मार्पण कर देना भी ख़ूब है। लेकिन सच्चा त्याग तो होश-हवास होते हुए साक्षात्कार की कृपा से

होता है। अगर मनुष्य चाहे तो दुई के पर्दे को सदैव के लिये तोड़ सकता है। उपाय यह है कि पर्दे की तहों को पतला बनाते चले जाओ। इस तरह तहें उतारने से पर्दा पतला होता चला जायगा, यहाँ तक कि वह इतना पतला हो जायगा कि उसका होना और न होना बराबर हो जायगा। पर्दे को सरका देना कर्म है, और सदैव के लिये पर्दे को पतला करते-करते उठा देना आत्मसाक्षात्कार है।

अब संसार में जितने धर्म हैं, राम उनको तीन श्रेणियों में विभक्त करता है। उनमें सब आ जाँयगे। एक तो वे हैं जिनके पर्दे को राम कहता है "तस्यैवाहं" अर्थात् "मैं उसी का हूं।" फिर वे हैं जिनकी अवस्था को हम "तवैवाहं" अर्थात् "मैं तो तेरा ही हूं" नाम दे सकते हैं। इसके आगे वे हैं जिनका दुई का पर्दा ऐसा पतला हो गया है मानों है ही नहीं "त्वमेवाहं" अर्थात् "मैं तो तू ही हूं" अनलहक़, शिवोऽहम् है। यह भी पर्दा अब बिलकुल उठ जाता है, तो ये शब्द भी नहीं कहे जा सकते।

"तस्यैवाहं"—"मैं उसी का हूं"–वालों के लिये ईश्वर ओट (पर्दे) में है, "तवैवाहं"—"मैं तेरा ही हूं"–वालों के लिये ईश्वर समक्ष उपस्थित है, सामने आ गया, पर्दा सूक्ष्मतर हो गया। दूरी बहुत कम रह गई। "त्वमेवाहं"—"मैं तो तू ही हूं"–वालों के लिये ईश्वर स्वयं वक्ता हो गया, अन्तर बिलकुल मिट गया, पर्दा बहुत ही सूक्ष्म हो गया। लेकिन मोटाई के विचार से पर्दा किसी अवस्था में हो, तब भी पर्दे वाली भेद भाव की दशा कहलाती है। और पर्दा जब बिलकुल उठाया जाय, तो वाणी और जिह्वा से परे की अवस्था हो जाती है। पूर्ण ज्ञानी कहता हैः—

अगर यक सरे मूए बरतर परम।
फ़रोगे तजल्ली बिसोज़द परम॥

अर्थात् अगर मैं बाल बराबर भी इससे अधिक उड़ूँ, तो तेज का प्रकाश मेरे परों को जला दे।

जहाँ से वाणी और शब्द इस तरह लौट आते हैं जिस तरह दीवार की ओर फेंका हुआ गेंद ठोकर खा कर लौट आता है; वहाँ पर शब्द भी नहीं, वाणी भी नहीं, वहाँ अनलहक़, ब्रह्मास्मि, शिवोऽहम् कहने का पतला पर्दा भी न रहा। जहाँ सच्चा प्रेम होता है, वहाँ प्रेम के बढ़ते-बढ़ते दूरी या अन्तर का रहना असम्भव है। पर्दा कहीं रह सकता है? कदापि नहीं। सांसारिक प्रेम का एक उदाहरण लीजिये। यहाँ सब प्रकार के मनुष्य मौजूद हैं। बताइये किसका किसके साथ अधिक प्रेम है। इसका उत्तर यह है—"उसके साथ जिससे दुई का अन्तर थोड़ा है।" मनुष्य को जो प्रेम अपने भाई से है, दूसरे से नहीं। जैसी पुत्र से प्रीति होगी, भाई से न होगी। क्या कारण है? पुत्र को जानता है कि वह मेरा ख़ून है—मेरा हृदय मेरा अन्तःकरण है—मेरी जान, मेरा प्राण है। आकर्षण का नियम (Law of Gravitation) भी यही है। जितनी ही दूरी कम होती जायगी, दूरी के घटाव के हिसाब से आकर्षण बढ़ता जायगा। ज्यों ज्यों दूरी कम होती जाती है, प्रेम अधिक होता जाता है, और यही दशा उसके अक्स (प्रतिबिम्ब) की है। ज्यों ज्यों प्रेम बढ़ेगा, अन्तर कम होता जायगा।

वादए-वस्ल चूँ शवद नज़दीक।
आतिशे-शौक़ तेज़तर गर्दद॥

अर्थात् मिलने या एक होने का वादा जितना ही निकट होता जाता है, शौक़ (आनन्द) की अग्नि उतनी ही तेज़ होती जाती है।

स्त्री या प्रियतमा के साथ भाई और बेटे से भी अधिक प्रेम होता है। पुत्र तो ख़ून, हड्डी और चाम से पैदा हुआ था। स्त्री

को तुम अर्द्धांगी, अपना ही आधा शरीर कहते हो, अपना ही दूसरा अपना-आप समझते हो। प्रियतमा के साथ प्रेम क्या इसको सहन कर सकता है कि समय या स्थान की दूरी दोनों के बीच में पड़ जाय? कदापि नहीं। अगर समय की दूरी है, तो जी चाहता है कि दुनिया की जंत्रियों में से जुदाई के दिन साफ़ उड़ जायँ; अगर पच्चीस मील की दूरी है, तो इच्छा होती है कि यह दूरी न रहे; अगर सिर्फ़ दीवार का बीच है, तो कहते हो कि यह भी बीच से हट जाय तो अच्छा है; अगर कपड़े का अंतर रह गया, तो जी चाहता है कि यह कपड़ा भी बीच से उठ जाय; अगर हड्डी और चाम का अंतर रह गया है, तो ऐ छाती, हड्डी, ख़ून और मांस! निकल-निकल, बिलकुल निकल जा, यार हम, हम यार।

मन तो शुदम तो मन शुदी, मन तन शुदम तो जाँ शुदी।
ता कस न गोयद बाद-अज़ीं, मन दीगरम तो दीगरी॥

जब तक तुम दोनों एक नहीं हो जाते, प्रेम दम नहीं लेने देता। ये दुनिया के प्रेम के दर्जे हैं। जब दुनिया के प्रेम के ये दर्जे हैं, तो क्या ईश्वर के प्रेम में कोई और दर्जे हो जायँगे? संसार में एक यही नियम है, जो तीनों लोकों पर प्रभाव डाले हुए है, जो त्रिलोकी पर शासन करता है। जब प्रेमी की आँखों से आँसू के बूँद टपकते हैं, तो वही आकर्षण का नियम काम करता है, जो आकाश में तारे टूटते समय। इधर आँसू की बूँद गिरी, उधर तारा टूटा, एक ही नियम की बदौलत। संसारी प्रेम और ईश्वरीय प्रेम दोनों के लिये एक ही नियम है। अगर प्रेम सच्चा है तो जब तक पूर्ण एकता न हो लेगी, वह विश्रान्ति न लेने देगा।

अब राम वह उदाहरण देगा जिनमें दिखाया जायगा कि

पर्दा मोटे से मोटा क्यों न हो, बिना पतला किये भी सरक सकता है। मगर वही थोड़ी देर के लिये। हिंदू-मुसलमानों के यहाँ सैकड़ों दृष्टांत मौजूद हैं जिनसे विदित होगा कि सच्चे प्रेम भरे भक्तों और बुज़ुर्गों की सचाई के बल से कैसा दलदार पर्दा उठ जाता है। मौलाना रूम ने एक गड़रिये का दृष्टान्त दिया है कि यह गड़रिया तूर पर्वत पर एक पहाड़ी चोटी पर खड़ा हुआ प्रार्थना कर रहा था कि "हे ईश्वर! दया कर, तरस खा। अपने दर्शन दे। देख मैं तेरे लिये अपनी खाँगड़ बकरियों का ताज़ा ताज़ा दूध लेकर आया हूं। अपनी झाँकी दिखा। मैं तुझे यह दूध पिलाऊँगा। मैंने दही जमाया है, जिससे तेरे बाल धोऊँगा। तेरी मुट्ठी भरूँगा। मैंने सुना है, तू एक है, अद्वितीय है, और अकेला है। हाय! जब तू चलता होगा तो तेरे पैर में काँटे चुभते होंगे, रोड़े चुभते होंगे। कौन तेरे काँटे निकालता होगा। कौन रोड़े अलग करता होगा। मैं तेरे काँटे निकालूँगा, रास्ते से रोड़े अलग करूँगा। हे प्रभो! कृपा कर, मैं तेरे पँखा झलूँगा, तेरे पैर दबाऊँगा, तेरी जुएँ निकालूँगा।" वह यह कहता और रोता जाता था। इतने में हज़रत मूसा पधारे। दण्डा निकाल बेचारे की पीठ पर दे मारा और कहा—"ऐ काफ़िर! तू क्या बकता है? ख़ुदा को इलज़ाम लगाता है? ख़ुदा की शान में कुफ़्र के कलमे निकालता है? कहता है, मैं तेरी जुएँ निकलूँगा। अरे ज़ालिम! क्या इस तरह ख़ुदा मिलता है?" गड़रिये ने कहा—"क्या ख़ुदा न मिलेगा?" मूसा ने कहा—"नहीं, तुझ पापी को न मिलेगा।" यह सुनकर बेचारा गड़रिया कहने लगा—"अगर तू नहीं मिलता तो ले हम भी नहीं जीते।" यह कहना था कि उसी समय एक बूढ़े पुरुष ने कूदकर उसके कंधों पर हाथ रख दिया। यदि ईश्वर है, और

है क्यों नहीं, और अगर वह ऐसे अवसरों पर भी हाथ न रक्खे, तो अपने हाथ काट डाले।

सद जाँ फ़िदा आँ कि ज़ुबानो-दिलश यकेऽस्त।

अर्थात् सैकड़ों प्राण उसपर न्यौछावर हैं जिसकी वाणी और मन एक है।

इसका नाम है धर्म। धर्म शरीर और बुद्धि का आधार है। मन और बुद्धि का उसमें लीन हो जाना ही धर्म है। उस व्यक्ति में, चाहे वह किसी प्रकार का या किसी ढंग का था, उसके शरीर, नाम, मन, बुद्धि कुछ ही थे, मगर वह ईश्वर को कोई दूसरा नहीं जानता था। वह उसके तत्त्व में लीन हो गया। सच्चाई इसको कहते हैं, विश्वास इसी को कहते हैं। मूसा ने कहा—"गड़रिये! तू ईश्वर से ठठोली कर रहा है?" राम कहता है कि जो लोग इस गड़रिये से अधिक ईश्वर का ज्ञान रखते हैं, लेकिन अगर सच्चाई नहीं रखते, अगर उनकी वाणी और मन एक नहीं, तो वे लोग ईश्वर से मख़ौलबाज़ी करते हैं। वह गड़रिया ईश्वर को जानता था। ईश्वर को माननेवाले की बात और होती है और जाननेवाले की और। यदि यहाँ कोई अँगरेज़ आ जाता है जैसे डिप्टी-कमिश्नर, कमिश्नर या लेफ़्टेंट गवर्नर, तो सबके सब उठ खड़े होते हैं। सब चुप; काटो तो देह में ख़ून नहीं। उनको उसके सामने झूठ बोलने का साहस नहीं होता, किसी स्त्री की ओर कुदृष्टि से देखने की हिम्मत नहीं होती, वह कोई और भी बुरा काम नहीं करते। परमेश्वर को मानते और सर्वव्यापी व सर्वदर्शी जानते हो? मगर हाय ग़ज़ब! उस सर्वव्यापी और सर्वदर्शी को मानते हुए किसी स्त्री को देखो और बुरी दृष्टि पड़े? उस स्त्री के नेत्रों में परमेश्वर का प्रकाश था, तुमसे आँखें लड़ाते और ईश्वर को मानते तो क्या पछाड़

खाकर न गिर पड़ते? अब राम कहता है कि गड़रिये को, उस पर से सब ईश्वर से ठठोली न्योछावर हैं।

इस प्रकार के दृष्टान्त और भी हैं। एक हिंदू का दृ० अब राम देगा। एक लड़का हुआ है नामदेव और उसका नाना था वामदेव। यह वामदेव ठाकुर जी की मूर्ति की पूजा करता था। लड़का अपने नाना के पास आकर कहता है, नानाजी, यह क्या है? नाना ने कहा:—"ठाकुर है, परमेश्वर गोपाल के रूप में आया हुआ है।" लड़के ने गोपाल जी की मूर्ति देखी। कृष्ण एक छोटा सा बालक है, वह घुटनों के बल चल रहा है, वह मक्खन का पेड़ा चुराये हुए चुपके चुपके लौटा आ रहा है। कुछ दूर आगे बढ़कर पीछे घूम कर देख रहा है कि माँ ने तो नहीं देखा। एक हाथ में तो मक्खन है और दूसरा हाथ भूमि पर टिका हुआ है। यह पत्थर की मूर्ति है या किसी धातु की? यह बाल गोपाल प्यारे कृष्ण की मूर्ति है। उस लड़के ने इस ईश्वर को देखा। और इस उदाहरण के के अनुसार कि:—

कुनद हमजिंस बा हमजिंस परवाज़।
कबूतर बा कबूतर काज़ बा काज़।

अर्थात् हमजिंस अपने हमजिंस के साथ उड़ा करता है, जैसे कबूतर कबूतर के साथ और कौआ कौआ के साथ।

छोटा सा बच्चा बड़े भारी ईश्वर से कैसे प्रीति करता? बच्चे के लिये बच्चा ही ईश्वर होगा, तो उसको उसका प्रेम होगा। प्रेम किसी के कहने सुनने से नहीं होता। प्रेम वहीं होगा जहाँ हमारा इष्ट होगा। छोटे से नामदेव के मन में निराकार परमेश्वर का ख़याल क्योंकर जमता? उसके मन में तो यही

..मेश्वर जमा। राम छोटा था तो उसके मनको ..र ने चुराया था। लड़का अपने नाना से कहता है:- ..की पूजा करूँगा।" नाना ने कहा-"तू उसकी पूजा के .. नहीं है, न नहाता है न धोता है।" एक दिन नाना चला ..या, तो नानी से कहा:-"नानी! ठाकुरजी को नीचे उतार दो, मैं पूजा करूँगा"। नानी ने कहा:-"कल सवेरे, जब नहा धो लोगे।" उस रात को वह कई बार चौंक पड़ा और नानी व माँ को जगाकर कहता है:-"सबेरा होगया, ठाकुरजी को नीचे उतार दो"। वह कहती है, "अभी रात है, सो रहो।" अन्त में सबेरा हुआ। रात बीती। लड़का नदी में डुबकी मार कर जल्दी से आ गया। विधि विधान तो वह जानता न था, पानी जो लाया था उसमें ठाकुर जी को डुबो दिया। और जल्दी निकाल कर कुछ पोंछा, कुछ छोड़ दिया। अब माँ से लड़का कहता है:-"दूध लाओ।" बड़ी कठिनता से दूध आया। कुछ कच्चा कुछ पका। सामने रख दिया कि पीजिये। बच्चे को ख़बर न थी कि नाना झूठमूठ ठाकुरजी को भोग लगाते थे। मगर बच्चे में सचाई थी। प्रायः लोगों का ज्ञान केवल जिह्वा पर होता है, हृदय में नहीं। मगर बच्चे में यह चतुरता न थी। उसके रोम रोम में प्रेम भर गया था। वह दूध रखकर कहता है:—"महाराज! पियो।" ठाकुर नहीं पीता। अरे क्या तेरा हृदय पत्थर का हो गया? बच्चा तो बच्चा। मा अपनी सारी, अपना दुपट्टा बेच डाले, मगर बच्चे का हुक्म बजा लाना होगा। ऐ ठाकुर! तेरे मनमें इतनी भी दया नहीं। तू तो संसार का माता-पिता है।

सीमीं बरी तो जानाँ लेकिन दिले तो संग अस्त।
दर सीम संग पिनहां दीदम न दीदः बूदम॥

अर्थात् ऐ प्यारे! तू तो चाँदी जैसा है, लेकिन हृदय तेरा पत्थर का

है। हाय! चाँदी के भीतर पत्थर छिपा है, ऐसा तो मैंने कभी न देखा था।

ऐ परमेश्वर! यह प्यारा भोला बच्चा कह रहा है कि दूध पी लो, और तू नहीं पीता। बच्चे ने सोचा कि शायद आँख मीचने से ठाकुर दूध पिये, उसने आँखें मीच लीं। मगर अँगुलियों के बीच से कभी कभी देखने लगता है कि अभी पीने लगे या नहीं। पर उसने नहीं पिया। बच्चे ने सोचा, शायद जीभ हिलाने से पियें। ,बरबराने लगा। मगर उसने फिर नहीं पिया। लड़के को रात की थकावट थी और भूखा भी था, एक साथ तीन घंटे बीत गये, मगर ठाकुरजी नहीं पसीजे। हाय भगवान्! राम को भी ऐसे ठाकुर पर क्रोध आता है। लड़का रोने और बिलबिलाने लगा। रोते रोते गला बैठ गया, आवाज़ नहीं निकलती। सारा ख़ून आँसू बन कर निकल आया। मगर ठाकुरजी ने दूध नहीं पिया। आख़िर लड़के को ग़ुस्सा आ ही गया। यह आत्मा कमज़ोर को नहीं मिलती। दुर्बल की दाल नहीं गलती। यह लड़का देखने में तनिक सा था, मगर इसमें बल बड़ा था। बल क्या था, दृढ़ता और विश्वास। यह विश्वास की आँधी ग़ज़ब की आँधी है। हट जाओ वृक्षो मेरे आगे से, हट जाओ नदियो मेरे मार्ग से, उड़ जाओ पहाड़ो मेरे समक्ष से। यह विश्वास, यह यक़ीन, यह निश्चय, यही सच्चा बल है। कहते हैं, फ़रहाद में यही बल था। मारता है कुल्हाड़ा, पहाड़ गिर रहे हैं। विश्वास वाले जब चलते हैं, तो दुनिया को एक दम में हिला सकते हैं। इस लड़के में भी यही बल था। किसी ने कभी इसको बर्ता नहीं। पर यों ही कह उठते हैं कि वह गप है। इस लड़के का बल उसको खींचे लाता है।

असर है जज़्बे–उल्फ़त में तो खिंच कर आ ही जायँगे।
हमें परवाह नहीं हमसे अगर वह तन के बैठे हैं॥

लड़के ने एक तलवार पकड़ ली और उसको गले पर रख कर कहता है, "अगर तुम दूध नहीं पीते, तो हम भी नहीं जिएँगे, जिएँगे तो तेरी ख़ातिर, नहीं तो नहीं जिएँगे।"

मरना भला है उसका जो अपने लिये जिये।
जीता है वह जो मर गया हो तेरे ही लिये॥

अगर अमेरिका में मनोविज्ञान–शास्त्र (Psychology) के सम्बन्ध में ऐसे अनुभव किये गये हैं कि मेज़ घोड़ा हो जाय तो (ज़रा अपने यहाँ की भी कहानी मान लो) यह भी सम्भव है। जिस समय लड़का गले पर छुरी रख रहा था, तो एक दम से, नहीं मालूम आकाश से या बालक के हृदय से. वह मूर्तिमान ईश्वर सशरीर हो कर आ बैठा। लड़के को गोद में ले लिया और हाथ से दूध का प्याला उठा कर दूध पीने लगा। यह दृश्य देख कर बच्चा रोते रोते हँसने लगा। जब देखा कि वह सारा दूध पिये जाता है, तो एक थप्पड़ मार कर कहने लगाः— "कुछ मेरे लिये भी छोड़ो।" यह वह लड़का है जिसकी आँख का पर्दा बहुत ही मोटा था। उसको ईश्वर का ज्ञान न था। मगर पर्दा मोटा हो या पतला ; प्रेम, चित्त-शुद्धि, सच्चापन, विश्वास वा निश्चय वह चीज़ है कि एक बार तो उसको सरका ही देता है। जब एक छोटे से लड़के ने यह कर दिखाया तो धिक्कार है पुरुष को।

कीड़ा ज़रा सा कि जो पत्थर में घर करे।
इंसान् वह क्या जो न दिले-दिलवर में घर करे॥
सिजदए-मस्ताना आम बाशद नमाज़।
दर्दे-दिल बाओ बुवद कुरआने मन॥

अर्थात् मस्ताना सिज़दह (झुकना) मेरी नमाज़ है और उसके साथ दिल का दर्द मेरा क़ुरान है।

सच्ची नमाज़ यह है कि मारे मस्ती के लड़खड़ा रहा हो, कभी इधर गिरता हो, कभी उधर। एक माला में एक दम में हज़ार मालाओं का असर होता है, मगर दिल से माला जपी जाय तब तो। तिब्बत में एक चक्र है जिसमें सैकड़ों मालायें एकदम से घूम जाती हैं। अगर एक बार ईश्वर का नाम लेते समय प्रत्येक बाल की ज़बान एक साथ ही बोल उठे, तो ऐसे एक बार जो ज़बान से निकलता है वह उसको हज़ार दिलों से ज़रब दे आता है। तात्पर्य यह है कि जो निकले, हृदय से निकले, अन्तः करण से निकले।

स्यालकोट में राम के एक मित्र थे, जिन्होंने जीवन भर में नमाज़ नहीं पढ़ी। यहाँ जो मुसलमान लोग हैं वे मेरी बात को बुरा न मानें। बच्चे में पूर्ण प्रेम होता है जिससे वह माँ को चपत मारता है, उसकी चोटी खींचता है। स्यालकोट में चोर बहुत थे, उनको पकड़ने वा बन्द करने के लिये वारबर्टन साहब को भेजा गया। पुलीस का वह एक नामी अफ़सर था। उसने वहाँ जाकर ऐसा प्रबन्ध किया कि नीच जातियों की तीनबार हाज़िरी ली जाती थी जिससे चोरी थोड़ी बहुत बन्द हो गई थी। एक दिन शुक्रवार को सब लोग नमाज़ पढ़ने जा रहे थे। लोगों ने एक मस्त शेख़ से पूछा, तुम क्यों नहीं जाते? उन्होंने कहा, लोगों ने चोरी की है, इसलिये हाज़िरी देने जाते हैं; मैंने चोरी नहीं की। शरीर चोगी का माल है, जो लोग इस शरीर को चुरा बैठे हैं अर्थात् ख़ुदी में डूबे रहते हैं, वह यह ख़याल करते हैं कि मैं ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ, वैश्य हूँ, मैं मुसलमान हूँ। हाँ, एक बार शेख़ जी ने नमाज़ पढ़ी; मगर इस निश्चय से :—

सिजदे में सर झुकाऊँ तो उठना हराम है।
सिजदे में गिर पड़ूं तो फिर उठना मुहाल है॥
सर को उठाऊँ क्योंकर हर रग में यार है॥

नमाज़ पढ़ रहे थे। सिजदे को सर झुकाया; मगर नहीं उठा। प्राण छूट गये। यह नमाज़ पढ़ना है। मुसलमान के अर्थ हैं इसलाम वाला—निश्चय वाला। नाम देव के हृदय में उस समय निश्चय था, इसलाम था, और सचाई थी। जिसने ईश्वर को एक बार सशरीर कर दिखाया। गड़रिये के हृदय में भी सच्चा इसलाम था। वही निश्चय था, वही विश्वास था। इसीलिये परमेश्वर ने मूसा को झिड़का—

तू बराए-वस्ल करदन आमदी।
नै बराए फ़स्ल करदन आमदी॥

मी रसी दर काबा ज़ाहिद न रवद अज़ राहे-तरी।
.जुहदे-खुश्के-सौमे तो बे दीदए—गिरियाँ अबस॥

अर्थात (ऐ मूसा!) तू तो (मुझसे) अभेद कराने के लिये (दुनिया में) आया था, न कि भेद कराने के लिये।

ऐ ज़ाहिद (तपस्वी)! तू काबे तो पहुँचता है (मगर) तरी की राह से नहीं जाता है। सूखे रोज़े (व्रत) और परहेज़गारी (तप) आँसू-भरी आँखों के बिना व्यर्थ हैं।

सूखी नमाज़, सूखी माला, सूखा जप, सूखा पाठ जिनमें न आँसू टपके न हृदय हिले, ऐसी .खुश्की के रास्ते तू मक्का को जाता है, लोग तरी के रास्ते से जल्दी पहुँचते हैं। (अगर इस अवसर पर विषय इधर का उधर हो जाय, तो कुछ आश्चर्य नहीं।)

चुनी ताक़त कुजा दारम कि पैमां रा निगेहदारम्।
बिया ऐ साक़ी ओ बिशकन ब यक पैमाना पैमां रा॥

अर्थात् मैं कब ऐसी शक्ति रखता हूँ कि वादे को सामने रक्खूँ (अर्थात् अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहूँ), ऐ साकी (मस्ती की शराब पिलानेवाले) ! आ, और एक पैमाने (प्याले) से पैमाँ (प्रतिज्ञा, वादे) को तोड़ दे।

इन दो दृष्टांतों से मोटा पर्दा उठ गया। अब एक और दृष्टांत लीजिये, जिसमें पर्दा पतला था और उठ गया। पंजाब में बाबा नानक हुए हैं, वह भी सब की तरह दूसरे दर्जे (तवैयाहं) के थे। एक ज़माने में मोदीख़ाने में नौकर थे। उस समय कुछ ठग साधु बनकर उनके पास आये। उन्होंने अन्न भर भर कर उनको देना आरंभ किया। ऊपर से उनको गिनते जाते थे, लेकिन हृदय में कुछ और ही विचार था।

इश्क के मकतब में मेरी आज बिस्मल्लाह है।
मुँह से कहता हूँ अलिफ़ दिलसे निकलती आह है॥

मस्ती ही इस पार्थिव पूजा में काम कर रही है। वह ऊपर से तो दो, तीन चार, पाँच, सात कहते जाते थे, मगर हृदय में इन गिंतियों का कुछ ध्यान नहीं। जब वह तेरह तक पहुँचे, सब भूल गये, और उन पर एक आत्म-विस्मृति की अवस्था आ गई। अब उन्होंने तेरह से यह कहना शुरू किया—तेरे हो गये, हो गये। बारह और तेरह। तेरा और तेरा। भर भर कर टोकरे फैंकते जाते थे और तेरा तेरा कहते जाते थे। यहां जो कुछ है, तेरा ही है और सब तेरे ही हैं। यह कहकर देहाभिमान से रहित होकर भूमि पर गिर पड़े। ज़बान बंद हो गई, मगर हर रोएँ से यह आवाज़ निकल रही थी कि "मैं तेरा हूँ।" इस दृश्य का प्रभाव यह हुआ कि वे बने हुए साधु ठगे गये। यद्यपि वे स्वयं चोर थे, लेकिन परमेश्वर ने उनको चुरा लिया। वह सब चोरों का चोर है। ठगों पर यह दशा ऐसी छागई कि वे भी तेरा

तेरा कहने लगे। यह वह दृष्टांत है जिसमें साक्षात्कार की दृष्टि से पर्दा उठ गया है, लेकिन क्षण भर के लिये।

अब एकाध दृष्टांत "मैं तू हूं" का और दिया जायगा। आत्मानुभव की दृष्टिसे बहुत लोग हैं जिन्होंने इस मन्ज़िल को तय किया है। दो प्रकार का पढ़ना होता है। राम जब कालेज में था तो इसका हाथ बहुत तेज़ चलता था। राम की परीक्षा हुई। पर्चा बहुत लम्बा था। उसमें सोलह प्रश्न थे, जिनमें आठ प्रश्नों के हल करने को शर्त थी। मगर राम ने सब सवाल हल कर डाले और कापी पर लिख दिया कि इनमें कोई आठ देख लिये जांय। पर और विद्यार्थी इतना तेज़ नहीं लिख सकते थे। इन सोलह प्रश्नों के उत्तर उनके मस्तिष्क में तो थे, मगर नखों में नहीं उतरे थे। इसी तरह से बहुत लोगों ने इसको भी क्रियात्मक रूप से नहीं जाना है। इसी प्रकार राम दूसरा दृष्टांत यह देगा कि वह नखों में उतर आ सकता है। अरब में मोहम्मद साहब से पहले लोग जंगली थे। अब हम विस्मित होते हैं कि मोहम्मद साहब ने कैसी योग्यता से इन जंगली लोगों को एकत्र कर लिया। इनके मिलाने का एक कारण यह था कि इनको इकट्ठा करके ईश्वर के निकट लाना था। राम ने जापान में दो जनरिक्षा (गाड़ी) वालों में असबाब पर लड़ाई होते देखी। दोनों में से हर एक हमको अपनी 'रिक्षा' में बिठाना चाहता था। जब उनकी आँखें परस्पर लड़ीं तो दोनों हँस पड़े। उस समय राम को विश्वास हुआ कि आत्मा आँख में रहता है।

जब आँखें चार होती हैं मुरव्वत आ ही जाती है।

इसी तरह जब ज़बानें एक होती हैं तो प्रेम हो जाता है। जब ईश्वर के निकट एक ज़बान होकर प्रार्थना करते हैं तो मिलाप हो ही जाता है।

पहला शब्द 'ओम्' है, जो बच्चा भी बोलता है। बीमारी में ओं ओं कहकर ही धीरज होता है। जब बच्चे प्रसन्न होते हैं तो उनके मुँह से भी ओ ओ निकलता है। यह प्रकृति का नाम है। इस पर किसी का ठेका नहीं है। क़ुरान में अलिफ़ लाम जब आता है, तो वह 'ओम्' ही है। जैसे जलाल-उलदीन, कमाल-उलदीन में लकार नहीं पढ़ी जाती। ज़रा देर के लिये सब 'ओम्' बोल दो (निदान, थोड़ी देर के लिये सबने उच्च स्वर से 'ओम्' का उच्चारण किया जिससे खुला मैदान गूंज उठा।)

ऋषीकेश के पास का ज़िक्र है कि गंगा के इस पार बहुत साधू रहते थे और उस पार एक मस्त रहता था। उसके रगो-रेशे में (अनलहक़) शिवोऽहं बसा हुआ था। रात दिन यह आवाज़ आया करती था—"शिवोऽहं, शिवोऽहं, शिवोऽहं शिवोऽहं।" एक दिन वहां एक शेर आ गया। और साधू इस पार से देख रहे थे कि शेर आया और उसने महात्मा की ओर रुख किया। वह महात्मा शेर को देख कर उच्च स्वर से कह रहा था "शिवोऽहं, शिवोऽहं"। उसकी धारणा में यह जमा हुआ था कि यह शेर मैं ही हूं, सिंह मैं ही हूं। स्वयं केसरी के शरीर में स्वर भर रहा हूँ "शिवोऽहं शिवोऽहं"। वन-राज ने आकर इनके कंधे को पकड़ लिया तो वह (महात्मा) आनन्द के साथ सिंह के रूप में नर-मांस का स्वाद ले रहे थे और आवाज़ निकाल रही थी "शिवोऽहं शिवोऽहं"। दीवाली में खाँड़ के खिलौने बनते हैं। खाँड़ के हिरन, और खाँड़ के शेर। अगर खाँड़ का हिरन अपने आप को नाम रूप रहित विशेषण के साथ समझे कि मैं हिरन हूँ तो क्या यह कहेगा कि खाँड़ का शेर मुझको खा रहा है। यदि वह अपने आपको खाँड़ मान ले

तो खाँड़ का मृग कह सकता है कि खाँड़ के रूप में मैं ही इधर हरिन और उधर शेर हूँ। इसी तरह जब तुम जानो कि तुम्हारी असलियत क्या है। वह इस खाँड़ के अनुरूप ईश्वर का स्वरूप है। अतः इस खाँड़ के शेर की दशा में तुम ईश्वर की हैसियत से यह कह सकते हो कि मैं इधर हरिन और उधर शेर हूँ।

पगड़ी पाजामा दुपट्टा अँगरखा, गौरसे देखा तो सब कुछ सूत था।
दामनी तोड़ी तो माला को गढ़ा, पर निगाहे-हक़में वह भी थी तिला॥

प्यारे! यह महात्मा वह दृष्टि रखते थे। जिस समय सिंह खा रहा था उस समय वह क्या-क्या स्वाद ले रहे थे। आज नर-रक्त हमारे मुँह लगा। टांग खाई तो भी "शिवोऽहं, शिवोऽहं" मुँह से निकला। शेर भी चिल्ला रहा है "शिवोऽहं, शिवोऽहं"। पर्दा पहले ही पतला था, मगर सरकाया गया।

सिकंदर जब भारतवर्ष में आया और उसने देखा कि जितने देश मैं ने जीते, सब से अधिक सचाईवाले बुद्धिमान् और रूपवान् भारतवर्ष में ही देखे। उसने कहा इस भारतवर्ष के सिर अर्थात् तत्त्व-वेत्ताओं और ज्ञानियों को देखना चाहता हूँ। सिकन्दर को सिंध के किनारे ले गये। वहां एक अवधूत बैठे थे। सिकंदर सारे संसार का सम्राट; वहां लँगोटी भी नहीं। सामना किस ग़ज़ब का है। सिकंदर में भी एक प्रताप था। मगर मस्त की निगाह तो यह थी:—

शाहों को रोब और हसीनों को हुस्नो-नाज़।
देता हूँ, जब कि देखूँ उठाकर नज़र को मैं॥

सिकंदर पर उस मस्त का रोब छा गया। उसने कहा:— "महाराज! कृपा कीजिये। यहां के लोग हीरे को गुदड़ी में लपेट कर रखते हैं। पश्चिम में ज़रा ज़रा सी चीज़ों की बड़ी क़दर की जाती है। मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें राज-पाट दूँगा,

धन दूँगा, संपत्ति दूँगा, हीरे-जवाहिरात दूँगा, जो कुछ चाहो सब दूँगा, लेकिन मेरे साथ चलो।" महात्मा हँसे और कहा "मैं हर जगह हूँ, मेरी दृष्टि में कोई जगह नहीं है। सिकंदर नहीं समझा। उसने कहाः—"अवश्य चलिये।" और वही लालच फिर दिलाया। मस्त ने कहाः—"मुझे किसी चीज़ की परवा नहीं, मैं अपना फेंका हुआ थूक चाटनेवाला नहीं।" सिकन्दर को क्रोध आ गया और उसने तलवार खींच ली। इस पर साधु खिलखिलाकर हँसा और बोलाः– 'ऐसा झूठ तो तू कभी नहीं बोला था।"

मुझको काटे कहाँ है वह तलवार।

बच्चे रेत में बैठकर रेत अपने पैरों पर डालते हैं। आप ही घर बनाते हैं और आप ही ढाते हैं। रेत का क्या बिगड़ा? जो पहले थी वह अब भी है। प्यारे! इसी तरह उस साधु की दशा थी। यह शरीर उसको बालू के घर की तरह है जो लोगों की कल्पना में उनकी समझ का घर बना था। मैं तो बालू हूं। घर कभी था ही नहीं। अगर तुम या जो कोई इस घर को बिगाड़ता है, वह अपना घर ख़राब करता है।

तारे क्या रोशनी से न्यारे हैं।
तुम हमारे हो, हम तुम्हारे हैं॥

उत्तर सुन कर सिकन्दर के हाथ से तलवार छूट पड़ी।

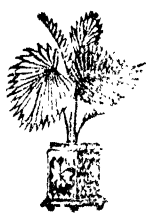
एक भंगिन थी जो किसी राजा के घर में झाड़ू दिया करती थी। कभी कभी उसको सोना या मोती इनाम में मिल जाता था। कभी गिरे पड़े उठा लाती थी। उसका एक लड़का था, जो बचपन से परदेश गया हुआ था। जब वह पन्द्रह वर्ष का हुआ तो घर आया। देखा कि उसकी माँ ने झोंपड़ी में लालों का ढेर लगा रक्खा है। उसने पूछाः—"ये चीज़ें कहाँ से

आई ?" मेहतरानी ने कहा:—'बेटा, मैं एक राजा के यहाँ नौकर हूँ, ये उनके गिरे-पड़े मोती हैं, जिनका यह ढेर है।" लड़का अपने मन में कहने लगा, जिसके गिरे-पड़े मोती ऐसे उत्तम हैं, वह आप कैसी रूपवती होगी। यह ख़याल आया था कि उसके मन में प्रेम छा गया और अपनी माँ से कहने लगा कि मुझे उसके दर्शन कराओ। ये तारे-सितारे, यह चन्द्र-सूर्य, ये झलकती हुई नदियाँ, यह सांसारिक रूप-सौंदर्य उस सच्चाई के गिरे पड़े मोती हैं। अरे जिसके गिरे-पड़े मोतियों का यह हाल है तो उसका अपना क्या हाल होगा।

लगा कर पेड़ फूलों के किये तक़सीम गुलशन में।
जमाया चाँद-सूरज को सजाये क्या सितारे हैं॥

जिस समय कन्याओं का विवाह होता है, उसके डोले पर से रुपए-पैसे अशर्फ़ियाँ न्यौछावर करते हैं, और ऐ महात्माओ! तुम उन चीज़ों को चुनो। राम की आँख तो उस दुलहिन के साथ लड़ी। जिसका जी चाहे इन मोतियों को भरे। राम के पास तो जामा भी नहीं है, फिर दामन कहाँ से लावे !!!

ॐ! ॐ!! ॐ!!!



ब्रह्मचर्य ।

(ता० १ सितम्बर, १६०५ को फ़ैज़ाबाद में दिया हुआ व्याख्यान ।)

जो नर राम नाम ले नाहीं,
सो नर खर कूकर शूकर सम वृथा जिये जग माँहीं ।
ओऽम् ! ओऽम् !! ओऽम् !!!
तुझे देखें तो फिर औरों को किन आँखों से हम देखें ।
यह आँखें फूट जायें गर्चि इन आँखों से हम देखें ॥
जिन अंगन होते चाह चली खर कूकन की, धिक्कार उसे ।
जिन खाय के अमृत वाञ्छा रही लिद पशुअन की, धिक्कार उसे ।
जिन पाय के राज को इच्छा रही चक्की चाटन की, धिक्कार उसे ।
जिन पाय के ज्ञान को इच्छा रही जग विषयन की, धिक्कार उसे ।
ओ हो हो हो !!!

जीता तो वही है जो सत् में, नारायण में वा राम में रहता-सहता, चलता-फिरता और श्वास लेता है। ज़िन्दगी तो यही है। आप कहेंगे कि तुम बस आनंद ही आनंद बोलते हो, संसार के काम काज कैसे होंगे, और दुःख दर्द कैसे मिटेंगे, परन्तुः—

हर जा कि सुलतां ख़ेमा ज़द ग़ौग़ा न मानद आम रा ।
अर्थः—जिस स्थान पर राजाधिराज ने डेरा लगाया, वहाँ साधारण लोगों का शोर न रहा ।

जहाँ पर सत्, प्रेम वा नारायण, का निवास है, जिस हृदय

(१) एक प्रकार का बाजा । (२) गधे की आवाज़ ।

में हरिनाम वा ब्रह्म बस जाय, तो वहाँ शोक, मोह, दुःख, दर्द आदि का क्या काम? क्या राजाधिराज के खेमे के सामने लौंडी बुच्ची कोई फटक सकती है? सूर्य जिस समय उदय हो जाता है, तो कोई भी सोया नहीं रहता, पशुओं की भी आँखें खुल जाती हैं, नदियां जो बर्फ़ों की चादरें ओढ़े पड़ी थीं, उन चादरों को फेंक कर चल पड़ती हैं, उसी प्रकार सूर्यों का सूर्य आत्मदेव जब आपके हृदय में निवास करता है, तो वहां कैसे शोक, मोह, और दुःख ठहर सकते हैं? कभी नहीं, कदापि नहीं। दीपक जल पड़ने से पतंगें आप ही आप उसके आसपास आना शुरू हो जाते हैं। चश्मा जहां बह निकलता है, प्यास बुझाने वाले वहां स्वयं जाने लग पड़ते हैं। फूल जहां खुद खिल पड़ा, भँवरे आप ही आप उधर खिंच कर चल देते हैं। उसी प्रकार जिस देश में धर्म वा ईश्वर का नाम रोशन हो जाता है, तो संसार के सुख वैभव और ऋद्धि-सिद्धियां आप ही खींची हुई उस देश में चली आती हैं। यही कुदरत का क़ानून है, यही प्रकृति का नियम है। ओऽम्! ओऽम्!! ओऽम्!!!

बेशक, राम को आनन्द के अतिरिक्त और बात ही नहीं आती। बादशाह का ख़ेमा लग जाने पर चोर चकार नहीं आने पाते। उसी तरह आनन्द का डेरा जम जाने से शोक और दुःख ठहर ही नहीं सकते। इसलिये आनन्द के सिवाय राम से और क्या निकले? ओ३म्, आनन्द! आनन्द!! आनन्द!!!

परन्तु आनन्द का डेरा डालने से पहले ज़मीन का साफ़ कर लेना भी आवश्यक है। इसलिये आज राम, जिसके यहां आनन्द की बादशाहत के सिवाय कुछ और है ही नहीं, झाड़ू लेकर झाड़ने बुहारने का काम कर रहा है। जिस तरह दूध या किसी और अच्छी वस्तु को रखने के लिये बरतन को साफ़ कर

लेना ज़रूरी है, इसी तरह आनन्द को हृदय में रखने के लिये हृदय का शुद्ध कर लेना भी आवश्यक है। सो आज राम इस सफ़ाई का अर्थात् चित्त-शुद्धि का यत्न बतलायगा। लोग कहते हैं कि घी खाने से शक्ति आ जाती है, किन्तु जबतक ज्वर दूर न हो जाय, घी अपथ्य ही अपथ्य है। कड़वी कुनैन या चिरायता या गिलोय खाये बिना ज्वर दूर न होगा, अर्थात् जब तक कि मन पवित्र और शुद्ध न होगा, ज्ञान का रंग कदापि न चढ़ेगा।

ओरा ब चश्मे-पाक तवां दीद चूँ हलाल,
हर दीदा जल्वगाहे-आँ माह पारा नेस्त।

अर्थः—विशुद्ध नेत्र से तू उस प्रियतम को द्वितीया के चन्द्रोदय के समान देख सकता है, परन्तु सबके नेत्र उसका दर्शन नहीं करा सकते।

जब राम पहाड़ों पर था, तो उसने एक दिन एक मनुष्य को देखा कि गुलाब का एक सुन्दर पुष्प वह नाक तक ले गया और चिल्ला उठा। उसमें क्या था? इस सुन्दर फूल में एक मधु-मक्षिका बैठी थी, जिसने उस पुरुष की नाक की नोक में एक डंक मारा; इसी कारण से वह चिल्ला उठा, और मारे दुःख के व्याकुल हो गया, और पुष्प हाथ से गिर पड़ा। इसी तरह समस्त कामनायें और विषय-वासनायें देखने में उस गुलाब के फूल की तरह सुन्दर और चित्ताकर्षक प्रतीत होती हैं, किन्तु उनके भीतर वास्तव में एक विषयी भिड़ बैठी है, जो डंक मारे बिना न रहेगी। आप समझते हैं कि हम सुन्दर सुन्दर पुष्पों (संसार के पदार्थों) और विलासों को भोग रहे हैं, किन्तु वास्तव में वह विष, जो उनके अन्दर है, आपको भोगे बिना न रहेगा। संसार के लोग जिसको आनन्द या स्वाद कहते हैं, वह अपना ज़हरीला असर उत्पन्न किये बिना भला कब रह सकता है?

हाय, आज भीष्म पितामह के देश में ब्रह्मचर्य पर दो बातें कहनी पड़ती हैं, उस भीष्म को ब्रह्मचर्य तोड़ने के लिये ऋषि-मुनि और सौतेली माँ, जिसके लिये उसने ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ली अर्थात् प्रण किया था, उपदेश करती है कि "तुम ब्रह्मचर्य तोड़ दो ; राज-मंत्री, नगर-जन, ऋषि-मुनि सब आग्रह करते हैं कि तुम अपना व्रत छोड़ दो। तुम्हारे विवाह करने से तुम्हारे कुल का वंश बना रहेगा, राज बना रहेगा, इत्यादि इत्यादि।" किन्तु नवयुवा भीष्म यौवनावस्था में, जिस समय विरला ही कोई ऐसा युवक होता है कि जिसका चित्त बाह्य सौन्दर्य और चित्ताकर्षक रंग-राग के झूठे जाल में न फँसता हो, उस समय यौवनपूर्ण भीष्म अथवा शूरवीर भीष्म यूँ उत्तर देता है "तीनों लोक को त्याग देना, स्वर्ग का साम्राज्य छोड़ देना, और उनसे भी कुछ बढ़कर हो उसे न लेना मंज़ूर है, परन्तु सत् से विमुख होना स्वीकार न करूँगा। चाहे पृथ्वी अपने गुण (गन्ध) को, जल अपने स्वभाव (रस) को, प्रकाश अपने गुण (भिन्न-भिन्न रंगों का दिखलाना) को, वायु अपने गुण (स्पर्श) को, सूर्य अपने प्रकाश को, अग्नि अपनी गरमी व उष्णता को, चन्द्र अपनी शीतलता को, आकाश अपने धर्म (शब्द) को, इन्द्र अपने वैभव को, और यमराज न्याय को छोड़ दें, परन्तु मैं सत्य को कदापि नहीं छोड़ूंगा।

तीनों लोकों को करूँ त्याग और बंकुण्ठ का राज्य छोड़ दूँ,
पर मैं नहीं छोड़ता सत् का मेराज।
पंच तत्त्व, चंद्रमा, सूय, इन्द्र और यमदेव,
दें छोड़ ख़ासियत अपनी मगर सत् है मेरा सरताज।

---

(१) सीढ़ी, मार्ग। (२) मुकुट।

हनुमान का नाम लेने और ध्यान करने से लोगों में शौर्य और वीरता आ जाती है। हनुमान को महावीर किसने बनाया? इसी ब्रह्मचर्य ने। मेघनाद को मारने की किसी में शक्ति न थी। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र ने भी यह मर्यादा दिखलाई कि मैं स्वयं राम हूं, किन्तु मैं भी मेघनाद को नहीं मार सकता। उसको वही मार सकेगा कि जिसके अन्तःकरण में बारह वर्ष तक किसी प्रकार का मलिन विचार न आया हो। और वह लक्ष्मणजी थे। जिन जिन लोगों ने पवित्रता अर्थात् चित्त की शुद्धि को छोड़ा, उनकी स्थिति ख़राब होने लगी। विजय उस मनुष्य की कभी नहीं हो सकती, जिसका हृदय शुद्ध नहीं। पृथ्वीराज जब रण-क्षेत्र को चला, जिसमें यह सैकड़ों वर्ष के लिये हिन्दुओं की ग़ुलामी शुरू हो गई, लिखा है कि चलते समय वह अपनी कमर महारानी से कसवा कर आया था। नैपोलियन जैसा युद्धवीर जब अपनी उन्नति के शिखर से गिरा, अड़ड़ड़ धम। लिखा है कि जाने से पहले ही वह अपना खून (अपना घात) आप कर चुका था। खून क्या लाल ही होता है? नहीं, नहीं, सफेद भी होता है। अर्थात् उस रण-क्षेत्र से पहली शाम को वह एक चाह में अपने तईं पहले ही गिरा चुका था। कुमार अभिमन्यु जैसा चन्द्रमा के समान सुन्दर, सूर्य के समान तेजस्वी, अद्वितीय नवयुवक जब उस कुरुक्षेत्र की भूमि में अर्पण हुआ, और उस युद्ध में काम आया, कि जहाँ से भारत के क्षत्री शूरवीरों का बीज उड़ गया, तो युद्धसे पहले वह (अभिमन्यु) क्षत्रिय वंश का बीज डालकर आ रहा था। राम जब प्रोफ़ेसर था, उसने उत्तीर्ण और अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों की नामावली बनाई थी, और उनके भीतर की दशा तथा आचरण से यह परिणाम निकला था,

कि जो विद्यार्थी परीक्षा के दिनों या उसके कुछ दिनों पहले विषयों में फंस जाते थे, वे परीक्षा में प्रायः फ़ेल अर्थात् असफल होते थे, चाहे वे वर्ष भर श्रेणी में अच्छे क्यों न रहे हों। और वे विद्यार्थी जिनका चित्त परीक्षा के दिनों में एकाग्र और शुद्ध रहा करता था, वे ही उत्तीर्ण और सफल होते थे। बाइबिल में शूरवीरता में अति प्रसिद्ध साम्सन (Samson) का दृष्टान्त आया है। मगर जब उसने स्त्रियों के नेत्रों की विषमयी मदिरा को चखा, तो उसकी समस्त वीरता और शौर्य को उड़ते ज़रा देर न लगी। एक वीर नर ने कहा हैः—

"My strength is as the strength of ten
Because my heart is pure.

* * * *

I never felt the kiss of love,
Nor maiden's hand in mine."

TENNYSON.

दस ज्वानों की मुझमें है हिम्मत।
क्योंकि दिल में है इफ़्फ़त व असमत॥

अर्थः—दस युवकों की मुझमें शक्ति है, क्योंक मेरा हृदय पवित्र है। कामासक्त होकर न मैंने कभी किसी स्त्री को चुम्बन किया, और न किसी तरुणी का हस्त-स्पर्श किया।

जैसे तेल बत्ती के ऊपर चढ़ता हुआ प्रकाश में बदल जाता है, वैसे ही जिस शक्ति की अधोमुख गति है, यदि ऊपर की तरफ़ बहने लग पड़े, अर्थात् उर्ध्वरेतस् बन जाय, तो विषय वासना रूपी बल ओजस् और आनन्द में बदल जाता है। अर्थ-शास्त्र (Political Economy) में बहुधा आप सज्जनों ने पढ़ा होगा कि पदार्थ-विज्ञान-वेत्ताओं के सिद्धान्त से स्पष्ट फलितार्थ

होता है और जिसमें यह दिखलाया गया है कि किसी देश में जन-संख्या का बढ़ जाना और भलाई का स्थिर रहना एक ही समय में असम्भव है, वा एक दूसरे से विरुद्ध है। अगर बग़ीचा गोड़ा न जाय, और पेड़ों की काट-छाँट न की जाय, तो थोड़े ही दिनों में बाग़ वन हो जायगा, सब रास्ते बन्द हो जायँगे। इसी तरह जातीय सुस्थिति (अमन) और वैभव को स्थायी रखने के लिये नैतिक-पद्धति (ethical process) जिसको हक्सले (Huxley) ने उद्यानपद्धति (horticultural process) से वर्णित किया है, बर्ताव में लाना पड़ता है। अर्थात् लोकसंख्या को किसी विशिष्ट मर्यादा से अधिक न बढ़ने देना उचित होता है, चाहे यह विदेशगमन (emigration) से प्राप्त हो, चाहे संतान के कम पैदा करने से। जब सीधी तरह से कोई बात समझ में नहीं आती, तो डंडे के ज़ोर से सिखलाई जाती है। सभ्यता-हीन लोगों में पहले पशुओं की तरह मां बहन का विचार (विवेक) न था, किन्तु शनैः शनैः वे इस नियम को समझने लगे और मां बहन इत्यादि निकट के सम्बन्धियों में विवाह का रिवाज बन्द कर दिया। कुछ आचार-विचार को पाशव-वृत्ति और पाशव-व्यवहार का नाम देकर तुच्छ मान लिया जाता है, किन्तु न्याय की दृष्टि से देखा जाय तो मनुष्य की अपेक्षा पशु अधिक शुद्ध और पवित्र हैं, तथापि साथ ही साथ वे आचार-विचार पशुओं को बदनाम करने के योग्य भी हैं। कारण यह है कि यद्यपि मनुष्यों की अपेक्षा पशु ब्रह्मचर्य का अधिक पालन करते हैं, तथापि सन्तति धड़ाधड़ बढ़ाते चले जाते हैं, जिसका परिणाम लड़ाई भिड़ाई और जीवन के लिये युद्ध-कलह (struggle for existence) होता है। पशुओं की सन्तति केवल लड़ मरने और अशक्तों के नाश होने से तथा

बलवानों के बच्च निकलने के कारण स्थायी रहती है। खेद है उन मनुष्यों पर, जो न केवल पशुओं की तरह सन्तति उत्पन्न करते जाने में विचारहीन हैं, बल्कि पशुओं से बढ़कर वक्त बेवक्त अपना सफ़ेद खून (वीर्य) क्षणिक आनन्द के लिये बहा देन को कटिबद्ध हैं। जिस समय हम लोग अर्थात् आर्य लोग इस देश में आये, उस समय हमको ज़रूरत थी कि हमारी सन्तति और संख्या अधिक हो, इस लिये विवाह के समय इस प्रकार को प्रार्थना की जाती थी कि इस पुत्री के दस पुत्र हों। मगर इन दिनों दस पुत्रों की इच्छा करना ठीक नहीं है। तुम कहते हो कि मरने के बाद तुम्हें स्वर्ग में पुत्र पहुँचायेंगे। मगर अब तो जीते जी ये बच्चे, जिन्हें तुम पेट भर रोटी भी नहीं दे सकते, तुम्हारे दुःख, आपत्ति अर्थात् नरक के कारण हो रहे हैं। प्यारो! उधार के पीछे नक़द को क्यों छोड़ते हो? इस तरह का प्रश्न अर्जुन ने भगवान् कृष्ण से गीता में किया था, कि पिण्ड कौन देगा और पितृ किस प्रकार स्वर्ग में पहुँचेंगे। कृष्ण भगवान् ने जो जवाब दिया है उसको भगवद्गीता के दूसरे अध्याय में ४२ से लेकर ४६ श्लोक तक अपने अपने घरों में जाकर देखिये।

भगवन्! स्वर्ग कोई मुक्ति नहीं है, स्वर्ग के बाद तो फिर यहाँ आना पड़ता है। स्वग के विषय में क्या ही ख़ूब कहा है:-

"जन्नत परस्त ज़ाहिद कब हक़ परस्त है;
हूरों पै मर रहा है, शहवत परस्त है।"

अर्थात् जो बैकुण्ठ की कामना रखता है, वह ब्रह्म का उपासक कैसे कहा जा सकता है? वह तो अप्सराओं की इच्छा रखता है, और कामासक्त है।

प्यारो! अगर तुम लोकसंख्या के कम करने में यत्न न करोगे, तो प्रकृति अपने जंगली-पद्धति (wild-process) को

काम में लायगी, अर्थात् काँट-छाँट करना शुरू कर देगी, जैसा कि महर्षि वसिष्ठ जी का कथन है कि महामारी, दुर्भिक्ष, भूकम्प तथा युद्ध के द्वारा काँट-छाँट शुरू हो जायगी। अगर गृहकलह, दुर्भिक्ष व प्लेग आदि नामंज़ूर हैं, तो पवित्रता, ब्रह्मचर्य, हृदय की शुद्धि और निर्मल आचार-व्यवहार को बर्त्ताव में लाओ। देश में प्रेम और जातीय एकता कदापि स्थायी नहीं रह सकते, जब तक कि लोक-संख्या की वृद्धि और ज़मीन की पैदावार (धान्य की उत्पत्ति) परस्पर एक दूसरे के अनुरूप न रहें। संसार में कोई देश ऐसा नहीं है जो निर्धनता में हिन्दुस्तान से कम हो और लोक-संख्या में इससे अधिक। ऐसी दशा में झगड़े-बखेड़े और स्वार्थ-परायणता भला क्योंकर दूर हो सकते हैं, और मेल-मिलाप और एकता क्योंकर स्थायी रह सकते हैं? दो कुत्तों के बीच में एक रोटी का टुकड़ा डाल कर कहते हो कि मत लड़ो। भला यह कैसे सम्भव है? ऐसी दशा में प्रेम और एकता का उपदेश करना मानो लेक्चरबाज़ी की हँसी उड़ाना और उपदेश का मखौल करना है। एक गौशाला में दस गायें हों, और चारा केवल एक के लिये हो, तो गायें ऐसी ग़रीब, शान्त-स्वभाव और अवाक्-पशु भी आपस में लड़े मरे बिना नहीं रह सकतीं। भला भूखे मरते भारतवासी कैसे प्रेम और एकता स्थायी रख सकते हैं? विज्ञान-शास्त्र में यह वार्त्ता सिद्ध हो चुकी है कि, किसी पदार्थ की समतोल-अवस्था (equilibrium) के लिये ज़रूरी है कि एक अणु या अंश की अन्तर्गत गति के लिये इतनी जगह अवश्य हो कि दूसरे अणु की गति वा व्यापार में बाधा न पड़ने पाय। अब भला बताओ कि जिस देश में एक आदमी के पेट भर खाने से बाक़ी दस आदमी, आधे तृप्त या भूखे रह जायँ, उस देश में भिन्न भिन्न

व्यक्तियाँ एक दूसरे के सुख में बाधा डालने वाली क्यों न हों? और ऐसे देश की शान्ति और समतोल-अवस्था (equilibrium) कैसे स्थायी रह सकती है? क्या तुम भारतवर्ष को कलकत्ता की काल-कोठरी (Black Hole) बनाये बिना नहीं रहोगे? जो वस्तु निकम्मी हो जाती है, वह इस लेम्प के समान नीचे उतार दी जाती है, जो अभी उतार दिया गया है *। आखिर कब समझोगे? मनुष्य-बल को, अपने पुरुषत्व को इस प्रकार नाश मत करो कि जिससे तुम्हारी भी हानि हो और समस्त देश की भी। इसी शक्ति को ब्रह्मानन्द और आत्मबल में बदल दो। दुनियाँ का सबसे बड़ा गणितशास्त्री सर आइज़क न्यूटन (Sir Isaac Newton) ८० साल से अधिक आयु तक जिया, और वह ब्रह्मचारी का जीवन व्यतीत करता था। दुनियां का लगभग सबसे बड़ा तत्त्वविचारक कैंट (Kant) बहुत बड़ी आयु तक जिया और वह भी ब्रह्मचारी था। हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) और स्वीडनबर्ग (Swedenberg) जैसे संसार के विचारों को पलटा देने वाले ब्रह्मचारी ही हुए हैं। कुछ अँगरेज़ी वर्त्तमान पत्रों ने यह ख़याल उड़ा रक्खा है कि ब्रह्मचारी का जीवन आयु को घटाता है। विचार पूर्वक देखने से मालूम होता है, यह परिणाम पैरिस और एडिनबरा में कुछ वर्षों की जन-संख्या की वृद्धि के रिपोर्टों से निकाला गया था। अब जिसमें किञ्चित् भी विवेक-शक्ति है, यदि विचार करे तो देख सकता है कि पेरिस और एडिनबरा में उन्हीं लोगों का विवाह नहीं होता जो बीमार हों, कङ्गाल हों, उद्योग हीन

---

* एक लेम्प जो मेज़ पर रक्खा था और जिसकी चिमनी काली पड़ गई थी, उस समय मेज़ से नीचे उतार दिया गया था, जिसका यह उल्लेख है।

हों, या अन्य रीति से घर घर भटकते फिरते हों। इस लिये उन देशों में अविवाहित और एकाकी जीवन अकाल मृत्यु का कारण नहीं, बल्कि अकाल मृत्यु ही अविवाहित जीवन का कारण होता है। और ऐसे अविवाहित लोग जो आत्मिक और बौद्धिक व्यापार से शून्य हैं, ब्रह्मचारी नहीं कहला सकते। बस, ब्रह्म-चर्य पर जन-संख्या के कारण से विरोध करना नितान्त अनु-चित है।

अब हम दो एक अमेरिका देश के ब्रह्मचर्य-जीवन व्यतीत करने वालों का हाल सुना कर यह विषय समाप्त करेंगे। हमारे भारत की विद्या को विदेशियों ने प्राप्त करके उससे लाभ उठाया, और हम वैसे ही कोरे के कोरे रह जाते हैं, यह कैसे शोक की बात है? "हमारे पिता ने कूप खुदवाया है" इसके कहने से हमारी प्यास नहीं जायगी। प्यास तो पानी के पीने से ही जायगी। इसी तरह शास्त्रों पर आचरण करने से आनन्द होगा। अमेरिका के सब से बड़े लेखक एमर्सन (Emerson) का गुरू, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला थोरो (Thoreau) भगवद्गीता के विषय में इस प्रकार लिखता है कि "प्रति दिन मैं गीता के पवित्र जल से स्नान करता हूँ। यद्यपि इस पुस्तक के लिखने वाले देवताओं को अनेक वर्ष व्यतीत हो गये, लेकिन इसके बराबर की कोई पुस्तक अभी तक नहीं निकली है। इसकी ख़ूबी व महत्व हमारे आज कल के ग्रन्थों से इस क़दर बढ़ चढ़ कर है कि कई बार मैं यह ख़याल करता हूँ कि शायद इसके लिखे जाने का समय नितान्त निराला समय होगा।" पाताल लोक में अर्थात् अमेरिका में उपनिषद्, भगवद्गीता और विष्णु-पुराण को सब से पहिले प्यारे थोरो ने प्रचार (introduce) किया। सर टामस रो (Sir Thomas Roe) आदि जो

यूरोप से हिन्दुस्तान में आये, वह उन पवित्र ग्रन्थों के लातीनी अनुवादों को यहाँ से यूरोप में ले गये, और फ्रांस से यह शख्स थोरो उन अनुवादों को अमेरिका में ले गया। इन पुस्तकों के अनुवादों को फ़रिङ्गियों ने फ़ारसी भाषा से लातीनी भाषा में किया था, क्योंकि उस समय यूरोप की शिक्षा लातीनी भाषा में थी, और प्रायः इसी भाषा में ग्रन्थ लिखे जाते थे। अगर सच पूछो तो वेदान्त का झण्डा पहिले पहल इसी पुरुष (थोरो) ने अमेरिका में गाड़ा। एक दिन जङ्गल में सैर करते हुये इससे एमसन ने पूछा कि इन्डियन अर्थात् अमेरिका के असली बाशिन्दों के तीर कहाँ मिलते हैं ? उसने साधारणतः अपना हर समय का वही उत्तर दिया "जहाँ चाहो"। इतने में ज़रा झुका और एक तीर मार्ग से उठा कर झट दे दिया और कहा "यह लो"। एमर्सन ने पूछा कि देश कौन सा अच्छा है, तो उत्तर दिया कि "अगर पैरों तले की पृथ्वी तुमको स्वर्ग और वैकुण्ठ से बढ़ कर नहीं मालूम देती, तो तुम इस पृथ्वी पर रहने के योग्य नहीं"। उसके द्वार हर समय खुले रहते थे, और रोशनी और वायु को कभी रोक टोक न था। एमर्सन कहता है कि उसके मकान की छत में एक भिड़ों का छत्ता लगा हुआ था, और भिड़ों और शहद की मक्खियों को मैं ने उसके साथ चारपाई पर बेखटके सोते देखा। मगर इस समदर्शी को कभी दुःख नहीं पहुँचाता थीं।

साँप उसकी टांगों से लिपट जाते थे, मगर उसे किञ्चित् परवा नहीं। काटते तो कैसे, क्योंकि उसके हृदय से दया और प्रेम की किरणें फूट रही थीं। और वह तो व्यालभूषण बना हुआ था। और इस तरह का शंकर के समान अनुभव रखता था। जिस पुरुष को संसार के नख़रे टख़रे और क्रोध कटाक्ष

नहीं हिला सकते, वही संसार को ज़रूर हिला देगा। अमेरिका का एक और महापुरुष वाल्ट व्हिटमन (Walt Whitman) नामी अभी वर्तमान में गुज़रा है जो "स्वतंत्रता के युद्ध" (War of Independence) के दिनों में स्वतंत्रता का गीत गाता फिरा करता था। उसके मुख से प्रसन्नता टपकती थी, और हाथों से श्रम करने का स्वभाव रखता था। उसका लड़ाई में यही काम था कि पीड़ितों की मरहम पट्टी करे, प्यासों को पानी और भूखों को रोटी दे, और लोगों के दिलों में हिम्मत और साहस को पैदा कर दे, तथा आनन्द से गीत गाता फिरे। उसकी आँखों से आनन्द बरसता था। उसकी आवाज़ से ख़ुशी टपकती थी, जिस तरह कुरुक्षेत्र की रणभूमि में कृष्ण भगवान्, और भूत-पिशाचों के बीच में शिव भगवान् विचरते थे, इसी तरह यह महापुरुष अमेरिका के उस रण क्षेत्र में बेधड़क घूमता फिरता था। उसने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम "लीव्ज़ आफ दी ग्रास" (Leaves of the grass) है, जिसके पढ़ते पढ़ते मनुष्य आनन्द से गद्गद हो जाता है।

ओ३म्! आनन्द! आनन्द!! आनन्द!!!

डटकर खड़ा हूँ ख़ौफ़ से ख़ाली जहान में।
तसकीने-दिल भरी है मेरे दिल में, जान में॥
सूँघे ज़मां मकां हैं मेरे पैर मिस्ले-सग।
मैं कैसे आ सकूँ हूँ क़ैदे-बयान में॥

* * * *

ख़ुश खड़ा दुनिया की छत पर हूँ तमाशा देखता।
गाह बगाह देता लगा हूँ वहिशियों की सी सदा॥
बादशाह दुनियां के हैं मोहरे मेरी शतरंज के।
दिल्लगी की चाल हैं, सब रंग सुलह-व-जंग के॥
रक़्से-शादी से मेरे जब काँप उठती है ज़मीं।
देखकर मैं खिलखिलाता क़हक़हाता हूँ वहीं॥

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

(श्री स्वामी राम तीर्थ की लेखनी से)

अकबर-दिली।

अर्थात्

महान्-आत्मा

मस्त हाफ़िज़ का बचन है:—

कुलाहे–ताजे–सुलतानी कि बीमे–जाँ दरो दर्जस्त।
कुलाहे–दिलकशस्त अम्मा, बदर्दे–सर नम अर्ज़द॥

अर्थात् बादशाह का ताज जिसमें कि हमेशा जान का भय है, दिल को लुभाने वाला होता है, मगर सिर के दर्द के बराबर भी वह नहीं उतरता, अर्थात् सिर की पीड़ा के तुल्य भी उसकी क़ीमत नहीं की जाती।

ख्वाज़ा हाफ़िज़ ने हमारे अकबर को नहीं देखा था, नहीं तो इस तरह का इशारा कभी न करते, जो अंगरेज़ कवि शेक्सपियर (Shakespeare) ने किया है:—

"Uneasy lies the head that wears a crown."

भारी वह ग़म से सर है कि जिस सर पै ताज है। क्या दोस्त, क्या दुश्मन, क्या आइने-अकबरी के शेख़ साहब (अबुल फ़ज़ल), क्या ख़ुफिया नवीस हज़रत मुल्ला (बदावनी), क्या हिन्दू क्या मुसलमान क्या पुर्तगाल के पादरी, क्या सिंध गुजरात के जैनी, क्या अमीर क्या ग़रीब, क्या आलिम (विद्वान्) क्या जाहिल (मूर्ख), क्या रिन्द (दुराचारी) क्या पारसी (जितेन्द्रिय) सबके दिलों में जिसकी हुकूमत थी, जहां चाहे और जिस गोद को चाहे सरहाना बना कर बेखटके नींद में पैर पसार सकता था, ऐसा कौन था? हिन्दुस्तान का शाहंशाह अकबर।

फ्रांस के राज्यक्रान्ति के समय के बादशाह के विषय में टामस पेन (Thomas Paine) ने यह करुणा बचन कहा है—"हाय! यह उसका दुर्भाग्य था कि बादशाह हुआ"। बेशक जिस राजा का राज प्रजा की भूमि और शरीरों तक ही परिमित हो, उससे बढ़कर ग़रीब, दया का पात्र तथा परदेशी और कौन हो सकता है?

क्या अकबर के दुश्मन न थे?—थे क्यों नहीं। लेकिन महाराना प्रताप जैसे महा साहसी वीर, व पक्के सच्चे धर्मात्मा क्षत्रिय का दुश्मन होना तो अकबर के गौरव को दूना करता था।

ख़ैर हमें तो इस समय अकबर के शासन के एक दूसरे ही पहलू से प्रयोजन है।

ईश्वर-स्मरण

कामवेल, बाबर, महमूद, रणजीतसिंह एवं और भी हज़ारों बादशाहों और वीरों का नियम था कि जो युद्ध शुरू करते, सच्चे दिल से ईश्वर के दरबार में अपना सर्वस्व अर्पण करके ईश्वर के नाम पर शुरू करते थे, और उनकी विजय भी उनकी सच्चाई और ईश्वर-स्मरण के अनुसार थीं। बहुत ख़ूब! लेकिन काम के आरंभ में विनती करना तथा सहायता माँगना तो कौन सी बड़ी बात है। हम सच्चा वीर उसी को मानते हैं, जिसकी हार्दिक निष्ठा और त्याग विजय के बाद जोश मारें।

जिसे ऐशमें यादे-खुदा ही रही, जिसे तैश में खौफे-खुदा न गया।

अर्थात् जिसको सुख में ईश्वर-स्मरण ही रहा और क्रोध के समय ईश्वर का भय नहीं गया।

सामवेद की केनोपनिषद् में एक कथा आई है कि इन्द्रियों के देवता एक बार बड़े मार्के की लड़ाई जीत चुके, और जैसा

कि अभी तक नियम चला आ रहा है, वे भोग-विलास और आमोद-प्रमोद में विजय का उत्सव मनाने लगे। उपनिषदों में बड़ी ही उत्तमता के साथ दिखाया गया है कि किस प्रकार इन देवताओं को शिक्षा मिली। ऐसी शिक्षा को याद रखने वाला भारत-वर्ष का एक सम्राट अकबर हुआ है। जब विजय पर विजय पाता गया और एक के बाद दूसरा सूबा उसके हाथ आता गया, यहाँ तक कि लगभग संपूर्ण भारतीय साम्राज्य उसके शासनाधीन होगया जब वह राज्य की सीमा और आबादी के विचार से चीन सम्राट को छोड़ जगत् में सब से बड़ा सम्राट हो गया, जब उसके सौभाग्य का नक्षत्र ठीक सर्वोपरि उच्च शिखर पर पहुँचा, जब वह चढ़ते चढ़ते, उस फिसलनी घाटी तक चढ़ चुका कि जहाँ इधर तो नीचे खड़े हुए लोग मुँह तकते हैरान खड़े पड़े कहते हैं—"यह जायगा बढ़कर कहाँ रफ़्ता रफ़्ता।"

और उधर नेपोलियन जैसा रण वीर पैर फिसलते ही धम से अधम लोक में गिरा, और गिरते ही चकनाचूर! ऐसी दशा में उस भूल जानेवाली घड़ी में देखिये।

"सब को जब भूल गया, इनको ख़ुदा याद आया"

सोचने लगे कि यह हाड़ और चाम का ज़रा सा शरीर, इस में यह शक्ति कहाँ से आई? किसके प्रसाद से? दौलत ग़ुलामे-मन शुदो-इक़बाल चाकरम" अर्थात् धन मेरा सेवक और वैभव मेरा अनुचर होता जा रहा है। इस दिमाग़ और दिल में तेज कहाँ से आता है?

"इस मन को चलाता कौन है?
इन प्राणों को हिलाता कौन है?"

क्या भेद है? आश्चर्य है!

प्रतिदिन इस प्रकार की विचार-धारा से उस प्रकाश-स्वरूप, चिदानन्दघन परमात्मा के धन्यवाद में बादशाह सलामत का यह हाल हो गया कि "दिल तेरा, जान तेरी, आशिक़े-शैदा तेरा" यह दिन रात का धंधा हो गयाः—

नमाज़ो-रोज़ा-ओ-तसबीहो-तोबा-इस्तग़फ़ार।

अर्थात् नमाज़, रोज़ा, तसबीह (माला) तोबा (पश्चात्ताप) और इस्तग़फ़ार (क्षमा प्रार्थना) उसकी दैनिकचर्य्या होगई।

धार्मिक-छानबीन।

अकबर के समय के राजाओं में इंग्लैंड के राजसिंहासन पर महारानी एलिज़बथ (Elizabeth) विराजमान थीं। यह महारानी इंग्लैंड के अन्य शासकों में वैसी ही यशस्विनी है जैसे, हिन्दुस्तान के अन्य बादशाहों में अकबर। इंग्लैंड में एलिज़बथ का शासनकाल या परशिया-जर्मनी में फ्रेडरिक महान् (Fredrick the Great) के राज्य-समय को विद्या और कला की उन्नति तथा देश-प्रबन्ध की उत्तमता की अपेक्षा से तो हिन्दुस्तान में अकबर के राज्यकाल से तुलना कर सकते हैं। वे दोनों छत्रधारी अपने अपने देश में सर्वप्रियता की दृष्टि से अकबर की बराबरी कर सकते हैं, लेकिन धार्मिक छान-बीन ईश्वरोपासना और सब संप्रदायों के लिये एक समान रिआयत (पक्षपात रहित बर्ताव) की दृष्टि से अकबर की कीर्त्ति अनुपम वा अद्वितीय है*। महाराज विक्रम और भोज के समय में

---

* नोटः—भारतवर्ष के कई एक (आधुनिक) उपन्यासकारों ने अपने कथानकों को चटकीले भड़कीले बनाने के लिये भोगविलास (इन्द्रिय-सुख की लोलुपता) आदि बहुत से काले रङ्गों में अकबर की हंसी उड़ाई है, और बहुत से ऐसे लोग मौजूद हैं, जिनके सादे दिलों पर यह

भी इसी कोटि का सुख-सौभाग्य प्रजा को प्राप्त था, किन्तु वे दूर दूर की बातें है। महाराजा अशोक के समय में प्रजा को हर प्रकार का सुख प्राप्त था, विचार और धर्म की पूरी पूरी स्वतंत्रता प्राप्त थी, चीन आदि अन्य देशों के लोक भी हिन्दुस्तान में आते और लाभ उठा कर जाते थे, और शिकागो (Chicago) सन् १८९३ ई० की तरह हिन्दुस्तान में सारे संसार के धर्मों का उत्सव भी धूमधाम से हुआ था, किन्तु अकबर का तो न केवल दरबार वरन् हृदय भी लगातार संसार भर के धर्मों का उत्सव-स्थान बन रहा था। किसी धर्म और संप्रदाय के लिये दरवाज़ा बन्द न था; विद्या, सच्चाई और सत् का, चाहे किसी ओर से वे आवें, सदैव स्वागत करता था। इस वीर पुरुष का हृदय-विश्वास सम्मेलन का मंदिर था, और मत्थे पर किसी विरोधी धर्म या मत के लिये ताला नहीं लगा था, अर्थात् प्रत्येक धर्म के लिए मस्तिष्क के कपाट बन्द न थे। उलमा, मुल्ला, शेख़, क़ाज़ी, विद्वान्, पंडित, शाक्त, वैष्णव, जैनी, ईसाई, पादरी, और कश्मीर, दक्खिन, पूरब, सिंध, गुजरात, फ़ारस, अरब, पुर्तगाल, और फ्रांस तक के

कथानकों की गप्प इतिहास का सम्मान पा चुकी है। लेकिन कथानक तो क्या, सारे संसार के ऐतिहासकों को चेलेंज (challenge) देकर राम पूछता है कि भला इन्द्रिय-विलास और अभ्युदय-उन्नति भी कभी एक साथ चल सकते हैं? चमगादड़ तो शायद दोपहर के समय में शिकार करने आ भी निकले, लेकिन सियाह-दिली (हृदयकी मलिनता) सफलता के तेज को सह नहीं सकती। अगर मन में यह विचार कहीं से जमा बैठे हो कि विश्वासघात और पाप के साथ सुख सौभाग्य का उदय हो सकता है, तो झटपट निकाल दो इस नीच विचार को, उड़ा दो इस झूठे भ्रम को। यह प्रकृति के आध्यात्मिक नियम के विरुद्ध है, तुम्हें यह बढ़ने न देगा।

लोग अपने अपने मत और विचार जी खोल कर बादशाह को सुनाते हैं, और बादशाह सलामत अत्यन्त उत्साह से सुनते हैं और उनके विचार की सराहना करते हैं। दिन को ही नहीं रात को भी, जब लोगों के आराम का समय है, महलसिरा (अन्तः-पुर) के चबूतरे पर राजराजेश्वर अकबर विद्याके लिये "पये इल्म चूँ शमा बायद गुदाख्त।" (मोमबत्ती की तरह चित्त ज्ञानार्थ पिघलाते रहना चाहिये।) इस वाक्य का जीवित उदाहरण बने हुए हैं, और मानव-प्रेम का प्रदीप प्रकाशित कर रहे हैं।

कुछ पाठकों को दिल्लगी की सी बात मालूम देगी कि शाही चबूतरे से रस्से लटकाए जाते हैं और महलों की दीवार के साथ साथ एक पलंग खिंचा हुआ ऊपर चढ़ता आता है, यहाँ तक कि चबूतरे के पास आ पहुँचा। रात के समय लटके हुए पलंग पर विराजमान् पंडितजी महाराज, या हज़रत सूफ़िया कराम, या कोई और महाशय अपने व्याख्यान आरंभ करते हैं, और जाग्रतात्मा महाराजाधिराज ध्यान पूर्वक सुनते और प्रश्न करते हैं। कई बार रात की रात तर्क वितर्क में ही बीत जाती है। वाह री ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा!

बादशाह की आज्ञा से समग्र धर्मों की पुस्तकों के फ़ारसी में अनुवाद होने शुरू हो गये। इञ्जील के अनुवाद के शुरू का मिसरा है।

"ऐ नामे-तो जीज़ज़ो क्रृष्टो"!

भागवत, महाभारत विशेषतः भगवद्गीता और विष्णु-पुराण, और कई उपनिषदें फ़ारसी गद्य और पद्य में पिरोई गईं। इन अनुवादों को सुनते रहना और स्वयं अपने आचरण से उन्हें सुनाते रहना अकबर का सब से बड़ा काम था।

[विषयान्तर—गीता, विष्णु-पुराण और उपनिषदों के

ये अनुवाद अद्वैत वेदांत के पक्ष के प्रतिपादक व प्रचारक हैं। संस्कृत की इन पुस्तकों के फ़ारसी में अनुवाद बाद में भी हुए, किन्तु साधारणतः ये सब अकबरवाले अनुवाद थे कि जिनको फ्रांस के लोग लैटिन (लातीनी) भाषा में, जो उन दिनों समस्त युरोप की विद्वत्समाज की भाषा थी, अनुवाद करके आँग्ल-देश को ले गये। इस प्रकार ये पुस्तकें पहले फ्रांस में और वहाँ से जर्मनी में पहुँचीं। यूरोप में उनका अत्यन्त सम्मान हुआ। श्लेगल (Schlegel) विक्टरकज़िन (Victor Cousin), शपनहार (Schopenhauer), आदि युरोप के तत्त्वविचारक लोगों के मनोवेग की अधिकता में हिन्दू-शास्त्र की प्रशंसा इन पुस्तकों के सन्मान की साक्षी हैं। बाद में फ्रांस से हैनी थोरो (Henry Thoreau) के द्वारा इन हिन्दू-पुस्तकों के लैटिन अनुवाद अमेरिका में पहुँचे, और थोरो के मित्र एमर्सन (Emerson=अमेरिका के सब से बड़े लेखक के हाथ पड़े। एमर्सन और थोरो के लेखों पर वेदांत का बड़ा प्रभाव है। और अधिकतर एमर्सन की रचनाओं के कारण अमरिका में वेदान्त समान नया धर्म (नूतन मत) चल निकला है, जो बहुत शीघ्र विश्वव्यापी होने की आशा रखता है। संसार के लगभग सबसे बड़े विद्या-केन्द्र हार्वर्ड युनिवर्सिटी (Harward University) का तत्त्ववेत्ता प्रोफ़ेसर जेम्स (Professor James) लिखता है कि सूफी मज़हब आम मुसलमानी पर वेदांत के प्रभाव का परिणाम है। लेखक इस मत से सहमत नहीं है, अलबत्ता इस में कुछ सन्देह नहीं कि सूफी मत के फैलने में प्रायः वेदान्त से बहुत सहायता मिली है। और हमें इस बातके मानने में भी संकोच नहीं कि संस्कृत पुस्तकों के अकबरी अनुवाद हिंदुस्तान और फ़ारस आदि में सूफ़ी मतके बढ़ाने फैलाने में मुख्य कारण हुए हैं।]

बादशाह अकबर का मुखमण्डल वसन्तपुष्प की भाँति प्रफुल्ल रहता था। सुशीलता लिये हँसी मानों ओठों से पिरोई हुई थी। यह प्रसन्नता क्यों न होती? जहाँ विश्वप्रेम वा ईश्वर-भक्ति है, शोक और क्रोध की क्या शक्ति कि पास फटक सकें?

हर जा कि सुलताँ खेमाज़द ग़ाग़ा नमानद आम रा।

अर्थात् जिस स्थान पर राजाधिराज ने डेरा लगाया, वहाँ साधारण लोगों का शोर नहीं रहता।

यादे-अल्ताफ़े-ख़ुदा दर दिल निहाँ दारेम मा।
दर दिले-दोज़ख़ बहिश्ते जाविदां दारेम मा॥

अर्थात् परमात्मा की कृपा का हम निरन्तर स्मरण हृदय में रखते हैं, और इस प्रकार नरक लोक में भी हम नित्य स्वर्ग का अनुभव करते हैं।

जिन लोगों के हृदय ऐसे विशाल और जिनके भीतर प्रीति ऐसी विश्वव्यापिनी न थी, उनमें से एक मुल्ला साहब बादशाह को गुप्त रूप से यों ताना देते हैं:—

ख़न्दा कर्दन रख़नह दर क़सरे-हयात अफ़गन्दन अस्त,
मेशवी अज़ हर नसीमे हमचू गुल ख़न्दां चरा॥

अर्थात् हँसना मानो जीवनगृह में छिद्र बनाना है, जैसे प्रातःकाल की वायु के झकोले से खिले हुए फूल की दशा होती है।

उपदेशक महोदय! आप तो बादशाह की सर्वप्रियता और प्रसन्नमुखता को मृत्यु की छाया के आँचल के नीचे छिपाया चाहते हैं। जाइये, मौत की गीदड़ भभकियां उनको दीजिये जो विश्वप्रेम से शून्य हृदय हैं। हमारे बादशाह की तो जिह्वा यों पुकार रही है "प्रसन्नमुख हो कर मरना अच्छा, और शोक संतप्त रह कर जीना बुरा।"

मरना भला है उसका जो अपने लिये जिये,
जीता है वह जो मर चुका इनसान के लिये।

तङ्गदिली (हृदय की संकीर्णता) का उपदेश तो इस दरबार में प्रलाप मात्र है :—

रूए कि ज़ो दिले नकुशायद न दीदनीस्त ।
हरफ़े कि नेस्त मग़ज़ दरो ना शुनीदनीस्त ॥
खंदारू बूदन बेह अज़ गंजे-गुहर बख़शीदन अस्त ।
ता तवानी बर्क़ बूदन अब्रे-नेसानी मबाश ॥

अर्थात् वह मुख कि जिसके दर्शन से किसी का हृदय न खिले, वह देखने योग्य ही नहीं है । वह अक्षर कि जिसमें कोई तात्पर्य ही नहीं, वह न सुनने योग्य ही है । प्रसन्नमुख होना मोतियों के ख़ज़ाने के दान से भी अच्छा है । जब तक कि तू बिजली बन सकता है, तब तक बर्षा मत बन ।

"भिन्न धर्मावलंबियों से भी सद्व्यवहार करो" । "विरोधियों से भी प्रीति करो" । "व्यक्तिगत शत्रुता को जड़ से उखाड़ डालो," "सबसे प्रीति करलो," इत्यादि कहना सहज है, किन्तु करना बहुत कठिन । पर हाँ, कठिन हो चाहे कठिनतर, सामान्यतः सदैव और विशेतः आजकल हिन्दुस्तान में बिना इस सिद्धान्त को आचरण में लाये जातीय एकता और परस्पर मित्रता कदापि उत्पन्न हो नहीं सकतीं । हम यह नहीं कहते कि जिस धर्म में आप उत्पन्न हुए हैं, उसे छोड़ो, ढिलमिलयक़ीन (शिथिल विश्वासी) या रकाबी मज़हब (सबके साथ बैठ कर खाने पीने वाले) बन जाओ; अलबत्ता हम यह अवश्य कहते हैं कि जिस धर्म की चार दीवारी में पैदा हुए हो, उस चारदीवारी से पग बाहर निकालने को पाप या पातक समझना स्वयं आत्म-हनन करने का पातक है । जहां पैर टिकाओ, अटल जमाओ, फिसल न जाओ; पर ईश्वर के लिये पग आगे ही बढ़ाओ । किसी चार दीवारी में पैदा होना तथा परिपालित

होना तो एक आवश्यक बात है, अलबत्ता उसी चार दीवारी में बन्द रह कर उसी में मरना पाप है, अर्थात् कुएँ का मेंढक बने रहना पातक है। लेकिन कोई कुछ ही कहा करे। औरों के धार्मिक निश्चयों का वही सम्मान और मूल्य करना चाहिये, जो अपनी चारदीवारी के सिद्धान्तों का करते हैं। और लोगों के नाशवान् सांसारिक कोष तो लूट कर लेने भी अंगीकार हो जाते हैं, लेकिन कैसे आश्चर्य की बात है कि अन्य लोग जब अपने आध्यात्मिक कोष (धर्म-शास्त्र, धार्मिक-निश्चय वा सिद्धान्त) को विनय से भी उपस्थित करें, तो भी घृणा ही रहती है। इस घृणा का असली कारण क्या है? न्यूनता अर्थात् जिस धर्म में उत्पन्न हुए, उसमें पूर्ण प्रवेश और पूर्ण अनुभव का न होना।

आज़ादी-ए-मादर गिरौ-पुख़्तगी-ए-मास्त,।
आवेख़्ता अस्त अज़ रगे-ख़ामी समरे-मा।

अर्थात् हमारी स्वतंत्रता हमारी परिपक्वता के आश्रित है, क्योंकि हमारा फल कच्ची शाख़ से लटका हुआ है।

लेकिन कोई कुछ ही कहे औरों के धार्मिक सिद्धान्त व मतों का वैसा ही सम्मान व आदर करना जैसा कि अपनी चारदीवारी के सिद्धान्तों का करते हैं, अति कठिन है। प्यारे पाठको! ज़रा विचार तो करो, जिस धर्म में आप पले पोसे, उसके विरोधी लोगों के व्याख्यान-वक्तृताएं सुनने की तैय्यारी के लिये चित्त को कितनी कमर कसनी पड़ती है, अर्थात् कितना साहस करना पड़ता है, किन्तु वाह, रे! वीर अकबर! तेरा दिल है कि सबका दिल हो रहा है। तू मानो प्रजा के सब संप्रदायों के यहां पला था, न केवल इस्लाम-धर्म ही वरन् हिन्दू-धर्म, जैन-धर्म, पारसी-धर्म और ईसाई-धर्म भी उसी ज़ोर शोर

के साथ तेरे जन्मजात धर्म हो रहे हैं। हिन्दुस्तान को "इंतिख़ाबे-जहाँ" (संक्षिप्त संसार) नाम देते हैं और तू "इंतिख़ाबे-हिन्दुस्तान" (संक्षिप्त भारत) बन रहा है। मनुष्य को आलमे-सग़ीर (Microcosm-लघु जगत्) कहा करते हैं, किन्तु तू आलमे-अकबर (Macrocosm-महान् जगत्) बन रहा है। प्रीति का अन्त यह होता है कि मित्र का मन हमारा मन हो जाय। और चित्त की एकाग्रता का अन्त यह है कि मित्र के विश्वास और उसका ईश्वर हमारे विश्वास और ईश्वर हो जायँ। और पवित्रता का अन्त यह है कि चित्त की एकाग्रता का अन्तिम छोर एक ही प्रीति-पात्र तक बद्ध न रहे किंतु संपूर्ण ईश्वर-सृष्टि के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्धित हो जाय। जब हमारा चित्त सतके साथ एक-चित्त हो जाय; माता जैसे अपने एक बच्चे को देखती है, उसी दृष्टि से जब हम प्रत्येक प्राणी को अपना ही देह-प्राण समझने लगें; सूर्य जैसे सब घरों का दीपक है, उसी तरह जब हमें हमारा चित्त सब हृदयों का चित्त अनुभूत होने लगे; तो पवित्र प्रेम की विभूति प्राप्त होती है। फिर वह कौन सी करामात है जो इस पवित्र विश्वप्रेम के लिये असंभव है? वह कौन सा चमत्कार है जो इस सच्चे प्रेमी के लिये बच्चों का खेल नहीं बन जाता? आज अकबर के इस पवित्र विश्वव्यापी प्रेम का हम नाम रखते हैं:—

अकबर-दिली।

अर्थात्

(चित्त-महत्ता वा हृदय-विशालता)

इस अकबर-दिली से क्या नहीं हो सकता? आईने-अकबरी में लिखा है कि जब अकबर का भीतरी प्रभाव अर्थात् आत्म-बल बहुत बढ़ गया, और वह वस्तुतः यथा नाम तथा

गुणः महान् चित्त वाला, उदार-हृदय अर्थात् महान् आत्मा बन गया, तो उस की दृष्टि से रोगी अच्छे हो जाने लगे। अकबर का ध्यान करने से लोगों की अभिलाषाएँ पूर्ण होने लगीं; दूर-दूर की बातें अकबर के चित्त में प्रकाशित हो जाने लगीं:—

इश्क़ हो रास्त करामात न हो क्या माने !
हस्बे-इरशाद ही सब बात न हो क्या माने !

अर्थात् सच्ची प्रीति होने पर चमत्कार और आज्ञानुसार सब बातें भला कैसे न हों ?

यह कोई नई बात नहीं है। हज़रत मुहम्मद, ईसा, हिन्दुओं के ऋषि मुनि महात्मा, किन किन के विषय में ऐसा नहीं सुना गया? अमेरिका के संयुक्त देश में आज हज़ारों बल्कि लाखों लोग ऐसे मौजूद हैं जिनके लिये रोगों की चिकित्सा ईश्वर में एकाग्रता के सिवाय किसी और उपाय से करना अत्यन्त कठोर शपथ और अतिशय नास्तिकता (कुफ़र=तिमिरपूजा) से भी बुरा माना जाता है।

औषधि खाऊँ न बूटी लाऊँ न कोई बैद बुलाऊँ।
पूरण बैद मिले अविनाशी, वाही को नवज़ दिखाऊँ॥

मौलाना जलाल रूमी ने भी कहा है—

शाद बाश ऐ अशअ़शे-सौदाये-मा।
ऐ दवाए जुमला इल्लतहाय–मा॥
ऐ दवाए–नख़वतो–नामूसे–मा।
ऐ तो अफलातूनो–जालीनूसे–मा॥

अर्थात् ऐ मेरे पगलापन की वाह वा ! ऐ मेरे समस्त रोगों की औषधि ! ऐ मेरे घमण्ड और लज्जा की दवा ! ऐ मेरे अफ़लातून ! और ऐ मेरे जालीनूस ! तू प्रसन्न हो !

हाल में साइकालोजी आफ सजेशन (Psychology of

Suggestion=सूचनात्मिक मनोविज्ञान) की वैज्ञानिक खोज ने अमेरिका के सरकारी चिकित्सालयों में बिना औषधि के चिकित्सा (मानसिक चिकित्सा) प्रचलित कर दी है। अकबर-दिली अथवा इसलाम वा विश्वास, यदि राई के दाने भर भी हो, तो पहाड़ों को हिला सकता है। मेरे प्यारे भारत के नवयुवकों ! तुम गई बीती अठारहवीं शताब्दि के डेविड ह्यूम (David Hume) आदि के भरे में आकर मूर्खता वा अज्ञान (अविद्या) का नाम ज्ञान (विद्या) मत रक्खो। इसलाम वा विश्वास को कम करने के स्थान पर अटल निश्चय और विश्व-प्रेम बढ़ाते क्यों नहीं ? यदि वर्णन से बाहर विद्युत् और बाष्प की शक्ति है, तो मानवी हृदय भला क्या नहीं कर सकता ? प्रत्येक जाति और संप्रदाय के लिये विश्वप्रेम बढ़ा कर तो देखो। किसी एक जाति पाँति, संप्रदाय, और देश विशेष का विचार न करके प्रत्येक मनुष्य के साथ वह मानवप्रेम जो सच्चा मनुष्य बनाता है, इतना आवेशपूर्ण उत्पन्न करो कि जितना परिवार के दो एक व्यक्तियों में आप ख़र्च कर रहे हो। देश की मिट्टी तक को प्यार करके देखो, यही संसार स्वर्ग के नन्दनवन को न मात कर दे तो कहना। क्या तुमने मन को शत्रुता से बिलकुल पवित्र और वैर से शीशे के समान साफ़ करने का कभी अनुभव किया था ?

वफ़ा कुनेमो–मलामत कशेमो–खुश बाशेम,
कि दर तरीक़ते–मा काफ़री सत रंजीदम।

अर्थात्:—मलामत को उठा कर भी वफ़ा करना व .खुश रहना।
यही बस .कुफ़र है रञ्जीदा होना मेरे मज़हब में।

अगर यह परीक्षा अभी तक नहीं की, तो तुम इसके फलों को रद्द करने के भी अधिकारी नहीं। योग दर्शन में लिखा है:—

"अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।"

अर्थात् जब हम में विश्वप्रेम (अहिंसा) दृढ़रूप से स्थिर हो जाय, तो आस पास के जंगली हिंसक विषधर आदि जीवों में भी शत्रुता नहीं रह सकती। अगर कर्म और फल (action and reaction) कार्य-कारण की समानता का सिद्धान्त ठीक है, तो ऐसा क्यों न होगा ?

ज्ञान के रूप में अज्ञान या प्रत्यक्ष दर्शिनी बुद्धि के आध्यात्मिक अजीर्ण के स्थायी (chronic) हो जाने से संशय का प्राण-घातक क्षयरोग पैदा होता है। यही नास्तिकता (तिमिर-पूजा व अश्रद्धा) है, जो इसलाम (श्रद्धा-विश्वास) और आध्यात्मिक जीवन को चुपके चुपके खा जाती है। दिल में शक रखते हो ? इसके स्थान पर बन्दूक की गोली क्यों नहीं मार लेते ?

जिन्हें सर्व साधारण करामात या चमत्कार (अलौकिक चरित्र) कहते हैं, क्या उनके लिये विश्वास और चित्त की महत्ता की आवश्यकता है ? कदापि नहीं। विश्वास और चित्त की महत्ता तो व्यक्तिगत आनन्द है। जब कभी आप अपने बड़े अफ़सर की कोठी पर हाकिम से मिलने जाते हैं, तो क्या आप हाकिम के उस कुत्ते के लिये जाते हैं, जो कोठी के द्वार पर दुम हिलाता हुआ आकर आप के पैर सूँघता है ?

ख़र्क़-आदत के बकार आयद दिले-अफ़सुर्दा रा,
गर रवद बर आब नतवाँ मोतक़िद शुद मुर्दा रा।

अर्थात् मुर्दा अगर पानी पर चलने लगे तो उसमें श्रद्धा उत्पन्न नहीं हो सकती, तो करामात मुर्दा चित्त के काम में कब आ सकती है ?

दरबारियों की परीक्षा के लिये एक बार अकबर ने एक लकीर खींची और कहा कि इसे छोटा कर दो। कोई नीचे से, कोई ऊपर से, कोई बीच से लकीर को काटने लगा। अकबर बोला—"यों नहीं, यों नहीं, बग़ैर काटे कम कर दो।" बीर-

बल ने उससे बड़ी लकीर पास में खींच कर कहा—"यह लो, तुम्हारी लकीर छोटी हो गई।" वाह! इसी तरह यदि तुम्हें किसी धर्म या संप्रदाय से ईर्षा है, तो उस लकीर को काटते मत फिरो। धार्मिक उपद्रव ठीक नहीं। यह युक्ति यथार्थ नहीं। तुम अपने हृदय को उनके हृदय से विशालतर बना दो। अपनी प्रेमभक्ति को उनके प्रेम से बढ़ा दो। अपनी मानव-प्रीति को उनको प्रीति से विस्तीर्णतर कर दो। अपने साहस को उच्चतर कर दो। अपने विचार को अधिक उदार कर दो, सत्यस्वरूप (परमेश्वर) पर अपने विश्वास को बड़े से बड़ा अर्थात् अकबर बना दो। संसार की बाह्य झलक, नामरूपों की चमक-दमक, इस दृश्यमान् जगत् की विचित्रता, क्षणभंगुर नानारूपों का बहुरङ्गीपन, किसी की आँखों को भले ही अन्धा कर दे, दार्शनिक और शास्त्री (प्रोफ़ेसर) लोग इस मृगतृष्णा में डूबे रहें, हाकिम और अमीर इस मकड़ी के जाल में फँसे पड़े रहें, पण्डित और विद्वान् इन लहरों में उलझे रहें, युवक और वृद्ध इस स्वप्न में पड़े रहें, लेकिन तुम्हें उस सत्यस्वरूप को कदापि न भूलना चाहिये। तुम्हें अपनी आँख सत्यात्मा से उठानी उचित नहीं। ऐ विश्वासी पुरुषो! ऐ तत्त्व दर्शियो! फिर देखो मज़ा। किसकी ईर्ष्या और किसका शत्रु!

क़ुमरियाँ आशिक़ हैं तेरी, सर्व[1] बन्दा है तेरा,
बुलबुलें तुझ पर फ़िदा[2] हैं, गुल तेरा दीवाना है।

यह दिखावे का हिन्दूपन, मुसलमानपन, ईसाईपन आदि विविध प्यालों की तरह हैं, जिनमें पवित्र विश्वप्रेम का दूध पिलाने का प्रयत्न समय समय पर होता रहा है। किन्तु इन सब प्यालों का दूध अथवा इन सब धर्मों वा पन्थों की जान अहंता

(१) वृक्ष, (२) क़ुर्बान।

(परिच्छिन्न भावना) का अभाव वा ईश्वर-प्रेम है। परन्तु सच्चा धर्म वह निर्विकार प्राण है, जो इन सम्पूर्ण धार्मिक शरीरों के जीवन का कारण है।

मज़हबे-इश्क़ अज़ हमा मिल्लत जुदा अस्त।
आशिक़ाँ रा मज़हब-ओ-मिल्लत ख़ुदा अस्त॥

अर्थात् प्रेम का धर्म सब मतमतांतरों से भिन्न है, क्योंकि प्रेमियों का धर्म और मत केवल परमात्मा है।

इन पुराने प्यालों की तरह हज़रत अकबर ने भी एक नया जाम (प्याला) गढ़ा था, अर्थात् नई रस्मों और नियमों में वही पुराना अमृत डाला था। इस नये प्याले का नाम रक्खा था।

दीने-इलाही।

स्वतंत्रता के अनुयायियों का यह दीन था। हिन्दू-मुसलमानों को दूध शकर कर देना इसका उद्देश्य था। प्याला ख़ूब स्वच्छ था, मगर प्यालों से हमारी भूख या प्यास नहीं बुझ सकती। प्याले तो पहले से भी बहुत मौजूद हैं। हमको तो दूध चाहिये, या मदिरा सही।

जिगर की आग जिससे बुझे जल्द वह शै ला।

जिगर की आग तो अद्वैत (एकता) के अमृत से बुझती है। अकबर-दिली की आवश्यकता है, चाहे किसी प्याले में दे दो, पुराना हो कि नया, चितरेला हो कि सादा, सोने का हो या मिट्टी का।

मुफलिस हूँ तो कुछ डर नहीं, हूँ मय से न खाली,
बिल्लौर से बेहतर है यह मेरा जामे-सिफाली[1]।
मा ज़ कु़रआँ मग्ज़ रा बरदाश्तम् ,
उस्तख्वाँ पेशे-सगाँ अंदाख़्तम्।

---

१ मिट्टी का प्याला।

अर्थात्:—हम .कुरआन् से मग़ज़ (तत्त्व) को ले लेते हैं और शब्द रूपी हड्डियों (फोक) को शब्द रूपी हड्डियों पर लट्टू होने वाले कुत्तों के आगे डाल देते हैं।

प्याले की उपासना से विरोध बढ़ता है। यह सबके सब प्याले तो केवल मूर्तियां हैं। आख़िर यह मूर्ति-पूजा कहां तक ? धन्य है वह सच्चा मस्त पुरुष कि जो इन प्रतिमाओं से अर्थात् मूर्त्त स्वरूपों से अमूर्त्त को आया है, मिथ्या नाम रूप से सत्य स्वरूप को पहुँचा है। स्वात्मानन्द के कारण प्याला जिसके हाथ से छूट गया और टूट गया है, धर्मातीत।

क़दहे बलब्बम बूद शिकस्ती रब्बी।

अर्थात् प्याला मेरे ओंठ तक गया और लगते ही, ऐ परमात्मा ! टूट गया।

धन्य है वह दुलहन कि जिसके चोर व पर्दे को, जिसके गहनों-कपड़ों को, जिसके नवविवाह के घूंघट को ठीक प्रेमावस्था में पति स्वयं आकर उतारे। यह हार श्रृंगार, यह वस्त्र-भूषण भला पहने ही किसके लिये थे ?

ईं ख़र्क़ा कि मेपोशम दर रहने-शराब ऊला।

अर्थात् उत्तम मदिरा को गिरवी रख कर मैं यह वस्त्र पहनता हूँ।

यह मुबारक मोतियोंवाला मौला मतवाला जब वैष्णवों के मंदिर में जाता है, तो कृष्ण की मूर्त्ति इससे मोती माँग ही लेती है, अर्थात् प्रेम के आँसुओं को निकलवाए बिना नहीं छोड़ती।

हाथ ख़ाली मर्दु मे-दीदा बूतों से क्या मिलें।
मोतियों के पंजाए-मियगां में इक माला तो हो॥

अर्थात् नेत्रों से देख सकने वाले लोग अपने प्यारों से ख़ाली हाथ

भला कैसे मिलें ? उनके नेत्रों की पलकों के पंजे में प्रेमाश्रु की एक माला तो कम से कम होनी चाहिये।

मुसलमानों की मसजिदों में गुज़र हो तो—

"सिजदा-ए-मस्तानाअम बाशद नमाज़।
मुसहफ़े-रूअश बुवद ईमाने मन।"

अर्थात् मस्ती भरा झुकना मेरी निमाज़ है। और प्यारे के चहरे का दर्शन मेरा ईमान है।

ऐसा हाल हो जाता है। बेशक "कुछ नहीं है सिवाय अल्लाह के"। ईसाइयों के गिरजाओं में वह ख़ुदी (अहंकार) व जिस्मानियत (देहाध्यास) का सलीब (सूली) पर लटका हुआ दृश्य अपने साथ सलीब पर खींचे बिना कब छोड़ता है?

न दारे-आख़िरत नै दारे-दुनिया दर नज़र दारम्।
ज़ इशक़त बार चूँ मंसूर मा दारे-दिगर दारम्॥

अर्थात् मेरी दृष्टि में न लोक की सूली है और न परलोक की सूली है। तेरे प्रेम के कारण मंसूर के समान मेरी सूली दूसरी ही है।

सूली उपर सेज पिया की जिस पर मिलना होत।

अकबरदिली की आवश्यकता।

क्या यह अकबरदिली अकबर ही के लिये विशेषता रखती थी और हमारे तुम्हारे लिये बिलकुल दूर वा विपरीत है? और क्या यह बादशाहदिली ज़ाहिरी बादशाह होने पर निर्भर है? कदापि नहीं। ईसा के साथ साथ कोई नौ सौ घोड़े तो नहीं चलते थे, किन्तु उसके हृदय की विशालता की बदौलत लाखों नहीं करोड़ों यूरोप के निवासी ईसा के धर्म की लकीर पर चलने में मोक्ष मानते हैं। क्या तो बंजर अरब और क्या अरब का एक अनपढ़ अनाथ वनों में विचरने वाला, जिसके हृदय में इसलाम की अग्नि भड़क उठी, अर्थात् निश्चय की बिह

प्रज्वलित हो गई "ला इलाह इल्लिल्लाह" अर्थात् "नहीं है कुछ भी सिवाय अल्लाह के," अरब के रेगिस्तान के निर्जीव रज-कण इस अग्नि ने बारूद के दाने बना दिये, और यह रेत की बारूद आकाश तक उछलती उछलती थोड़े ही काल में एशिया के इस सिरे से यूरोप और अफ़रीका के उस सिरे तक फैल गई। पूर्व और पश्चिम का घेरा कर लिया। अर्थात् दिल्ली से ग्रेनाडा तक को घेर लिया। हाय! ग़ज़ब! एक दिल और वह भी ग़रीब दिल, बादशाह का नहीं, विद्वान् का नहीं, एक उम्मी (अनपढ़) अनाथ का, और यह ख़ुदादिली (ईश्वर या हृदय की विशालता)। यह कौन कहेगा कि बादशाह दिली (अकबरदिली) के लिये बाह्यरूप से बादशाह होना भी आवश्यक है? वरन् बाहरी बादशाहत तो बादशाह दिली की बटमार और बाधक है। बुद्ध भगवान् को इस बादशाह दिली के लिये बाहरी बादशाहत का त्याग करना पड़ा। ऊँट पर चढ़ कर ऊँटे न लेना तो टेढ़ी खीर है। दिखावे की सामग्री और संसारी वस्तुओं के बीच में रहकर पानी में कमल की तरह निर्लेप रहने का पाठ हमें आजकल दरकार है, और यह पाठ प्राचीन काल में महाराजा जनक, अजातशत्रु, भगवान् रामचंद्र और युद्ध क्षेत्र में 'एकत्वमनुपश्यति' का मधुर संगीत गानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण जी दे गये थे। वही व्यवहारिक (आचरण में लानेवाला) पाठ आज तीन सौ वर्ष हुए सम्राट् अकबर ने स्पष्टरूप से हमें फिर दिया। वर्तमान समय में उचित यही है कि चाहे किसी अवस्था में हो अकबर-दिली प्राप्त करो।

प्यारे भारत वासियो! निराश मत हूजिये। ये बीज उगे बिना नहीं रह सकते। अनन्त शक्तिरूप प्रकृति इस खेती की किसान है। विश्वास (ईमान) से खाली हों तुम्हारे शत्रु,

निश्चय से बे नसीब (निर्भाग्य) हो तुम्हारी बला! मेरी जान! मिट्टी के ढेलों में अन्न का बीज जो इस प्रकृति से उग पड़ता है, तो क्या तुम मनुष्यों के साथ ही ईश्वर को मखौल करना था कि हृदय की भूमि में अकबर-दिली का बीज न उगेगा?

युद्ध-क्षेत्र का जीत लेना तो तुम्हारे अकेले के अपने हाथ की बात नहीं। लेकिन दिल का मारना तो तुम्हारा निज का काम है। और सच तो यों है कि जो हृदय का मालिक हो गया वह संसार का मालिक हो गया।

मारना दिल का समझता हूं जिहादे-अकबर।
वह ही ग़ाज़ी है बड़ा जिसने यह काफ़िर मारा॥

और यह जो कहा करते हैं:—

दिल बदस्त आवर कि हज्जे-अकबर अस्त।
अज़ हज़ारां काबा यकदिल बेहतर अस्त॥

अर्थात् दिल को अपने वश कर लेना ही महान् यात्रा है। और हज़ारों काबा की अपेक्षा सब से एक दिल होना ही सर्वोत्तम है।

काबा बनिगाहे-ख़लीले आज़र अस्त।
दिल गुज़रगाहे-जलीले अकबर अस्त॥

अर्थात् काबा तो हज़रत ख़लील (मित्र) की दृष्टि से अग्निरूप है। और दिलप्रकाशस्वरूप आत्मा के विचरने का स्थान है।

यहाँ अपने ही दिल की विजय अर्थपूर्ण है, यदि बाह्य साम्राज्य तुम्हें प्राप्त नहीं, तो कम से कम एक विलायत में तो शासक हो सकते हो। वह कौन? वह है दिल की विलायत, अर्थात् हृदय या अन्तःकरण का साम्राज्य।

दिल पर भी न क़ाबू हो तो मर्दानगी क्या है?
घर में भी न हो सुलह तो फ़र्ज़ानगी क्या है?

१ भारी धर्म युद्ध २ धार्मिक योधा

अगर तन रा न बाशद् दिल मुनव्वर ज़ेर-ख़ाकश कुन।
नबाशद् दर शबिस्तां इज़्ज़ते-फ़ानूसे-ख़ाली रा॥

अर्थात् यदि देह में चित्त प्रकाशमान नहीं तो उसे मिट्टी में दबा दो, क्योंकि रात के समय ख़ाली फ़ानूस का मान नहीं होता। अर्थात् फ़ानूस की शोभा दीपक से है।

सच्चा बादशाह तो वही है जो—

गमो-गुस्सा-ओ-यासो-अंदोह-हिर्मान्।
अनादो-फ़सादो-अमलहाय शैतान्॥

को अपनी विलायत में फड़कने न दे।

शक्ति-स्रोत।

सफलतादायक मेल तो केवल भलाई में हो सकता है। जो लोग इन्द्रियों के दास रहकर उन्नति की आशा करते हैं, जो लोग बुराई की भावना से मेल मिलाप करते हैं, अथवा अविद्या के स्थिर रखने निमित्त मेल करते हैं, वह रेत के रस्से बटते हैं। उन्हें विकासक्रम (evolution) का वेग वा ईश्वरेच्छा का दबाव, दीनता की नदी में जा डुबोता है। यह वह ईश्वरीय नियम है कि जिसकी आँखों में कोई धूल नहीं डाल सकता। बल केवल पवित्रता में है। लार्ड टेनिसन (Tennyson) की रचनाओं में सर गेलाहेड (Sir Galahad) कहता है :—

My strength is as the strength of ten,
Because my heart is pure.

दस जवानों की मुझ में है हिम्मत।
क्योंकि दिल में है इफ़्फ़तो-असमत॥

यदि थोड़ा बहुत अनुभव प्राप्त कर चुके हो, तो अपने ही दिल से पूछो—ऐसा है कि नहीं ? पवित्रता और सच्चाई,

विश्वास और भलाई, इसलाम और अक़बरदिली से भरा हुआ मनुष्य विद्योन्नति हाथ में लिये जब क़दम (पग) बढ़ाता है, तो किसकी मजाल (शक्ति) है कि आगे से हिल न जाय। अगर तुम्हारे दिल में विश्वास और सचाई भरी है, तो तुम्हारी दृष्टि लोहे के सितून चीर सकती है, तुम्हारे ख़याल की ठोकर से पहाड़ों के पहाड़ चकनाचूर हो सकते हैं। आगे से हट जाओ, दुनिया के बादशाहो! यह शाहे-दिल तशरीफ़ ला रहा है। सख़्त पत्थर की तरह देश में शताब्दियों के जमे हुए पक्षपात उसके पैरों की आहट पाकर उड़ जायँगे। अहिल्या की शिला इस राम के चरण छूते ही देवी होकर आकाश को सिधारेगी। अकबर-दिली के दंडे से अविद्यारूपी समुद्र को मारो, और वह रास्ता दे देगा। सब से पहले मुसलमान (स्वयं हज़रत मोहम्मद) का बचन है "अगर मेरी दाहिनी ओर सूर्य खड़ा हो जाय और बाईं ओर चन्द्रमा, और दोनों मुझे धमका कर कहें कि "चल हट पीछे" तो भी मैं कभी नहीं हट सकता।"

अगर्चि कुतब जगह से टले तो टल जाय।
आफ़ताब भी क़बले-अरूज ढल जाय॥
कभी न साहिबे-हिम्मत का हौसला टूटे।
कभी न भूले से अपनी जबीं पै बल आय॥

अर्थात् चाहे ध्रुव अपने स्थान से टले तो टल जाय, और सूर्य उदय से प्रथम ही अस्त हो जाय, किन्तु साहसी पुरुष का साहस कभी नहीं टूटता और कभी भूल से भी उसके चेहरे पर बल नहीं आता।

अन्तःकरण की शुद्धि और भीतरी सचाई वा अक़बरदिली में यह शक्ति है। हृदय का भय इसके विना दूर नहीं होता। भय और भरोसा इसके विना प्राण खा जाते हैं। और भय वा भीति वह व्याधि है कि पुरुष को कापुरुष बना देती है, सारी

शक्ति के होते हुए भी कुछ होने नहीं देती। जैसे अँधेरे में प्रायः पाप कर्म के सिवा और कोई कर्म नहीं बन पड़ता (The deeds of darkness are committed in the dark.), इसी तरह जब विश्वास और अकबरदिली का प्रकाश भीतर न हो, तो मनुष्य से कोई भारी काम प्रकट होने नहीं पाता। जितनी पवित्रता और विश्वास हृदय में अधिक गहरे होंगे, उतने ही हमारे काम अधिक प्रकाशमय होंगे।

नफ़्स ब नै चो फरोशद बलन्द मीगर्दद।

अर्थात् श्वास जब बाँसुरी में नीचे उतरता है, तो आवाज़ ऊँची होती है।

संसार के भय और आशंका—"ग़मो-गुस्सा-ओ-यासो-अन्दोह हिर्मान्" तब तक तुम्हें ज़रूर हिलाते रहेंगे, जब तक दुनिया के "नक़शो-निगारो-रङ्गो बू ताज़ा बताज़ा नौ बनौ" (भिन्न भिन्न नाम रूप) तुम्हें हिला सकते हैं। और जब तुम संसार के प्रलोभनों और भयों से नहीं हिलते, तो तुम संसार को अवश्य हिला दोगे। इसमें जो संदेह करता है, वह काफ़िर है।

मेल और मिलाप

अकबरदिली का हिन्दी या संस्कृत अनुवाद होगा=महात्मा (महान्+आत्मा) अर्थात् बुज़ुर्ग-रूह। वह मनुष्य अकबरदिल या महात्मा कदापि नहीं हो सकता, जिसका हृदय संकीर्ण अर्थात् एक छोटे से परिमित वृत्त में बन्द है, जिसकी सहानुभूति केवल हिन्दू, मुसलमान या ईसाई नाम से सम्बन्धित है, और इससे आगे नहीं जा सकती। वह तो असग़र-दिल (कृपणचित्त) है, अकबरदिल (उदारचित्त) नहीं, लघु-आत्मा है, महात्मा नहीं। अकबरदिल का तो हाल यह है।

हर जान मेरी जान है, हरएक दिल है दिल मेरा,
हाँ बुलबुलो-गुल-मेहरो-मा की आँख में है तिल मेरा।
हिन्दू मुसलमान पारसी सिख जैन ईसाई यहूद,
इन सब के सीनों में धड़कता एकसां है दिल मेरा।

जापानी बच्चा जब स्कूल में जाने लगता है, तो एक न एक दिन नीचे लिखी वार्त्तालाप गुरू-शिष्य में अवश्य छिड़ती है।

गुरूः—तुम कितने बड़े हो? इसके उत्तर में बच्चा अपनी आयु बताता है, तो फिर गुरू पूछता हैः—तुम इतने बड़े क्योंकर हुए?

बच्चा कहता हैः—अन्न की बदौलत।

गुरूः—यह अन्न कहां से आया?

बच्चाः—हमारे देश जापान की भूमि से उत्पन्न हुआ।

(बेशक अगर शाक आहार है तो सीधे रास्ते से, और यदि मांस आहार है तो पशु शरीर द्वारा देश की भूमि से ही तो आता है।)

गुरूः—अच्छा, तुम्हारा शरीर अन्त में अर्थात् वास्तव में जापान की मिट्टी से फलता फूलता है, और माता-पिता में शक्ति कहां से आई जिसकी बदौलत तुम उत्पन्न हुए?

बच्चाः—आहार से जो जापान की भूमि से प्राप्त हुआ।

गुरूः—बस, जापान की मिट्टी से न केवल तुम फलते फूलते हो बल्कि पैदा भी इसीसे हुए।

बच्चाः—जी हाँ।

गुरूः—तो फिर जापान को अधिकार है कि जब उचित समझे तुम्हारा यह शरीर ले ले।

बच्चाः—जी हां, मेरा कोई बहाना उचित न होगा।

चलो इतनी बातचीत से देश पर प्राण-समर्पण का ख़याल छोटे बालक के प्रत्येक नस-नाड़ी में प्रविष्ट हो गया।

प्रशंसा के पात्र हैं वे छोटे छोटे बच्चे जिनकी समझ में यह मोटी सी बात समा जाती है, और आचरण में आ जाती है। हमारे देश में इधर तो विद्वान् पंडित और उधर आलिम फाज़िल मोलवी शताब्दियों में अभी व्यावहारिक रूप में इतना न समझे कि चूँकि हम हिन्दू-मुसलमान एक ही माँ (हिंदुस्तान) से पैदा हुए हैं और उसका दूध पीते हैं, चूँकि हिन्दू और मुसलमान दोनों की रगों और नसों में खून एक ही भूमि की वनस्पति, जल, वायु आदि से पैदा होता है, अतएव हम सगे भाई हैं। युरोप के किसी देश का मनुष्य जब अमेरिका में जा बसता है, तो तीन वर्ष के निवास में उसकी सम्पूर्ण सहानुभूति और प्रीति अमेरिका में पड़ोसियों से हो जाती है, चाहे वह उसके सहधर्मी हों या न हों। यह नहीं कि शरीर तो है अमेरिका में और मन उस पुराने देश में।

युरोप के अधिकांश लोग ईसाई धर्म के हैं और कितने ही उनमें ईसा के नाम पर प्राण न्योछावर कर देना परम आनंद समझते हैं, लेकिन उनमें से कोई भी ईसा की जाति को, ईसा के देश को, अपनी जाति या वर्त्तमान देश से अधिक प्रिय नहीं रखता। लेखक प्रेम-पूर्वक कहता है और प्रेम वह वस्तु है कि इसकी कठोरता भी सह्य होती है, प्यारे मुसलमान भाइयो! यह विभिन्नता (फूट) क्यों? कबि के कथनानुसार "सिर है कहीं, दिल कहीं, जाँ कहीं है।" ऐसा क्यों?

जब आप शताब्दियों से हिन्दुस्तान में रहते हैं, तो दिल हिन्दू लोगों से क्यों अलग रक्खे जायँ?

उधर हिन्दू पंडितों से हमें यह कहना है कि मर्यादा पुरुषो-

त्तम भगवान् रामचंद्र के शवरी के जूठे बेर, ग़रीब निषाद (मल्लाह) से प्रेम, बन्दरों तक से मोहित कर देने वाली प्रीति, और शत्रु के भाई पर वह अनुकंपा, ज़रा स्मरण तो करो; और यह भी तो स्मरण करो कि 'पण्डित' शब्द की निम्न लिखित प्रशंसा कौन कर गया है? दोनों ओर से लड़ने मरने को सेनाएँ डट रही हैं, सारे हिन्दुस्तान के वीरों के हृदय मारे क्रोध और द्वेष के मानो आकाश तक उछल रहे हैं, इस अवसर पर जिह्वा और शब्दों से जगद् गुरु (अखिल जगत् का प्रकाश दाता) कैसे स्पष्ट और सुरीले गीत में तुम्हारे लिये संदेशा या अनुशासन छोड़ गया है। सहस्रों वर्ष हो गये, आकाश ने अपने डाकघर में इस चिट्ठी पर गर्द का नाम न पड़ने दिया। पवन-दूत इसे अपने परों से बाँधकर उत्तर दक्खिन, पूरब, पच्छिम, पुरानी दुनिया, नई दुनिया, अर्द्ध उत्तरीय और अर्द्ध दक्षिणीय जगत्, जापान, युरोप, अमेरिका सब कहीं पहुँचा आया। धन्य है इस कबूतर की प्रभु-भक्ति को। अन्य देशों के लोग इस चिट्ठी पर आचरण करके दिन दूनी, रात चौगुनी उन्नति कर रहे हैं; पर हाय! तुमने, जिनके लिये कि यह श्रुति पहले पहल अवतीर्ण हुई थी, उसे व्यावहारिक बर्त्ताव के समय बहानों ही में टाल दिया।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥ १८
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥ १९

(गीता अ. ५)

अनुवादः—विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण, और गाय, हाथी, कुत्ता, और चाण्डाल सबको पण्डित बराबर देखते हैं॥ १८॥

जिनका मन बराबरी (साम्य) में स्थित है, उन्होंने यहीं दुनिया को जीत लिया। ब्रह्म दोष रहित और सब में बराबर (सम) है, इसलिये वह ब्रह्म में हि स्थित है ॥ १९ ॥

अर्थात्‌:-माहिरे-इल्मो फ़न ब्राह्मण में,
गाय में फ़ील में कि दुश्मन में।
सग में सगकुश में यकनिगाही हो,
दिल में उल्फ़त हो और सफ़ाई हो।
जिसमें इस एकता की रंगत है,
वह ही पंडित है, वह ही पंडित है।

"ढाई अक्षर प्रेम के पढ़े सो पंडित हो।"

पंडित तो वह है जिसके प्रेम के चक्षु खुले हुए हैं, जो ज्ञान और प्रेम के आवेश में पशु, वनस्पति वरन् पाषाण तक में भी अपना ठाकुर (भगवान्) देखता है और पूजता है। वह पंडित भला कैसे कहा जा सकता है जिसको मनुष्य की छाया से घृणा हो, मुसलमान को छूना पाप जाने, और व्यवहार में पत्थर ही में भगवान् माने?

अकबर के पास इसके कोके (धाय-पुत्र) की कई बार शिकायत आई। बार बार की बग़ावत और कई बार की साज़िश की ख़बरें अकबर ने इस कान से सुनकर उस कान से निकाल दीं। जब राज्य के शुभ चिन्तकों ने सख़्त गिला किया, कि जहाँपनाह! इतनी नरमी और रिआयत क्यों उचित समझी जाती है? तो उत्तर दिया कि-"तुम लोग नहीं समझते कि मेरे और उस कोका भाई के बीच दूध की एक नदी बह रही है, जिसको चीरना मेरे लिये असंभव है। मैं भला क्यों कर उस पर क्रोध कर सकता हूँ?" क्या अकबर-दिली है? धन्य है!

अक़बर और उसके कोका ने एक ही राजपूत-माँ का दूध

पिया था। क्या हिन्दू और क्या मुसलमान एक ही माँ (हिं-स्तान) का दूध नहीं पी रहे ? पिछली शिकायतें भूल जाओ। गिले गुस्से सब माफ़। रूठे यार मनाए गये !

गर ज़े दस्ते-ज़ुल्फ़े मुशकीनत ख़ताए रफ़्त रफ़्त,
वर ज़े हिंदूए-शुमा बरमा जफ़ाए रफ़्त रफ़्त।
गर दिले अज़ ग़मज़ए-दिलदार यारे बुर्द बुर्द,
दरमियाने जानो जानाँ माजराए रफ़्त रफ़्त।

अर्थात् अगर तेरे सुगन्धित बालों के हाथ से कोई अपराध हो है, तो उसे हो जाने दे; और यदि तुम्हारे प्यारे से हम पर अत्याच गया है तो उसे हो जाने दो। अगर प्यारे के सैन (इशारे) से दिल एक बार छीना गया, तो छिन जाने दो। और प्रीतम प्यारे के में यदि कोई झगड़ा हो गया है, तो हो जाने दो।

तारे कब रोशनी से न्यारे हैं ?
तुम हमारे हो, हम तुम्हारे हैं।

* * * *

ऐ अदू ! ऐंठ ले बिगड़, तन ले,
सख़्त कहदे कि सुस्त ही कह दे।
जोशे-गुस्सा निकाल ले दिल से,
ताक़ते-तैश आज़मा तो ले।

* * * *

मुझे भी इन तेरी बातों से रोक थाम नहीं,
जिगर में धाम न कर लूं, तो "राम" नाम नहीं।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

व्यावहारिक वेदान्त

और

आत्म-साक्षात्कार ।

ता० ११ सितम्बर १९०५ को सायंकाल ६॥ बजे फ़ैज़ाबाद में दिया हुआ व्याख्यान ।

अमेरिका में अमली अर्थात् व्यावहारिक वेदान्त का बर्ताव होता है, और इसी से वह देश संपत्तिवान् है। व्यावहारिक वेदान्त यही है कि अपने आपको सारा देश ही नहीं, संपूर्ण संसार अनुभव करे; और अपने आपको एक शरीर में परिच्छिन्न करना ही एकाकी कारावास समझे।

इतना छोटा नहीं हदूदरबा। (१ क्षेत्र-फल)
पगड़ी जोड़ा नहीं हदूदरबा।
टोपी-जूता नहीं हदूदरबा।

मैं साढ़े तीन हाथ के टापू (देह) में क़ैद नहीं हूं, वरन सब की आत्मा—सब का अपना आप—मैं ही हूँ। पाताल-देश (अमेरिका) के लोगों ने भी इस बात को मान लिया है। हर एक को भाले की नोक के नीचे या प्रकृति के डंडे के ज़ोर से स्वीकार करना ही पड़ेगा कि आत्मा के सिवाय और कोई स्थान आनंद का नहीं है। आनंद का भंडार यदि है तो वह केवल अपना आप (आत्मा) ही है। उसी में स्वतंत्रता है, उसी में शांति और आनंद है। मद्य पीना लोग क्यों नहीं छोड़ते? आप लोग हज़ारों यत्न करते हैं, टेम्परेंस सोसाइटियाँ सदैव उसे त्याग देने का उपदेश करती रहती हैं, मगर क्या कारण है कि इस पर भी लाखों व्यक्ति इस सत्यानाशिनी मदिरा को नहीं छोड़ते? कारण यह है कि वह उन्हें अपने आत्मदेव की कुछ थोड़ी सी

झलक (स्वतंत्रता) दिखला देती है, अथवा शरीर रूपी बँद गृह से थोड़ी देर के लिये छुटकारा देती है। हाय स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति इसी का इच्छुक है, समस्त जातियों और समाजों में सदैव 'स्वतंत्रता, स्वतंत्रा' का ही शोर सुनने में आता है। बच्चे भी इसी के अभिलाषी हैं। बच्चों को रविवार सब दिनों से अधिक प्यारा क्यों लगता है? केवल इस लिये कि वह उनको ज़रा स्वतंत्रता दिलाता है, अर्थात् उस दिन बच्चों को छुट्टी मिलती है। यह छुट्टी का दिन केवल बच्चों को ही प्रसन्न और मुदित नहीं करता, वरन् इसके नाम से स्कूल के मास्टरों और दफ्तर के क्लर्कों के पीले चेहरों पर भी सुर्खी (लालिमा) आ जाती है।

प्रयोजन यह कि प्रत्येक को स्वतंत्रता का आनन्द प्यारा है। क्यों न हो? पूर्ण मुक्त तो इसका अपना स्वरूपही है। अपना स्वरूप प्रत्येक को निस्संदेह प्यारे से भी प्यारा होता है। हाँ जब कोई प्यारा अपने स्वरूप को भूलकर सांसारिक बंधनों और पदार्थों में इस स्वतंत्रता के पाने का प्रयत्न करता है, तो वह अपने आपको अंततः खाली हाथ ही पाता है। इस कारण प्रत्येक अनुभवी पुरुष बोल उठता है कि संसार में या सांसारिक पदार्थों में वास्तविक स्वतंत्रता कदापि नहीं मिलती। क्योंकि वास्तविक स्वतंत्रता तो देश, काल और वस्तु की सीमा से परे हटकर, अर्थात् देश, काल और वस्तु की परिच्छिन्नता से रहित होकर मिलती है। इनके कीचड़ में फँसे रहने से नहीं मिलती। देश, काल और वस्तु के बंधन में पड़कर तो सैकड़ों देश और जातियां इस स्वतंत्रता के लिये लड़ीं और मरीं। रूस और जापान का युद्ध केवल इसी स्वतंत्रता के लिये हुआ, किंतु स्वतंत्रता फिर भी संसार में आकाश-पुष्प ही रही।

प्यारो ! जो मनुष्य निज स्वरूप (आत्मा) में निष्ठा करता है, वह मुक्त ही है, क्योंकि आत्मा ही मुक्ति वा असली स्वतंत्रता का मूल है, और जो अपने स्वरूप (आत्मा) का साक्षात्कार (अनुभव) नहीं करता, वह न इस लोक में स्वतंत्र वा मुक्त हो सकता है, और न परलोक में अक्षय निजानन्द को प्राप्त कर सकता है। ज्ञानवान् पुरुष इस संसार के पदार्थों और बंधनों से मुँह मोड़कर मुक्ति के अमृत को प्राप्त करते हैं।

"धीराः धाराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।" (केनोपनिषद्)

उजड़े गाँव (Deserted Village) नामक काव्य के रचयिता अँग्रेज़ कवि गोल्डस्मिथ (Goldsmith) और डॉक्टर जॉन्सन (Dr. Johnson) से इस विषय पर बहस हो रही थी कि बातचीत करने में ऊपर का जबड़ा हिलता है या नीचे का। यह सीधी सादी बात थी, मगर इस बड़े लेखक (गोल्डस्मिथ) की समझ में नहीं आती थी, यद्यपि इस बात पर उसका अमल था, क्योंकि यदि उसका जबड़ा न हिलता होता, तो वह बातचीत न कर सकता।

जैसे अँगरेज़ों के यहां क्रॉमवेल और मुसलमानों के यहां बाबर हुआ है, वैसे ही हिंदुओं के यहां इस युग में रणजीतसिंह हुआ है। इस भारतगौरव और पंजाब के नर-सिंह का ज़िक्र है कि एक बार शत्रु की सेना अटक नदी के पार थी, और इसके आदमी नदी के पार जाने से झिझकते थे। इसने अपना घोड़ा उस नदी में यह कहकर डाल दिया कि—

सभी भूमि गोपाल की, यामें अटक कहाँ।
जाके मन में अटक है, सो ही अटक रहा॥

उसके पीछे उसकी सारी सेना नदी को पार कर गई। यद्यपि शत्रु की सेना के सामने यह थोड़े से आदमी थे, किंतु उनकी

यह वीरता देखकर शत्रु की सेना के हृदय हिल गये और सबके सब उनके इस उत्साह से भयभीत होकर भाग गये, और युद्ध-क्षेत्र भारत के उस सूरमा के हाथ आया। यह बात क्या थी? उसके हृदय में विश्वास अर्थात् इसलाम का जोश मौजें मार रहा था। वह रात भर ईश्वर के ध्यान में मग्न रहता था। उसकी प्रार्थनाओं में ख़ून आँसू होकर आँखों की राह बह निकलता था। यही कारण था कि उसके भीतर वह बल आ गया। आत्मबल, विश्वासबल या इसलाम की शक्ति से वह भर गया, या दूसरे शब्दों में यों कहो कि उसने आत्मा का साक्षात्कार किया। यहां ज़बानी जमा-ख़र्च का काम नहीं। साक्षात्कार वह अवस्था है जहां रोम रोम से आनंद बह रहा हो। कहते हैं कि हनुमान् के रोम रोम में राम लिखा हुआ था। इसी तरह इस रणजीतसिंह के भीतर विश्वास का बल भरा हुआ था। ऐसे साक्षात्कार वालों को नदी भी मार्ग दे देती है, पर्वत भी अपने सर-आँखों पर उठा लेता है। संसार की सफलता का भी यही गुर भीतर की शक्ति या आत्मबल है। मेरे भीतर वाला परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है।

"वह कौन सा उक़दा है जो वा हो नहीं सकता?"

अर्थात्—वह कौनसी ग्रंथि है, जो खुल नहीं सकती?

जर्मनी का बादशाह, फ्रेडरिक दि ग्रेट (Fredrick the Great) फ्रांस के साथ लड़ रहा था। उसकी फ़ौज हार गई और उसको हार विदित हुई। कुछ लोग मारे गये, कुछ फ्रांसीसियों के हाथ आगये। यह बादशाह विद्या-प्रेमी और ईश्वर-भक्त था। उसको आत्म-साक्षात्कार की कुछ थोड़ी सी झलक आगई थी। उसने उन थोड़े से बचे-खुचे आदमियों से कहा कि दस-पाँच आदमी एक प्रकार का बाजा लेकर पूरब से बजाते हुए आओ और कुछ लोग पश्चिम

से, और कुछ उत्तर से, और कुछ दक्खिन से आओ। प्रयोजन यह कि वे थोड़े से आदमी चारों ओर से बाजा बजाते हुए उस क़िले के भीतर आने लगे, जिसे फ्रांसीसियों ने छीन लिया था, और यह नरव्याघ्र अकेला, बिना हथियार लिये हुए, उस क़िले में घुस गया, और उच्च स्वर से कहने लगा कि "यदि अपने प्राण सकुशल ले जाना चाहते हो, तो अपने अपने हथियार फेंक दो, और क़िला छोड़कर भाग जाओ, नहीं तो मेरी सेना, जो चारों ओर से आ रही है, तुमको मार डालेगी।" चारों ओर से बाजों की आवाज़ सुनकर और इस वीर पुरुष का साहस देखकर वह लोग घबड़ा गये और तत्काल दुर्ग छोड़ कर भाग गये। इस वीर पुरुष ने अकेले और बिना अस्त्र-शस्त्रों के ही उस दुर्ग पर विजय पाई, और शत्रुओं को पराजय विदित हुई। बस, संसार में भी इस आत्म-बल की आवश्यकता है, इस साक्षात्कार की ज़रूरत है। राम जान कर विदेशों की कहानियाँ तुमको सुनाता है कि तुमको ज़रा तो ख़याल आवे। यह अमृत अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार करना निकला तो भारतवर्ष से ही, किंतु इससे लाभ उठा रहे हैं अन्य देशवाले। इस ब्रह्मविद्या की प्रत्येक को आवश्यकता है। क्या धार्मिक उन्नति और क्या सांसारिक उन्नति, दोनों के लिये विश्वास या ब्रह्मविद्या या वेदांत या आत्म-साक्षात्कार की आवश्यकता है। क्या तुमको इस आत्म-साक्षात्कार की आवश्यकता नहीं है? यही भीतर का आत्मबल तुम्हारा आचरण है, और बाहर के रगड़े-झगड़े तुम्हारे आत्मबल को जोखिम में डालते हैं। जब मनुष्य सीधी राह इस आचरण को प्राप्त नहीं करता, तो विपत्तियाँ उसके भीतर से आत्मबल को उभाड़ कर इसे उत्पन्न कर देती हैं। विकासवाद (Evolution) का नियम पुकार पुकार कर इसी उत्तम पाठ का उपदेश कर रहा है, और

यह प्रकृति का नियम है कि जिनमें बल होगा वही स्थिर रहेंगे। जिसके भीतर साहस है, उसी में शक्ति है। और जिसमें शक्ति है, उसी में जीवन है। साहस तो भीतर की वस्तु है। जहाँ परमेश्वर है, वहीं साहस है। डण्डे की चोट से चलना तो पशुओं का काम है, मनुष्य समझ रखता है और उसे काम में ला सकता है—

"ख़ुद तो मुँसिफ़ बाश ऐ जाँ! ई निको या आं निको।"

अर्थात् :—ऐ प्राण प्यारे! तू स्वयं न्यायी बन कि यह अच्छा है या वह अच्छा है।

क्या आवश्यकता है कि प्रकृति (Nature) तुमको डंडे मार मार कर सिखलाए? ख़ुशी से क्यों न सीखो? इस जगत् से मुँह मोड़ना क्या है? एक तो यह कि बाहर की वस्तुएँ आप की दृष्टि में न रहें, और दूसरा "मू तू क़िब्ल-अन्तू मू तू" अर्थात् मरने से पहले मर जाना है, या सब कुछ उस ईश्वर (अपने आत्मा) को अर्पण कर देना है। जब सब बाहर की वस्तुएं इस प्रकार आहुति में डाल दी जाती हैं, तब तो त्रिलोकीनाथ ही रह जाते हैं। कोई भी मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता जब तक कि उसे आत्मबल का विश्वास न हो। जिसमें यह विश्वास अधिक है, वह स्वयं भी बड़ा है, और औरों को भी बढ़ाता है—

धन भूमी, धन देश काल हो।
धन धन लोचन दरस करें जो॥

जिस जंगल में आत्मसाक्षात्कारवाला पैर रखता है, वह देश का देश प्रफुल्लित हो जाता है। विज्ञान स्वरूप महात्मा वही ही है, जिससे प्रेम का सोता बह निकलता है:—

रवाँ कुन चशमहा-ए-कौसरी रा।

अर्थात् कौसर (नदी) के सोतों को जारी कर। ये ही स्वर्ग की नदियाँ या आत्मानंद की नदियां हैं।

किसको इस पानी को ज़रूरत नहीं है? फूल हो या घास, गेहूँ हो या कपास, मनुष्य हो या पशु, सभी को इस पानी की ज़रूरत है।

सुलेमाना बियार अंगुश्तरी रा।

अर्थात् सुलेमान! अँगूठी को ला।

जब अंगूठी मिल गई फिर भटकना किस लिये? कहां तो तुम्हारा दिल का राज्य और कहां तुम भिखारी? कहां तो तुम्हारा आनन्द का धाम और कहां यह हाड़ और चाम?

सूर्य को सोना चाँद को चाँदी तो दे चुके।
फिर भी त्वाफ़ (परिक्रमा) करते हैं देखूँ जिधर को मैं॥

यह कोई याचना नहीं है, सच्ची घटनाएं हैं। सीधे सादे शब्दों में इसका अर्थ होता है कि सिवाय परमेश्वर के तुम्हारा आत्मा कुछ और नहीं है। जब परमेश्वर मेरा आत्मा है, तो मैं दुःख में कैसे रहूँ। संसार में ऐसे पुरुष हो गये हैं जिनके भीतर से विश्वास के सोते बह निकले हैं, और इस जीवन-दायक जल से देश के देश सजीव (ताज़ा) होते चले गये हैं। अरब में कोई हो गया है, जिसके भीतर से यह विश्वास की आग भड़क उठी। यह विश्वास कभी दासोऽहम् के भाव में और कभी शि ोऽहम् के भाव में प्रकट हुआ करता है। वह अरब-केसरी सबको यों दहाड़ता है—

अगर सूर्य हो मेरी दाईं तरफ़,
और हो चाँद भी बाईं जानिब खड़ा।
कहें मुझसे गर दोनों–'बस, अब रुको',
तो न मानू कभी कहना उनका ज़रा॥

वह जो भीतर का आत्मबल है, उसके सामने सूर्य और चंद्रमा की क्या बिसात है ? "एकमेवाद्वितीयो नास्ति" अर्थात् "एक ईश्वर के सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं है" सीधी सादी बात है, मगर विश्वास क्यों नहीं आता ?

विश्वास, श्रद्धा, ईमान, यक़ीन सबका अर्थ एक ही है। उसका ईमान चला गया या वह बेईमान है, यह बड़ी भारी गाली है। फिर क्यों नहीं ईमान, यक़ीन, श्रद्धा या विश्वास लाते ? किसमें ? उसी एक आत्मदेव में जो प्राणों का प्राण और जीवों का जीव है। अगर यह विश्वास हो, तो सारे पा[प] धुल जाँय। अगर देश में एक ऐसा व्यक्ति उत्पन्न हो जाय तो देश का देश प्रफुल्लित हो जाय। बस अपने अहंभाव को दूर करो, ख़ुदी को मिटा दो, और इस प्याले के भीतर जो आत्मदेव का अमृत है, उसका पान करो। इस अमृत की किसको आवश्यकता नहीं है ? मुसलमान, ईसाई, यहूदी और हिंदू सभी तो इस अमृत की चाह में मारे मारे फिरते हैं।

एको अलिफ़ तेरे दरकार।

अलिफ़ को जानना था कि आत्मबल आ गया। "ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या" अर्थात ईश्वर सत्य है और जगत् मिथ्या है।

उस विश्वास को लाओ, जो ध्रुव में आया, प्रह्लाद में आया, नामदेव में आया। इसी विश्वास की बदौलत संपूर्ण शंका संदेह और झगड़े दूर हो जाते हैं। मस्त महात्मा दत्तात्रेय एक बार कहीं जा रहे थे। आँधी आ रही थी। दीपक के प्रकाश में उनका तेजोमय रूप एक दुश्चरित्र स्त्री को कोठे पर से दिखाई दिया। इस सूर्य स्वरूप महात्मा के तीन बार दर्शन पाते ही उस नारी के हृदय का अंधकार दूर हो गया, और उसकी दशा पलट गई। महात्माओं के दर्शन ही

से विषय-वासना दूर हो जाती है। किसी का महात्मा होना ही सारे संसार को हलचल में डाल देना है, चाहे वह देश में उपदेश दे या न दे। केवल देश की ही दशा नहीं, सारे संसार की दशा उसके उत्पन्न होते ही उत्तम हो जाती है। जिस प्रकार किसी स्थान की हवा हलकी होकर जब ऊपर को उड़ती है, तो उसकी जगह भरने को चारों ओर की हवा वहां आ जाती है, और सारे वायुमंडल में हलचल पड़ जाती है; उसी प्रकार एक महात्मा भी सारे संसार को हिला देता है। और यदि महात्मा के अस्तित्व ही को नहीं मानते, तो फिर कैसे उससे लाभ उठा सकते हो? यदि किसी ने तुमको सोने के स्थान पर कोई और वस्तु दे दी, तो क्या तुम उससे यह परिणाम निकालोगे कि सोना है ही नहीं, या सारे संसार में ताँबा ही है। जो सोने को माने ही गा नहीं, वह भला उसे कहां पायेगा? जहाँ सच है वहाँ झूठ भी आ जाता है। मुलम्मे का होना असली सोने की बड़ाई को ही प्रकट करता है, कुछ उसके अस्तित्व को नहीं मिटाता। संसार का इतिहास इस बात को सिद्ध करता है। कोई व्यक्ति आँखें खोलकर संसार रूपी बाज़ार में विचरे। जिसको दृष्टि में ब्रह्म ही ब्रह्म हो, वह सारे संसार को प्रेमरूप देखकर प्रसन्न होता है, और जिसके भीतर शत्रुभाव की अग्नि प्रचंड है, वह अपने चारों ओर शत्रुओं को ही पाता है, और उसको सारा संसार शत्रुता से पूर्ण दिखाई देता है। इसलिये ओ प्यारे! आनन्द के खोजनेवाले! ज़रा दृष्टि को फेर।

बेगाना गर नज़र पड़े, तू आशना को देख;
दुश्मन गर आये सामने तो भी ख़ुदा को देख।
जो कुछ दीखे जगत् में, सब ईश्वर से ढाँप;
करो चैन इस त्याग से, धन लालच से काँप॥

जिसकी ऐसी दृष्टि हो जाती है, उसके लिये दुःख और शोक कहां आ सकते हैं? और उसके होने से सारे देश में साहस और शक्ति आ जाती है। अतः ऐ सुधारको! बतलाओ, आत्मसाक्षात्कार करना कितना बड़ा सुधार है? पहले अपने आपका सुधार करो अर्थात् अपनी दृष्टि उच्च करो, फिर सारे देश में सुधार आप ही हो जायगा। आज-कल संसार में जो सबसे बड़ी यूनिवर्सिटी है, उसके प्रोफ़ेसर डाक्टर सतारबक (Starbuck) यों राय देते हैं कि "मस्तिष्क में विश्वास से एक प्रकार की लकीरें पैदा हो जाया करती हैं। जब कोई दूसरा प तो विश्वास उसी मस्तिष्क में स्थान लेना आरम्भ करता है, पहले की लकीरें मिट जाती हैं, और नई पैदा हो जाती हैं। इसलिये एक प्रकार की पहली लकीरों का मिटाना और उनके स्थान पर वहां दूसरी लकीरों का पैदा हो जाना चाल-चलन का बदलना या भीतरी परिवर्तन कहलाता है।" यही इसलाम, विश्वास और यक़ीन है, जिसके बिना मन के पहले स्वप्न के चिह्न और धब्बे दूर नहीं होते और मन शुद्ध नहीं होने पाता।

आज कल इंगलैंड और अमेरिका इसी विश्वास की बदौलत उन्नति कर रहे हैं। यूनान कहां गया? उसका धर्म क्या हुआ रोम और मिस्र के धर्म क्या हुए? किन्तु आश्चर्य की बात कि भारतवर्ष पर विपत्ति पर विपत्ति आने पर भी धर्म की गं स्थिर रही। क्यों जी, महाराजा रामचन्द्र इसी देश में उत हुए थे? प्यारे कृष्णचन्द्र भी इसी भारत की गोदी में पले यह मेल और एकता ऐसे शूरवीर ही स्थिर रख सकते जिस देश में वीर (hero) नहीं, वह देश स्थिर नहीं सकता। इसी तरह राम और कृष्ण के नाम और वेदों बदौलत यह देश स्थिर है। इन सूरमा महात्माओं से

प्रकार लाभ उठाना चाहिये जैसे कि हम स्वराज्य से उठाते हैं। हबश के लोग हर वक्त सूर्य के सामने रहने के कारण कैसे काले हो जाते हैं। हम को भी राम और कृष्ण की उपासना करते हुए अपने हृदयों को काले न होने देना चाहिये। जब आँखों को अपने भगवान् के अर्पण कर दिया, फिर तो वह आँखें ईश्वर की हो गईं न कि आपकी। इसी प्रकार जब बाहुओं को ईश्वरार्पण कर दिया तो वह ईश्वर के हो गये। इसी तरह जब आपने अपने आप (आत्मा) को ईश्वरार्पण कर दिया, तब आप परमात्मा के शुद्ध स्वरूप हो गये—साक्षात् भगवान् राम या कृष्ण हो गये। अब प्रेम का पीलापन ज्ञान की लालिमा में परिवर्तित हो गया, और परिणाम में आनन्द की मस्ती टपकने लगी।

आज तीन दिन राम को, जिसके यहां आनन्द की बादशाहत के सिवा कुछ और है ही नहीं, तुम्हारे यहाँ झाड़ू देते हो गये। आज तो वह गद्दी पर बैठता है और कहता है कि शपथ है ईश्वर की, सत् की, राम की, कि तुम में से प्रत्येक वही शुद्ध स्वरूप आत्मा या ईश्वर है। जानो अपने आप को, और छोड़ो इस दासपन को। तुम्हारा साम्राज्य तो सत् है।

वाह! क्या ही प्यारा चित्र है, आँखों का फल मिला।
उस सोहने युवक का जीना सफल हुआ।
महल ऐसा जिसकी छत पै हैं हीरे जड़े हुए।
क़ौसो-क़ज़ेह-ओ-अब्र के परदे तने हुए।

* * * *

---

१ मेघधनुष २ मेघमण्डल।

मसनद[1] बलंद[2] तख़्त[3] है पर्वत हरा भरा ।
और शज्र देवदार[4] का है चँवर झूलता ॥

नग़में[5] सुरीले ओम् के हैं इससे आ रहे ।
नदियां परिंदे[6] याद में हैं सुर मिला रहे ॥

बेहोशो[7] हिस है गरचिः पड़ा खाल की तरह ।
दुनिया है इसके पैर के फ़ुटबाल की तरह ॥

*   *   *   *

कैसी यह सल्तनत है, अदू[8] का निशां नहीं ।
जिस जा[9] पै राज मेरा है ऐसा मकां नहीं ॥

*   *   *   *

क्यों दाएं से और बाएं से मुड़ जायें न आँखें ।
जब रंग हो दिलख़्वाह तो जुड़ जायें न आँखें ॥

ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द ! !
ॐ आनन्द ! ! !

---

१ विश्रान्ति का स्थान, २ उच्च, ३ आसन, ४ वृक्ष, ५ ध्वनि, ६ पक्षी, ७ निश्चेष्ट अवस्था, ८ शत्रु, ९ स्थान ।